RNI Number : MPHIN/2016/70609
ISSN NUMBER : 2455-9814

विभोम स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 11, अंक : 42, जुलाई-सितम्बर 2026
मूल्य 50 रुपये

शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित नए सेट में शामिल पुस्तकें

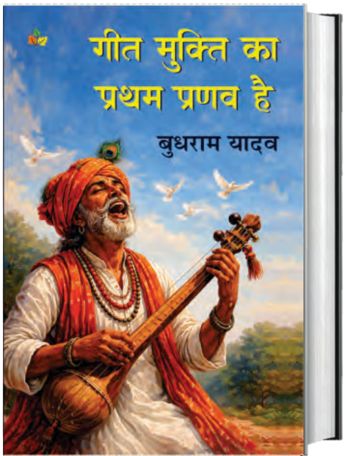

गीत मुक्ति का प्रथम प्रणव है
गीत संग्रह
बुधराम यादव
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-291-9

परवरिश एक नन्हीं परी की डायरी
अभिषेक कुमार
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-48636-63-8

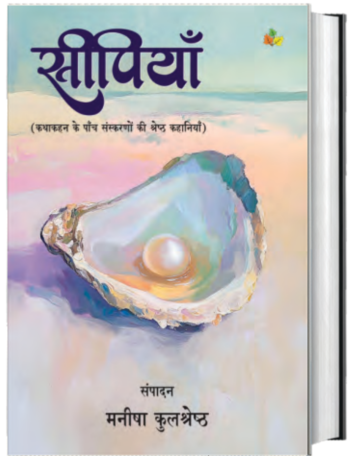

सीपियाँ
कहानी संकलन
संपादक- मनीषा कुलश्रेष्ठ
मूल्य- 350 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-48636-36-2

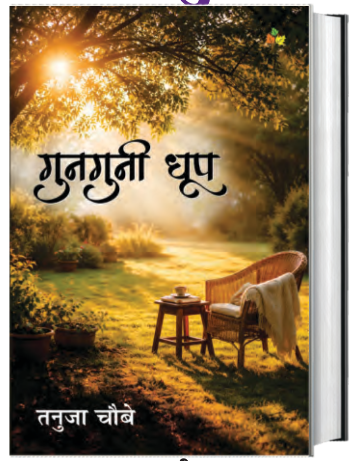

गुनगुनी धूप
कहानी संग्रह
तनुजा चौबे
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-48636-42-3

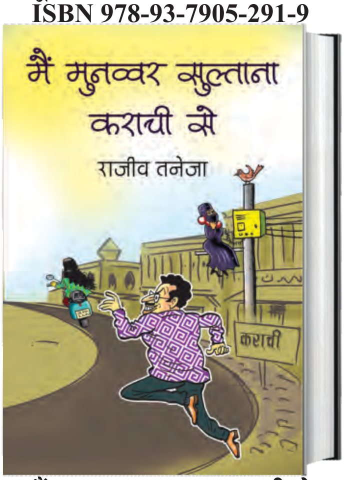

मैं मुनव्वर सुलताना कराची से
व्यंग्य संग्रह
राजीव तनेजा
मूल्य- 350 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-48636-94-2

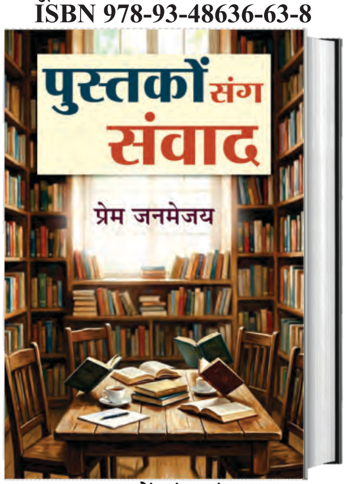

पुस्तकों संग संवाद
समीक्षा संग्रह
प्रेम जनमेजय
मूल्य- 450 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-484-5

पंकज सुबीर का साहित्य- एक अनुशीलन, शोधग्रंथ
डॉ. वर्षा गजानन पाटील
मूल्य- 600 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-48636-56-0

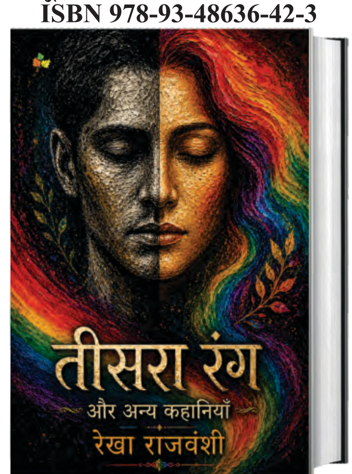

तीसरा रंग और अन्य कहानियाँ
कहानी संग्रह
रेखा राजवंशी
मूल्य- 250 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-015-1

अँधियारा घना है
कविता संग्रह
कमलेश कुमार दीवान
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-000-7

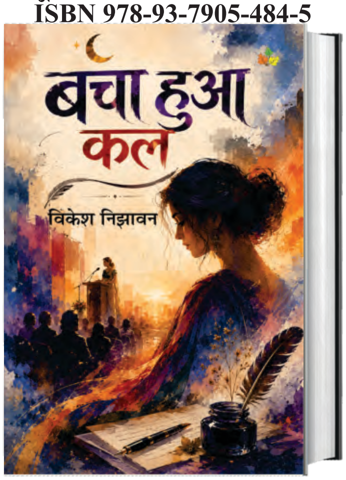

बचा हुआ कल
कहानी संग्रह
विकेश निझावन
मूल्य- 450 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-007-6

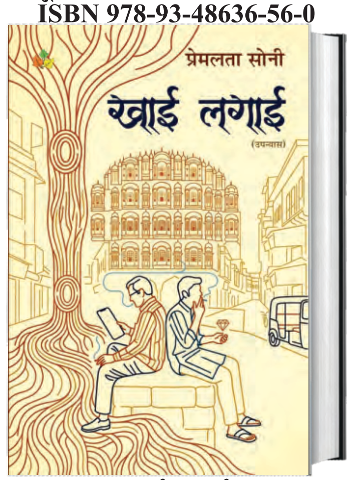

खाई लगाई
उपन्यास
प्रेमलता सोनी
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-594-1

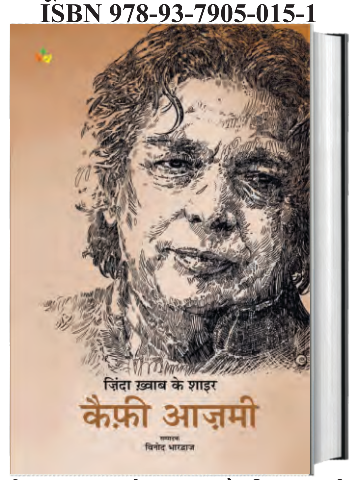

ज़िंदा ख़्वाब के शाइर कैफ़ी आज़मी
आलेख संग्रह
संपादक विनोद भारद्वाज
मूल्य- 400रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-074-8

शिवना प्रकाशन
शिवना प्रकाशन एलएलपी, शॉप नं. एल 7-8, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेंसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फ़ोन- 07562-405545, 07562-490372
मोबाइल- +91-9806162184 (शहरयार), व्हाट्सएप- +91-6265665580
ईमेल shivna.prakashan@gmail.com वेबसाइट www.shivnaprakashan.com
Gmail Email- shivna.prakashan@gmail.com
+91-62656 65580 https://twitter.com/shivnac
https://www.facebook.com/shivna.prakashan
https://www.youtube.com/c/ShivnaCreations
https://www.amazon.in/s?me=A17JJYGSVM2CEV

संरक्षक एवं प्रमुख संपादक
सुधा ओम ढींगरा

संपादक
पंकज सुबीर

क़ानूनी सलाहकार
शहरयार अमजद ख़ान (एडवोकेट)

डिज़ायनिंग
सनी गोस्वामी, सुनील पेरवाल, शिवम गोस्वामी

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 2-7
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001
दूरभाष : +91-7562405545
मोबाइल : +91-9806162184
ईमेल : vibhomswar@gmail.com

ऑनलाइन 'विभोम-स्वर'
http://www.vibhom.com/vibhomswar.html
फेसबुक पर 'विभोम-स्वर'
https://www.facebook.com/vibhomswar

एक प्रति : 50 रुपये (विदेशों हेतु 5 डॉलर $5)
सदस्यता शुल्क
3000 रुपये (पाँच वर्ष), 6000 रुपये (दस वर्ष)
11000 रुपये (आजीवन सदस्यता)
बैंक खाते का विवरण-
Name: Vibhom Swar
Bank Name: Bank Of Baroda,
Branch: Sehore (M.P.)
Account Number: 30010200000312
IFSC Code: BARB0SEHORE

संपादन, प्रकाशन एवं संचालन पूर्णतः अवैतनिक, अव्यवसायिक। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा। पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर माह में प्रकाशित होगी। समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर (मध्यप्रदेश) रहेगा।

विभोम स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 11, अंक : 42, त्रैमासिक : जुलाई-सितम्बर 2026
RNI NUMBER : MPHIN/2016/70609
ISSN NUMBER : 2455-9814

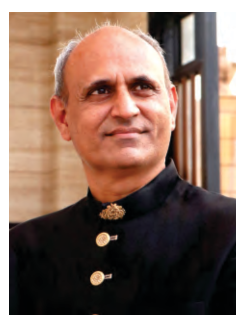

रेखाचित्र
विज्ञान व्रत

आवरण चित्र
पंकज सुबीर

Dhingra Family Foundation
101 Guymon Court, Morrisville
NC-27560, USA
Ph. +1-919-801-0672
Email: sudhadrishti@gmail.com

इस अंक में

विभोम स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 11, अंक : 42
जुलाई-सितम्बर 2026

संपादकीय 3
मित्रनामा 5
साक्षात्कार
कश्मीर को शब्दों में उकेरना हिंदी वालों के वश की बात नहीं है
सुप्रसिद्ध शायर, कथाकार, उपन्यासकार कर्नल गौतम राजऋषि से आकाश माथुर की बातचीत 7
विस्मृति के द्वार
उल्टे पाँव स्मृतियों की यात्रा
गोविन्द सेन 14
कथा-कहानी
दूर कहीं बहती है, एक नदी विस्मृति की
प्रताप दीक्षित 17
तमाशा
सैली बलजीत 22
तीसरा कौन
ममता त्यागी 29
डेथ सर्टिफिकेट/बर्थ सर्टिफिकेट ...
ज्योति जैन 32
जिउंदी रह पुत्त
हर्ष बाला शर्मा 35
शब्दों के पार
राजनारायण बोहरे 38
ज्वालामुखी
निवेदिता श्रीवास्तव 'निवी' 40
लंबी कहानी
जंग-दर-जंग
सूर्यनाथ सिंह 43
लघुकथा
कमांड
किसलय पंचोली 21
उपहार
मीरा जैन 34
यह क्या था...
डॉ. दलजीत कौर 61
भाषांतर
डांसिंग गर्ल
सिंधी कहानी
लेखक- ज़ैब सिंधी
अनुवाद- देवी नागरानी 50
साक्षात्-देवात्मा
गुजराती कहानी
मूल लेखक- निमिषा मजमुंदार
अनुवाद- राजेन्द्र निगम 55
व्यंग्य
आठवें आयोग की आठ कलाएँ
दिलीप कुमार 58
हम उत्सवधर्मी लोग
विजयानन्द विजय 60
आलेख
महात्मा गाँधी और लेव तालस्तोय
प्रगति टिपणीस 62
शहरों की रूह
केसर की क्यारियों वाला कश्मीर
निर्मला दोशी 66
दोहे
भारती शर्मा 59
ग़ज़लें
विज्ञान व्रत 65
जय चक्रवर्ती 71
आख़िरी पन्ना 72

विभोम-स्वर सदस्यता प्रपत्र

यदि आप विभोम-स्वर की सदस्यता लेना चाहते हैं, तो सदस्यता शुल्क इस प्रकार है : 3000 रुपये (पाँच वर्ष), 6000 रुपये (दस वर्ष) 11000 रुपये (आजीवन सदस्यता)। सदस्यता शुल्क आप चैक / ड्राफ़्ट द्वारा विभोम स्वर (VIBHOM SWAR) के नाम से भेज सकते हैं। आप सदस्यता शुल्क को विभोम-स्वर के बैंक खाते में भी जमा कर सकते हैं, बैंक खाते का विवरण-

Name of Account : Vibhom Swar, Account Number : 30010200000312, Type : Current Account, Bank : Bank Of Baroda, Branch : Sehore (M.P.), IFSC Code : BARB0SEHORE (Fifth Character is “Zero”)
(विशेष रूप से ध्यान दें कि आई. एफ. एस. सी. कोड में पाँचवा कैरेक्टर अंग्रेज़ी का अक्षर 'ओ' नहीं है बल्कि अंक 'ज़ीरो' है।)

सदस्यता शुल्क के साथ नीचे दिये गए विवरण अनुसार जानकारी ईमेल अथवा डाक से हमें भेजें जिससे आपको पत्रिका भेजी जा सके: 1- नाम, 2- डाक का पता, 3- सदस्यता शुल्क, 4- चैक/ड्राफ़्ट नंबर, 5- ट्रांज़ेक्शन कोड (यदि ऑनलाइन ट्रांस्फ़र है), 6-दिनांक (यदि सदस्यता शुल्क बैंक खाते में नकद जमा किया है तो बैंक की जमा रसीद डाक से अथवा स्कैन करके ईमेल द्वारा प्रेषित करें।)

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय : पी. सी. लैब, शॉप नंबर. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001, दूरभाष : 07562405545, मोबाइल : 09806162184, ईमेल : vibhomswar@gmail.com

संपादकीय

सोशल मीडिया की अराजकता और हमारा साहित्य समाज

सुधा ओम ढींगरा
101, गाईमन कोर्ट, मोर्रिस्विल
नॉर्थ कैरोलाइना-27560, यू.एस. ए.
मोबाइल- +1-919-801-0672
ईमेल- sudhadrishti@gmail.com

मित्रो, सोशल मीडिया और साहित्य जगत् के संदर्भ में किसी एक सबसे बड़े दुष्परिणाम की बात यदि करनी हो, तो जिस दुष्परिणाम पर सबसे पहले ध्यान जाएगा, वह है सोशल मीडिया के द्वारा आई अराजकता। यह अराजकता कई रूपों में सामने आ रही है। जहाँ तक साहित्य की दुनिया का प्रश्न उठता है, वहाँ यह अराजकता बहुत ख़राब प्रभाव डाल रही है। यदि हम सोशल मीडिया के आने से पहले की बात करें तो तब एक पूरी प्रक्रिया होती थी। किसी भी प्रकार की रचना, फिर चाहे वह कविता हो, कहानी हो, समीक्षा हो, आलोचना हो, उसे छपने से पहले एक पूरी प्रक्रिया से गुज़रना होता था। यह प्रक्रिया संपादन कहलाती थी। इस प्रकिया के भी अपने कुछ गुण-दोष होते थे, किन्तु यह प्रक्रिया कम से कम अराजकता को रोकने का काम तो करती ही थी। संपादन का मतलब ही यह है कि जो कुछ प्रकाशित होकर पाठकों के हाथों में पहुँचने वाला है, उसे गुणवत्ता की एक छलनी से होकर पहले गुज़ारा जाए। कई बार कोई पूरी की पूरी रचना ही इस छलनी से गुज़र नहीं पाती थी और संपादक के खेद और अभिवादन सहित लेखक के पास वापस पहुँच जाती थी। कुछ लेखक समझ जाते थे कि रचना में गुणवत्ता की कमी है इसलिए वापस आ गई है, वहीं कुछ के मन में संपादक के प्रति द्वेषता भी जन्म ले लेती थी।

इन दिनों सोशल मीडिया ने संपादक की उस छलनी को लगभग ग़ायब कर दिया है। हमारा अपना ही सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म है, हमारा अपना की-बोर्ड है, हम चाहे जो लिख सकते हैं। यह जो 'चाहे जो' लिखने की स्वतंत्रता है, यही असल में अराजकता की तरफ़ ले जा रही है। हर कहानी का, हर कविता का, हर व्यंग्य का, साहित्य की हर विधा का अपना एक पाठ होता है। यदि कोई रचना किसी ख़ास विषय पर लिखी गई है, तो ज़ाहिर-सी बात है कि उस विषय को लेकर उस रचना में जानकारियाँ होंगी। जानकारियाँ, जो कभी-कभी हो सकता है कि पढ़ने वाले हर पाठक के पास पहले से न हों। या सोशल मीडिया पर रचनाओं की समीक्षा या आलोचना करने वाले सोशल मीडिया के समीक्षकों या आलोचकों के पास न हो। यदि पहले का समय होता तो उस रचना पर लिखी गई आलोचना या समीक्षा संपादक के पास जाती और संपादक तय करता कि लेखक की उस रचना-विशेष के अंतर्पाठ तक समीक्षक पहुँच पाया है या नहीं ? समीक्षक जो कुछ कहना चाह रहा है, उसके लिए उसके पास उस विषय पर पर्याप्त जानकारी या ज्ञान है कि नहीं ? ऐसा तो नहीं है कि समीक्षक रचना के अंदर डूबे बिना ऊपर-ऊपर से निकल गया है और उसी आधार पर उसने रचना पर समीक्षा लिख दी है। इसके बाद ही तय होता था कि वह समीक्षा या आलोचना प्रकाशित होगी या नहीं। किन्तु अब तो जो लेखक है वही संपादक भी है, क्योंकि सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म की वॉल तो उसकी अपनी ही है।

सोशल मीडिया पर अराजकता का दूसरा पक्ष तब सामने आता है, जब किसी व्यक्ति या उसकी किसी रचना को लेकर कोई दूसरा व्यक्ति अपनी सोशल मीडिया वॉल पर कुछ नकारात्मक लिख देता है। उसके बाद नीचे टिप्पणियों में घमासान शुरू हो जाता है। यह घमासान अक्सर एकतरफ़ा ही होता है। इसमें जिसके बारे में लिखा गया है, उससे असंतुष्ट लोग टिप्पणियों के रूप में अपनी कुंठा निकालने लगते हैं। व्यक्तिगत बातें तक होने लगती हैं। वह व्यक्ति जिसने यह पोस्ट लगाई है, वह हर टिप्पणी पर जाकर आभार, धन्यवाद के साथ-साथ, जिस व्यक्ति को लेकर पोस्ट लगाई है उसकी व्यक्तिगत बातें भी लगाने लगता है, जिन पर टिप्पणी-दर-टिप्पणी घमासान होने लगती है। यह इस अराजकता का एक दूसरा काला पक्ष है। दुनिया में कोई अजातशत्रु नहीं होता, हर व्यक्ति से असहमत रहने वाले लोग होते ही हैं, यह दूसरी अराजकता असल में उन लोगों को संतुष्ट करती है। सोशल मीडिया पर सक्रिय हिन्दी साहित्य समाज में इन दिनों यह पूरा घटनाक्रम हर दूसरे दिन देखने को मिल जाता है। किसी एक को लक्ष्य बना कर कुछ लिखा जाता है और उसके बाद उस लक्ष्य बने व्यक्ति से नाख़ुश सारे लोग वहाँ एकत्र होकर शोर करने लगते हैं। मैंने यह मामला साहित्य जगत् को लेकर इसलिए उठाया है क्योंकि यहाँ व्यक्तिगत हमला करने के लिए आपके पास एक विशेष हथियार होता है और वह हथियार होता है- उस व्यक्ति की किसी रचना को कटघरे में खड़ा कर दिया जाए।

संपादकीय

बाक़ायदा पूरी योजना के साथ उस लेखक की किसी रचना पर पूरी तरह से नकारात्मक समीक्षा लिख कर अपनी वॉल पर लगा दिया जाए और फिर बैठ कर तमाशा देखा जाए। पहले इस तरह की समीक्षाएँ संपादक की पैनी दृष्टि के कारण आगे ही नहीं जा पाती थीं।

इस अराजकता का अंत कैसे होगा ? अभी पिछले दिनों आकाश माथुर से बात कर रही थी, तो आकाश ने मुझे एक प्रकरण बताया। प्रकरण साहित्यिक नहीं था, पर उससे बहुत कुछ समझा जा सकता है। एक व्यक्ति के परिवार में कोई घटना हुई, उस व्यक्ति के प्रति दुर्भावना रखने वाले एक व्यक्ति ने उस घटना को लेकर सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पर पोस्ट लगा दी। फिर वही खेल शुरू हो गया, शहर के अन्य लोग जो उस व्यक्ति के प्रति दुर्भावना रखते थे, वे वहाँ टिप्पणियाँ करने लगे। नितांत व्यक्तिगत हमले उस व्यक्ति पर किए गए। जिस व्यक्ति को लेकर यह पोस्ट लगाई गई थी, उसने सारे स्क्रीन-शॉट्स लेकर रख लिये। अगले दिन उसने पोस्ट लगाने वाले व्यक्ति तथा कमेंट्स करने वाले सारे लोगों के ख़िलाफ़ थाने जाकर एफ़.आई.आर. लिखवा दी। वे सारे लोग अभी तक कोर्ट के चक्कर काट रहे हैं तथा अब उस व्यक्ति से माफ़ी माँग रहे हैं, लेकिन वह व्यक्ति भी अड़ा हुआ है कि मुझे तो सज़ा ही करवानी है। इस पूरे प्रकरण से बात यह सामने आती है कि सोशल मीडिया की इस प्रकार की अराजकता से पीड़ित लोग क़ानूनी मदद लेने से कतराते हैं, इसीलिए अराजकता फैलाने वालों के हौसले बुलंद होते हैं।

सोशल मीडिया की इस अराजकता ने इन दिनों संपादक का काम सबसे कठिन कर दिया है। कठिन इसलिए कि पत्रिका के हर अंक के प्रकाशन के बाद कुछ असंतुष्ट, कुछ नाराज़ लोगों की संख्या बढ़ जाती है। पहले 'संपादक के खेद और अभिवादन के साथ वापस' को संपादक की विनम्रता माना जाता था, अब इसे संपादक का दंभ माना जाता है। जिनकी रचनाएँ संपादक द्वारा लौटा दी जाती हैं, वे संपादक के प्रति शत्रु-भाव रख लेते हैं। हर पत्रिका की, संपादक की अपनी एक दृष्टि होती है, पहले के लेखक इस बात को समझते और जानते थे कि किस पत्रिका में कौन सी रचना भेजी जानी है। किन्तु अब यह समझ भी धीरे-धीरे कम होती जा रही है। उदाहरण के लिए 'विभोम-स्वर' में साक्षात्कार को लेकर हमारी प्रकिया यह है कि हमारा संपादक मंडल तय करता है कि आने वाले तीन या चार अंकों में साक्षात्कार किन-किन साहित्यकारों के लिये जाएँगे, और साक्षात्कार लेने का काम भी हमारी टीम में से ही कोई करता है। अब यदि कोई लेखक अपना साक्षात्कार ख़ुद तैयार करवा के यहाँ प्रकाशन के लिए भेज दे, तो ज़ाहिर-सी बात है कि हमें उसे लौटाना ही पड़ेगा। लेकिन अब सबसे बड़ी दुविधा यह है कि अब रचनाओं का किसी पत्रिका से लौट कर आना लेखक के लिए अपमान की घटना हो जाती है। इस अपमान का तुरंत निदान वह अपने सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पर कर लेना चाहता है।

मित्रो, इस अराजकता का निदान यदि अभी नहीं तलाशा गया तो इसे दिनों-दिन बढ़ना ही है। सोशल मीडिया धीरे-धीरे 'व्यक्तित्व-वध-गृह' में बदलने लगा है। इसके जो दुष्परिणाम अभी सामने आए हैं, वे तो बहुत कम हैं, क्योंकि अभी इसमें 'कृत्रिम बुद्धिमता' का योगदान नहीं के बराबर ही है। कल को इस वध-गृह में जब 'ए.आई.' एक टूल के रूप में काम करने लगेगा, तब कैसे भयावह परिणाम सामने आएँगे, यह सोच कर ही मन काँप जाता है। वह दिन सचमुच बहुत डरावना होगा। इसका निदान आज से ही तलाश करना होगा। भले ही उसके लिए कड़ी क़ानूनी प्रक्रिया का सहारा लेना पड़े, तो वह भी करना होगा, क्योंकि अब सोशल मीडिया की यह अराजकता सुरसा की तरह फैलती ही जा रही है। इससे पहले कि इस आग में बरसों की परंपरा जल कर ख़ाक हो जाए, इससे पहले कि सब कुछ नष्ट हो जाए... कहीं न कहीं, कोई न कोई एक अंकुश तो तलाशना ही होगा। और तलाशना हम सब को मिल कर ही होगा, यह भी तय है।

आपकी,

सुधा ओम ढींगरा

वर्षा ऋतु का आगमन जीवन में आए हुए सुखों की ही तरह होता है। गर्मी से तपते हुए जीवन में हर क्षण प्रार्थना होती है वर्षा के लिए। जब गर्मी अपने चरम पर पहुँच जाती है, तब वर्षा का आगमन होता है। छोटे-छोटे झरने यहाँ-वहाँ से फूट कर बहने लगते हैं। जीवन इन झरनों की कल-कल में खो जाता है।

मित्रनामा

कहानियों की श्रेष्ठ पत्रिका

'सारिका', 'धर्मयुग', आदि बन्द हो चुके, हिन्दी साहित्य को व्यावसायिक जगत् ने लंगड़ा घोड़ा समझ लिया। समाचार पत्रों ने रविवारीय साहित्यिक कलेवर से पीछा छुड़ा लिया। ऐसे में 'विभोम-स्वर' को दसवें जन्म दिवस की हार्दिक बधाई, शुभकामनाएँ।

2014-2018, नया ज्ञानोदय के यशस्वी संपादक व भारतीय ज्ञानपीठ के निदेशक- लीलाधर मंडलोई का आकाश माथुर द्वारा साक्षात्कार, करोनाकाल की कविता, विशेष रूप से आदिवासी स्त्री, और दलित कविता के विषय में उनके विचारों से अवगत कराता है। "लोग छुप-छुप कर प्यार करते हैं, मैंने छुप-छुप कर लिखा।" सूर्यबाला का यह कथन सत्यापित करता है, कि इस पुरुष-प्रधान समाज में एक महिला के लिए लेखन की डगर कितनी कठिन है। उनका संस्मरण 'विस्मृति के द्वार' उनकी कहानियों से कम रोचक नहीं है। बकौल उनके मैंने शब्दों को जुगनुओं की तरह अंजुरियों में बंद करना नहीं सीखा, लेकिन शब्द तो थे मेरे आसपास। अम्मा की उर्दू फारसी मिली, मिर्जापुरी बोली, तो बाबू की बनारसी। वह 'जीजी' का 'सारिका' में छपना, कमलेश्वर के पत्र।

प्रमोद त्रिवेदी की 'लौट आओ दादा' पहेली नुमा कहानी, आम आदमी के लिए नहीं अपितु बुद्धिजीवियों के लिए लिखी गई प्रतीत होती है। 'अधूरे घर की चौखट' कहानी बालक कियान की व्यथा है, परन्तु 'आपका बंटी' से प्रेरित है, प्रभावित है। अब कुछ मर्मस्पर्शी कहानियाँ स्त्री-विमर्श से अभिप्रेरित हैं। 'ईशू ये दुनिया ऐसी क्यों हैं" प्रश्न उठाती है कि क्या हर मर्द औरत को इसी नज़र से देखता है? माँ बनने की हसरत हर औरत के मन में जितनी शिद्दत से होती है, उतनी शिद्दत से मर्द के दिल में बाप बनने की नहीं होती। और जब वह गौरवशाली समय उसके जीवन में आता है, तो उसके चेहरे पर कपड़ा ढक दिया जाता है। कहावत है, हलवाई को मिठाई बनाते हुए, औरत को बच्चा जनते हुए, कभी न देखें। संभवत: इसीलिए उसकी आँखें ढक दी जाती हैं। परन्तु उसे ठगा भी जाता है यथा दो संतान हो तो कह दिया जीता है कि एक ही जीवित रही, दूसरी मर गई। मार्क कहता है 'मेरी माँ हम जुडवाँ बेटों के जन्म और गोद लिये जाने पर अपनी आँखे बंद कर लेती है। ठीक प्रसव के समय मुँह पर कपड़े की तरह वह ममत्व की टीस से कराह उठती है।' 'गिरगिट' की सुधा अपनी परिस्थितियों से जूझने का जज़्बा रखती है। धोखेबाज़ देवदत्त को धता बताकर, आलोक का हाथ थाम लेती है। 'ट्रिक ट्रीट' विदेशों में भी भारत के दर्शन कराती है।

प्रेम जनमेजय का व्यंग्य, 'यदि यदि महाभारते चुनाव मवति', समसामयिक व मारक है। लधुकथाएँ बहुमूल्य ख़ज़ाना, दांपत्य भली लगी। विभोम-स्वर का अंक, रोचक, पठनीय व संग्रहणीय रहा। विभोम-स्वर कहानियों की एक श्रेष्ठ पत्रिका है।

-योगेन्द्र शर्मा, बिजनौर

मोबाइल 7017206371

000

अच्छी कहानी

आपका संपादकीय "संपादक पत्रिका को तैयार करते हुए तरह-तरह के अनुभव समेटता है" अच्छा लगा। असल में लेखक में भी वही सारी दुर्बलताएँ होती हैं जो एक सामान्य मनुष्य में होती हैं। आपके इस मत से सहमत हूँ कि आजकल के लोग भौतिकवादी और प्रदर्शनकारी हो गए है। आत्म प्रदर्शन की कामना लेखकों में भी कम नहीं होती यद्यपि लेखक को इससे बचना चाहिए। छपास के रोग का अधिक संक्रमण एक बड़ी समस्या है। रचना को लौटाए जाने पर झल्लाना या दुखी होना एक मनोवैज्ञानिक विषय है। अपने मन के प्रतिकूल होने पर प्राय: सभी नाराज़ हो जाते है। छपने को लेकर धैर्य रखना चाहिए। वैसा मेरा अनुभव यह है कि रचना का छपना या लौटाए जाना इन दोनों के लेकर सुख और दुख की तीव्रता कुछ दिनों बाद कम हो जाती है या नष्ट भी हो जाती है। संपादकीय के आपके विचार मुझे काफी प्रीतिकर लगे।

-कुबेर कुमावत

000

लेखकों से अनुरोध

'विभोम-स्वर' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीऍफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें, इस प्रकार की रचनाएँ विचार में नहीं ली जाएँगी। रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना अथवा आपको वापस कर पाना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, बार-बार ईमेल नहीं करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अत: कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे किसी अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद

संपादक

vibhom.swar@gmail.com

शिवना नवलेखन पुरस्कार 2026

शिवना प्रकाशन द्वारा नये लेखकों को प्रोत्साहन प्रदान करने के लिए 'शिवना नवलेखन पुरस्कार' की शुरुआत की गई है। यह पुरस्कार गद्य साहित्य की विभिन्न विधाओं- कहानी, उपन्यास तथा कथेतर विधा में प्रदान किया जायेगा। वर्ष 2026 के लिए कहानी, उपन्यास तथा कथेतर (डायरी, संस्मरण, रेखाचित्र, निबंध, यात्रा-वृत्तांत, रिपोर्ताज) विधाओं में पुरस्कार हेतु शिवना प्रकाशन द्वारा पांडुलिपियाँ आमंत्रित हैं।

शिवना नवलेखन पुरस्कार

पुरस्कार के लिये नियम तथा शर्तें-

1. पुरस्कार के लिए लेखक की आयु 45 वर्ष से अधिक नहीं होनी चाहिए। (जिस वर्ष हेतु पांडुलिपि आमंत्रित की गयी है, उस वर्ष की 31 दिसंबर तिथि, अर्थात् 31 दिसंबर 2026 तक।) पांडुलिपि के साथ आधार कार्ड की छायाप्रति संलग्न करना आवश्यक होगा।

2. लेखक की पहली किताब होनी चाहिए, इससे पूर्व उसकी किसी भी विधा की कोई किताब प्रकाशित नहीं होनी चाहिए। इस संबंध में एक स्व-हस्ताक्षरित घोषणा पत्र लेखक को पांडुलिपि के साथ भेजना होगा।

3. पांडुलिपि कम से कम चालीस हज़ार तथा अधिकतम अस्सी हज़ार शब्दों की होनी चाहिए। इससे कम या अधिक शब्द संख्या होने पर पांडुलिपि अमान्य कर दी जायेगी।

4. पांडुलिपि 15 अक्टूबर 2026 के पूर्व शिवना पुरस्कार के ईमेल **shivna.awards@gmail.com** पर प्राप्त हो जाना चाहिए। पांडुलिपि वर्ड डॉक में यूनीकोड फॉण्ट में टाइप होनी चाहिए। किसी अन्य फॉण्ट में होने पर स्वीकार नहीं की जायेगी।

5. लेखक को 11,000 रुपये (ग्यारह हज़ार रुपये) का यह पुरस्कार शिवना के प्रतिष्ठा आयोजन 'शिवना साहित्य समागम' में प्रदान किया जायेगा।

6. लेखक को पांडुलिपि के साथ पुस्तक के मौलिक, स्वलिखित तथा अप्रकाशित होने का हस्ताक्षरित पत्र भेजना आवश्यक है।

7. पांडुलिपि के प्रथम पृष्ठ पर लिखा होना चाहिए- 'शिवना नवलेखन पुरस्कार के लिए'।

8. प्रकाशित पुस्तकों के कॉपीराइट (प्रिंट, डिजिटल तथा ऑडियो) पाँच वर्ष तक लेखक तथा शिवना प्रकाशन के पास संयुक्त रूप से रहेंगे, इस अवधि में लेखक उस पुस्तक को अन्यत्र कहीं से प्रकाशित नहीं करवा सकेगा।

9. पुरस्कार के लिए अंतिम निर्णय निर्णायकों का होगा जो प्रतिभागियों के लिए मान्य होगा।

10. पुस्तक का प्रकाशन शिवना प्रकाशन के निर्धारित मापदण्डों के अनुसार किया जायेगा, उसमें किसी भी प्रकार का कोई परिवर्तन लेखक के अनुरोध पर नहीं किया जायेगा।

संपर्क- शिवना प्रकाशन, पी. सी. लैब, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

दूरभाष- 07562-405545, व्हाट्सएप- +91-8959446244, ईमेल- shivna.awards@gmail.com

निर्णायक, समन्वय तथा कार्यपालन समिति

सुधा ओम ढींगरा
कथाकार, उपन्यासकार

मनीषा कुलश्रेष्ठ
कथाकार, उपन्यासकार

यतीन्द्र मिश्र
कवि, कथेतर-लेखक

प्रभात रंजन
कथाकार, उपन्यासकार

गौतम राजऋषि
कथाकार, उपन्यासकार

ज्योति जैन
कथाकार, उपन्यासकार

शैलेन्द्र शरण
कथाकार, कवि

मनीष वैद्य
कथाकार, पत्रकार

पारुल सिंह
कवि, उपन्यासकार

शहरयार
कवि, संपादक

साक्षात्कार

कश्मीर को शब्दों में उकेरना हिन्दी वालों के वश की बात नहीं है

सुप्रसिद्ध शायर, कथाकार, उपन्यासकार कर्नल गौतम राजऋषि से आकाश माथुर की बातचीत

गौतम राजऋषि
द्वारा स्व. डॉ. रामेश्वर झा, पूरब बाज़ार,
सहरसा, बिहार 852201
मोबाइल- 9759479500
ईमेल- gautamrajrishi@gmail.com

आकाश माथुर
152, राम मंदिर के पास, क़स्बा, सीहोर,
मप्र 466001,
मोबाइल- 9200004206
ईमेल- akash.mathur77@gmail.com

कर्नल गौतम राजऋषि भारतीय सेना में विगत अठाईस सालों से कार्यरत हैं और अपनी वीरता और निष्ठा के लिए 'पराक्रम पदक' व 'सेना मेडल' से अलंकृत हैं। अपनी सैन्य-सेवा के पिछले ढाई दशकों में, वे देश के सबसे घातक और कठिन उग्रवाद-ग्रसित क्षेत्रों के लगभग हर इंच से परिचित हैं और आतंकवादियों के साथ एक भयंकर मुठभेड़ में गंभीर रूप से घायल भी हुए हैं। उनकी कहानियाँ, ग़ज़लें और लेख हिन्दी की सभी शीर्ष साहित्यिक पत्रिकाओं जैसे हंस, ज्ञानोदय, कादंबिनी, वागर्थ, आहा ज़िंदगी, कथादेश, आलोचना, वर्तमान साहित्य, जनसत्ता, दैनिक जागरण, अमर उजाला आदि में प्रकाशित हुए हैं। वे मुशायरों और कवि-सम्मेलनों में अपनी अनूठी प्रस्तुति और अपने विशिष्ट अंदाज़ के लिए समान रूप से लोकप्रिय हैं। अभी तक दो ग़ज़ल-संग्रह और एक कहानी-संकलन प्रकाशित हो चुके हैं। उपन्यासों की एक लंबी सीरीज़ पर काम चल रहा है, पहले दो उपन्यास 'हैशटैग' और इन्फ़ॉर्मर' प्रकाशित हो चुके हैं।

आकाश माथुर- गौतम जी, मैं सबसे पहले शुरुआत आज की एक बड़ी बहस पर आपके विचार जानने से ही करना चाहूँगा। आज पॉपुलर साहित्य और गंभीर साहित्य के बीच एक लंबी बहस चल रही है, जहाँ पॉपुलर साहित्य को मुख्यधारा में वह सम्मान नहीं मिलता। आप ने दोनों तरह का साहित्य लिखा है, आप इस विभाजन को कैसे देखते हैं? क्या जो लोकप्रिय है, वह उत्कृष्ट नहीं हो सकता?

गौतम राजऋषि- नहीं, यह बहस आज से नहीं बहुत-बहुत सालों से चली आ रही है। मेरा व्यक्तिगत रूप से मानना है कि यह पूरी बहस ही बेबुनियाद और फ़िज़ूल है। हर लेखक अच्छे से समझता है कि उसका अपना जॉनर क्या है। किस विषय या किस 'लोकेल' पर उसकी बेहतर पकड़ है। किस मुद्दे पर वह अपना सर्वोत्तम दे सकता है। अब अगर पॉपुलर साहित्य पर ही उसकी लेखनी चलती है तो उसे यह उम्मीद रखनी ही नहीं चाहिए कि उसे मुख्यधारा या गंभीर साहित्य वाला कुनबा अपने में शामिल करेगा। ठीक उसी तरह से कथित गंभीर साहित्य के लेखकों का रोना अमूमन इसलिए मचता रहता है कि उसकी किताबों की बिक्री पॉपुलर जॉनर वाले किताबों की तरह नहीं होती। बहस जो भी इस तरह की होती है, वह इस अलग-अलग जॉनर के लेखक लोग ही पैदा करते रहते हैं। पाठक को इस सब 'चिल्ल-पों' से कोई लेना-देना नहीं होता। वह तो वही ख़रीदकर पढ़ता है, जो उसके मन को भाता है। दोनों जॉनर की उत्कृष्टता भी पाठक ही तय करता है, करता आ रहा है और वही करता रहेगा। लेखकों के क़बीले की लड़ाई चलती रहेगी।

आकाश माथुर- इसी लोकप्रियता के दौर में शायरी की भाषा भी बदली है। एक दौर था जब रक़ीब, क़ासिद, साक़ी और मयखाने के बिना ग़ज़ल अधूरी थी, लेकिन आज आपकी और नई पीढ़ी की शायरी में स्कूटी, कैडबरी, पिस्टल और सिगरेट जैसे समकालीन शब्द धड़ल्ले से आ रहे हैं। परंपरा और आधुनिकता के इस भाषाई बदलाव को आप कितना ज़रूरी मानते हैं?

गौतम राजऋषि- बहुत-बहुत ज़रूरी मानता हूँ मैं। अब आप ही बताओ कि आज के दौर में किधर है मयख़ाना। वह 'पब' बन चुका है। 'साक़ी' अब बार-टेंडर और वेटर में तब्दील हो चुका। इश्क़-मुहब्बत की दुनिया 'सिचुएशनशिप', 'बेंचिंग', 'वन नाइट स्टैंड' और जाने क्या-क्या हो चुकी है। रक़ीब दोस्त बन चुका है कि 'टू टाइमिंग' तो न्यू नॉर्मल है इस दौर का। व्हाट्सएप्प और इंस्टा के इस ज़माने में ख़त कौन लिखता है कि क़ासिद जाएगा महबूब तक संदेशा लेकर। शाइरी को भी इस दौर के हिसाब से भाषाई चोगा बदलना होगा। ग़ज़ल और शाइरी को अपनी क्लासिकल भाषा से चिपके रहने वाले ज़िद्दी और स्टीरियो-टाइप 'एटिच्यूड' में बदलाव लाना ही पड़ेगा। लुगत का ज़माना रहा नहीं और न ही लोगों के पास वक़्त है कि वे लफ़्ज़ों के मानी ढूँढ़ने के लिए डिक्शनरी पलटें। यहाँ तो आप दस सेकेंड वाली रील तक को दो सेकेंड में आगे स्वाइप कर बढ़ जाते हैं। गूगल भी अपनी आख़िरी साँसें गिन रहा, एआई के महाअवतारीय आगमन पर। कविता, कहानी, ग़ज़ल या किसी भी विधा को बदलते समय के

अनुसार अपनी भाषा और अपने परिवेश को समूचित 'मेक-ओवर' के लिए तैयार होना ही होना होगा। रोज़मर्रा की बातें और अपने आस-पास आम दिनचर्या में दिखने वाली बातों को उन्हीं लफ़्ज़ों के ज़रिए इस्तेमाल कर लेने में कोई हर्ज़ नहीं है। भाषा समृद्ध ही होती है इससे।

आकाश माथुर- अमूमन सेना के अनुशासन के बीच लोग गीतों या कविताओं की तरफ जाते हैं, लेकिन आपका रुझान 'ग़ज़ल' की तरफ कैसे हुआ?

गौतम राजऋषि- विश्व भर की कविताओं के तमाम फ़ॉर्मेट में ग़ज़ल इकलौता ऐसा फ़ॉर्मेट है, जिसकी बुनियाद पूरी तरह से इसके अनुशासन पर टिकी हुई है। ठीक सेना की तरह। लेफ़्ट-राइट-लेफ़्ट-राइट की धुन पर परेड करते सैनिकों की टुकड़ी का एक सिपाही भी अगर ग़लत क़दम निकाल लेता है तो समूची टुकड़ी का अनुशासन भंग हो जाता है। बिल्कुल उसी तरह, ग़ज़ल के एक मिसरे में एक भी हर्फ़ अगर अपने वज़्न से या मीटर से बाहर होता है तो पूरा शे'र ख़ारिज़ हो जाता है। तो एक फ़ौजी का ग़ज़ल विधा से जुड़ना बहुत ही स्वाभाविक है। वैसे रुझान फ़िल्मी गीतों से होता हुए कविता तक पहुँचा था। फिर बचपने में मेंहदी हसन और ग़ुलाम अली की गायी ग़ज़लों को पापा के साथ सुनते हुए इक जुनून तक आ पहुँचा।

आकाश माथुर- आप अक्सर फ़िराक़ गोरखपुरी और डॉ. बशीर बद्र की शायरी का ज़िक्र करते हैं और उनसे गहरे प्रभावित रहे हैं। बशीर बद्र साहब ने पारंपरिक उर्दू को आम अवाम की बेहद आसान और संवेदनात्मक भाषा बनाया "कोई हाथ भी न मिलाएगा जो गले मिलोगे तपाक से..."। कर्नल साहब, बशीर बद्र साहब की सादगी और फ़िराक़ साहब के हुस्न-ओ-इश्क़ के फ़लसफ़े ने आपके भीतर के शायर को किस तरह तराशा?

गौतम राजऋषि- हाँ, मेरी बर्बादी में फ़िराक़ साब और बशीर साब दोनों का बहुत बड़ा योगदान है। दोनों की शाइरी का मुहब्बत वाला हिस्सा जैसे एक बचपन से ही मेरे सीने में कौंधने लगा था। बाद के वर्षों में फ़िराक़ साब का 'एटिच्यूड' और बशीर साब का 'एप्टिच्यूड'...इन दो "अल्कोहलिक सबस्टांस" का ऐसा कॉकटेल बनाया ज़िंदगी ने कि उसकी ख़ुमारी अब जाते-जाते अख़िरी दम के साथ ही जाएगी। फ़िराक़ साब का एक शेर तो आठवीं कक्षा में ही मुझसे ऐसा लिपटा आकर कि उसकी तासीर मेरे जीने का उसूल ही बन गई "पाल ले इक रोग नादाँ ज़िंदगी के वास्ते / सिर्फ़ सेहत के सहारे ज़िंदगी कटती नहीं"। वहीं दूसरी तरफ़ बशीर साब ने जिस तरह से अपने आस-पास के 'एब्सट्रैक्ट्स' को अपनी शाइरी में पर्सोनीफ़ाय किया है, वह मेरे लिए बहुत ही चौंकाने वाला था। जब पहली बार उनका वह शेर "शॉवर के नीचे घुलती जाती है शाम/मेरी आँखों पर इक टॉवेल लिपटी है" तो मैं एक मुद्दत तक उस शॉवर में भीगता रहा। यह जो पर्सोनिफ़िकेशन वाला तिलिस्म था उनकी शाइरी में जैसे कि इसी शेर में जिस तरह से 'शाम' ख़ुद शावर के नीचे घुलती जा रही है...शाम यहाँ पर एक जीती-जागती माशूक़ के रूप में अपने पूरे क़द में उभर कर आती है। आप विज़ुअलाइज़ करने लगते हो दृश्य को। फिर शाइर साब ख़ुद ही सेंसर भी लगा देते हैं यह कहते हुए कि आँखों पर टॉवेल लिपटी है। यह जो दृश्यात्मकता है, वह भी अपने पूरे जदीद अवतार में, वह किसी और शाइर के पास नहीं है। मेरी ख़ुद की शाइरी का एक बहुत बड़ा हिस्सा इसी दृश्यात्मकता को आत्मसात् किये है।

आकाश माथुर- बशीर बद्र साहब का एक दौर था जब वे मुशायरों की जान हुआ करते थे। आज जब आप मंचों पर जाते हैं, तो क्या आपको लगता है कि बशीर बद्र ने उर्दू ग़ज़ल को जो आसान मिज़ाज दिया था, उसी रास्ते पर चलकर आज की शायरी ज़िंदा है?

गौतम राजऋषि- नि:संदेह। बात यह है कि ग़ज़ल और उसकी मंचीय प्रस्तुति का ज़माना शुरू से ही लोकप्रिय रहा है और उसकी अपनी लोकप्रियता कभी कम नहीं होने वाली है। मुशायरों में वे ही शेर सुनने वालों की ज़बान पर चढ़े जो आसान लफ़्ज़ों में थे। उन्हीं-उन्हीं शेरों को बार-बार उद्धृत किए जाने की मक़बूलीयत हासिल हुई, जिन्हें समझने-समझाने के लिए डिक्शनरी देखने की ज़रूरत नहीं पड़ी। मेरे उस्ताद पंकज सुबीर अक्सर ग़ज़ल की पेचीदगियाँ समझाते हुए कहा करते थे कि आसान कहना बहुत मुश्किल होता है। बशीर बद्र की आसान शाइरी सुनने में बेशक आसान लगती हो, हम बस कल्पना ही कर सकते हैं कि उन शेरों को कहना कितना मुश्किल रहा होगा ख़ुद शाइर के लिए।

आकाश माथुर- अक्सर लोग चुटकी लेते हैं कि आपकी इस क़दर लोकप्रियता के पीछे सिर्फ़ शायरी नहीं, बल्कि एक फ़ौजी अफ़सर और शायर का जो तड़का है, उसका बड़ा हाथ है। क्या वर्दी और शायरी का यह मेल आपके लिए वरदान साबित हुआ?

गौतम राजऋषि- हाहाहा... हाँ, सुनने में मुझे भी आये हैं ऐसे कुछ जुमले। लेकिन ठीक है। बात सही भी है एक तरह से। फ़ौजी वर्दी और शाइरी का कॉकटेल है तो बहुत नशीला, इसमें कोई दो राय नहीं। अब जो है सो है। उसे मैं तो झुठला सकता नहीं। फ़ौजी हूँ और शाइर भी हूँ। दोनों ही अपनी मेहनत की कमाई है। लेकिन जहाँ इस कॉकटेल ने मुझे, जो भी थोड़ी-बहुत पहचान बनी है वह मुहैया करवाई है, वहीं इसी कॉकटेल का अपना नुक़सान भी है। फ़ौज की ड्यूटी और उस ड्यूटी की व्यस्तता कुछ ऐसी है कि आपको अपनी सुविधानुसार ज़्यादा वक़्त मिलता नहीं है। यह वक़्त का न मिलना, जहाँ आपके लिखने में तो बाधा डालता ही है, वहीं जाने कितने ही मुशायरों, कवि-सम्मेलनों या साहित्यिक कार्यक्रमों के लिए आये निमंत्रणों को मना करने के लिए भी विवश कर देता है। कुछ आयोजकों ने तो निमंत्रण को मेरे द्वारा मना करने की विवशता को मेरे कथित 'एरोगेंस' के पाले में रख दिया है। उन कुछ आयोजकों की दृष्टि में मैं एक बहुत ही अड़ियल और घमंडी व्यक्ति हूँ। तो इस तरह के अपने नुक़्सान भी बहुत हैं इस कॉकटेल का।

आकाश माथुर- फ़ौजी होने के नाते आपसे युद्ध और बारूद की उम्मीद की जाती है, लेकिन आपकी ग़ज़लें बेहद रूमानी होती हैं। फ़ौजी के दिल में इस कदर रूमानियत और कोमलता का कोई ख़ास सबब?

गौतम राजऋषि- मेरा व्यक्तिगत रूप से ये मानना है कि प्रेम से ज़्यादा सामयिक और प्रेम से ज़्यादा सटीक और कुछ भी नहीं है इस दुनिया में। सरहद की दुनिया, गोली-बारूद ये सब तो मेरी ज़िंदगी के ज़रूरी अवयव हैं। इन्हें तो मैं दरकिनार कर ही नहीं सकता हूँ। लेकिन जो ज़िंदगी मैं सरहद पर जीता हूँ, उसे ही अपनी ग़ज़लों में भी उतारूँ...यह मुझे रुचता नहीं। कई बार मंचों पर भी मुझसे उम्मीद की जाती है कि मैं ओज और वीररस वाली कविताओं का पाठ करूँगा। न! ओज और वीरता की दुनिया अलग है मेरे लिए। वह जहाँ जिस दुनिया का हिस्सा है, वहीं छजता है। ग़ज़ल मेरे लिए हमेशा से रूमान की ही अभिव्यक्ति रही है। एक पाठक और एक श्रोता के रूप में भी मुझे वही शेर ज़्यादा पसंद आते जो अपने महबूब के लिए रोमांस को व्यक्त करते हैं। हम सब अपने बेतरतीब पलों में प्रेम के ही गीत ज़्यादा गुनगुनाते हैं। यह नैसर्गिक है। आप अपनी रोज़मर्रा के जीवन में वीररस की कविता का पाठ नहीं करते हो। उस पाठ के लिये सायास प्रयास करना पड़ता है आपको। अनायास पलों में तो आपकी ज़बान पर प्रेम के ही नग्में गूँजते हैं। तो ये जो 'अनायास' है, यही अपना अस्ल है। उसी अस्ल को मैं अपनी ग़ज़लों में रखता हूँ।

आकाश माथुर- आपकी शायरी का एक बहुत ख़ूबसूरत हिस्सा कश्मीर पोस्टिंग के दौरान निखर कर आया। अमूमन लोग कहते हैं कि कश्मीर की वादियों की ख़ूबसूरती शायर बना देती है, लेकिन वहाँ के ज़मीनी हालात और तनाव भी जगज़ाहिर हैं। आपकी बेहतरीन ग़ज़लों के पीछे कश्मीर का हुस्न था या वहाँ का कोई अनकहा दर्द?

गौतम राजऋषि- शायरी में हुस्न। क़िस्सों में दर्द। कश्मीर की एक अलग ही त्रासदी है। शापित है वह। इतने बेमिसाल हुस्न की मिल्कियत होते हुए भी वह अनगिनत दर्द को झेलते रहने को शापित। दरअस्ल सच कहूँ, तो कश्मीर के हुस्न को और कश्मीर के दर्द को शब्दों में बाँधा ही नहीं जा सकता है। एक शब्दकार होते हुए भी यह बात मैं कह रहा हूँ और पूरे होशो-हवास और ज़िम्मेदारी के साथ कह रहा हूँ। कश्मीर को बहुत-बहुत अच्छे से जानने-समझने वाले ही मेरी इस बात के मायने तक पहुँच सकते हैं। दरअस्ल हिन्दी वालों के तो वश की ही बात नहीं है कश्मीर को शब्दों में उकेरने की। हिन्दी की लगभग पूरी बिरादरी ने कश्मीर को या तो बस एक सैलानी की तरह देखा है या फिर फ़िल्मों और गिने-चुने, पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित आलेखों या किताबों से जाना है। कश्मीर इन सबसे परे, इन सबसे अलग और भी बहुत-बहुत कुछ है। तेरह साल से ऊपर अपने जीवन का एक अहम हिस्सा वहाँ गुज़ारने के बाद भी मैं कश्मीर को बीस प्रतिशत ही समझ पाया हूँ तो ख़ुशनसीब हूँ। इस बीस प्रतिशती समझ में भी बहुत कुछ खोया है मैंने, तब जाकर यह थोड़ी-बहुत समझ आ सकी है। कश्मीर मेरी ग़ज़लों और मेरी कहानियों का सबसे अहम और सबसे उलझा हुआ किरदार है। जहाँ वह एक हीरो भी है और विलेन भी, वहीं वह माशूक़ा भी है और महबूब भी।

आकाश माथुर- आपके उपन्यास इन्फॉर्मर में सेना, ख़ुफ़िया तंत्र और अंदरूनी व्यवस्था की कई ऐसी बातें और परतें हैं, जो आम दुनिया नहीं जानती। क्या इस किताब के आने के बाद आपके साथ वाले लोगों या महकमे की तरफ से कोई आपत्ति या असहजता सामने आई?

गौतम राजऋषि- नहीं, कोई आपत्ति या असहजता का सवाल ही नहीं पैदा होता। जो है वह यथार्थ है। कोई भी जानकारी ऐसी उपलब्ध करायी ही नहीं गई है जो आज के गूगल या एआई के ज़माने में पहले से 'ओपेन सोर्स' पर हासिल न हो। मेरा उद्देश्य ही था, वहाँ पदस्थापित सैनिकों के साथ दिन-ब-दिन की परेशानियों और सच्चे हालात से पाठकों को वाबस्ता करवाना। साथ ही कश्मीर के स्थानीय निवासियों के दोनों पक्षों की तस्वीर सामने रखना। फिलहाल तो हिन्दी कथा-जगत् में मेरे सिवा और कोई है ही नहीं जो कश्मीर की ऐसी कहानियों को लिख सकता है। नहीं, यह घमंड नहीं है। सच्चाई है। कश्मीर का यह पक्ष तो बस एक सैनिक ही लिख सकता है और वह सैनिक जिसने वहाँ सचमुच (किसी 'क्लिशे' के तहत नहीं) का ख़ून बहाया हो और जिसने शून्य से भी नीचे के तापमान में पसीने निकाले हों। इन कहानियों को लिखना और इन्हें हिन्दी बिरादरी के सामने लाना ना सिर्फ़ मेरा जुनून है, बल्कि मेरा फ़र्ज़ भी है।

आकाश माथुर- आपने उपन्यासों में एक नया प्रयोग किया है उपन्यास को सीरीज़ की तरह लिखना। हिन्दी साहित्य में इसे एक बड़ा जोख़िम माना जाता है क्योंकि पाठक का धैर्य और जुड़ाव बनाए रखना आसान नहीं होता। इस जोख़िम को उठाने का ख़्याल कैसे आया?

गौतम राजऋषि- वह फ़ौजी ही क्या जो जोख़िम उठाने से घबराये। जैसा कि मैंने ऊपर एक सवाल के जवाब में बताया कि कश्मीर ख़ुद में एक किरदार है और उसे पूरी तरह शब्दों में बाँध पाना मुमकिन नहीं। यह जो कहानी है, उसे मेरा लेखक बस चंद पन्नों में समेट ही नहीं सकता। इसे मेरा अपना लेखकीय 'लिमिटेशन' भी माना जा सकता है। दूसरी बात यह भी है कि कश्मीर पर हिन्दी साहित्य में या तो सैलानियों वाले दृष्टिकोण से देखा गया है या फिर वहाँ बसे स्थानीय कश्मीरियों के दृष्टिकोण से, वे चाहें मुस्लिम हों या फिर विस्थापित हिंदू। उसी कश्मीर में विगत पाँच दशकों से ऊपर, उसी कश्मीर का लहू-मज्जा-साँस-साँस में रमा हुआ भारतीय सेना का एक सैनिक हाशिये पर ही रहा है अभी तक। मुझे उस सैनिक के दृष्टिकोण से कश्मीर को सामने लाना था। यह एक, वह जो कहते हैं न भागीरथी प्रयास, तो ऐसा ही कुछ है। हिंदी साहित्य पर एक पंथ-विशेष का शुरुआती दौर से जो दबदबा रहा है, उस वजह से सैनिक का कश्मीर में होना कश्मीर की कहानी का किरदार बन ही नहीं पाया कभी। उस पंथ-विशेष के लिए सैनिक तो बस कथित दमनकारी सरकार का एक क्रूर अवयव रहा है, जो अपने टैंकों और भारी-भरकम बूटों से बस कुचलना जानता है। मुझे ये एक-तरफ़ा तस्वीर बदलनी थी और यह बदलना एक उपन्यास और कुछ कहानियों से संभव नहीं है। बहुत कुटिलता से हिन्दी साहित्य में सैनिक की इस दमनकारी छवि को बनाया गया है। बहुत मेहनत करनी है मुझे तो अभी। अकेला हूँ

अभी, लेकिन उम्मीद है कि धीरे-धीरे कुनबा बढ़ेगा। इसलिए उपन्यासों की यह सीरीज़ लिख रहा हूँ। देखिए, कितना सफल हो पाता हूँ मैं अपने इस प्रयास में।

आकाश माथुर- आपकी कहानियों का नायक अक्सर फ़ौजी होता है और वह भी मल्टी-टैलेंटेड। क्या हकीक़त में फ़ौज में ऐसे ऑलराउंडर नायक आपको मिले, जिनसे यह किरदार प्रेरित है, या यह पूरी तरह कर्नल गौतम की कल्पना की उपज है?

गौतम राजऋषि- एक फ़ौजी के पास कोई विकल्प होता ही नहीं मल्टी-टैलेंटेड होने का। यह एक सर्वाइवल इंस्टिक्ट है। मल्टी टास्किंग करना एक तरह से आपका ट्रेड-क्राफ़्ट होता है, जब आप फ़ौज में भरती होते हैं। एक ही सैनिक को अक्सर कई तरह के रोल निभाने की न सिर्फ़ आदत हो जाती है, बल्कि यह उसके दैनंदिन का हिस्सा भी बन जाता है। ट्रेनिंग के शुरुआती दौर से ही आपको वह सब कुछ करना सिखाया जाने लगता है, जिसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते, अपने सामान्य विद्यार्थी जीवन में। अपने आस-पास कितने बारहवीं पास किये हुए लड़कों को आप देखते हैं... जो अपना बिस्तर भी बनाता हो, अपनी फटी शर्ट भी सिल सकता हो, टॉयलेट साफ़ करता हो, ख़ुद का खाना बनाता हो, कोई भी गाड़ी चला लेता हो, झुग्गियों में भी बिना शिकवा रह सकता हो और फ़ाइव स्टार के परिवेश में भी उतनी ही सहजता से घुल-मिल जाता हो, फ़िज़िक्स की क्वांटम थ्योरी भी समझा सकता हो और मध्यकालीन इतिहास के किसी अध्याय पर भी बोल सकता हो, एके 47 राइफ़ल के भी कल-पुर्जे क्षण भर में खोल सकता हो और साइकिल की टायर का पंक्चर भी बना सकता हो, तीन-तीन दिन तक लगातार भूखा रह सकता हो और खाना खाने पर उतर आये, तो पाँच लोगों का खाना अकेला खा जाए, सीधी खड़ी चट्टान पर छिपकली की तरह चढ़ जाता हो और गहरी नदी को भी आराम से तैर कर पार कर सकता हो, गिटार पर भी हाथ फेर लेता हो थोड़ा-बहुत तो थोड़ा-बहुत ढोलक पर भी थपकियाँ दे सकता हो, महिलाओं से भी बात करने की अच्छी तमीज़ रखता हो और छोटे बच्चों में भी आसानी से घुल जाता हो, इंग्लिश के क्लासिक्स भी पढ़ा हो और हिन्दी साहित्य का भी ठीक-ठाक अध्येता हो। फ़ेहरिस्त लंबी है बहुत। कहने का सार यह कि एकेडमी में तीन से चार साल की ट्रेनिंग के बाद एक संपूर्ण पैकेज के तौर पर बाहर निकलता है, एक फ़ौजी ऑफ़िसर। एक से एक किरदार भरे हुए हैं भारतीय सेना में। लिखने के लिए एक उम्र तो बहुत ही कम है इन किरदारों पर। और नहीं, ये किरदार काल्पनिक तो कतई नहीं हैं। स्वदेश दीपक की एक कम चर्चित कहानी है "किसी एक पेड़ का नाम लो"। कभी पढ़ियेगा आकाश आप इस कहानी को समय निकाल कर। एक और अद्‌भुत मल्टी-टैलेंटेड फ़ौजी से मुलाक़ात होगी।

आकाश माथुर- फ़ौजी जीवन लगातार भटकाव और ट्रांस्फ़र का नाम है। ऐसे में अपनी फ़ौजी ड्यूटी को सँभालना, लिखना और साथ ही परिवार को साध पाना... फ़ौजियों का पारिवारिक मैनेजमेंट कैसा होता है? लगातार बिखरते-सिमटते इस जीवन को कैसे सँभालते हैं?

गौतम राजऋषि- शुरू-शुरू में तो बहुत मुश्किल होता है, लेकिन बाद में सच पूछिए तो फ़ौजियों जैसे ही जीवट हो जाते हैं उनके परिवार वाले भी। सबसे पहली बात तो यह कि कोई भी व्यक्ति जब वह निर्णय लेता है कि उसे फ़ौज में जाना है, तो उसे इन सब परेशानियों और दुश्वारियों का पता होता है। वह जानता है कि उसे परिवार से दूर रहना होगा। कठिन इलाकों में पोस्टिंग होगी। परिवार पर आयी किन्हीं भी आपदा या विपदा के पलों में वह तुरंत अपने परिवार के पास नहीं पहुँच सकता है। ऐसी दुर्गम जगहों पर तैनाती हो सकती है कि सबसे नज़दीकी सड़क और रेल तक ही दो दिन लगे पहुँचने में। मोबाइल का सिग्नल नहीं मिलेगा। घर वालों से बात नहीं हो सकती जब जी चाहे तब। ऐसी तमाम मुश्किलों की जानकारी उस व्यक्ति को भरती के समय ही दे दी जाती है। यानी कि इन सब बातों की जानकारी होने के बाद भी वह अपने निर्णय पर टिका रहता है कि उसे तो फ़ौज में जाना ही है। बस फिर क्या है फिर तो जैसा कि शहरयार साब कहते हैं "कहिए तो आस्माँ को ज़मीं पर उतार लायें / मुश्किल नहीं है कुछ भी अगर ठान लीजिए"... बिल्कुल वैसा ही मुआमला हो जाता है। एक और बात यह है कि फ़ौज में जो बटालियन होती है या जिस भी रेजीमेंट में कोई फ़ौजी भरती होता है, वह एक परिवार ही होता है। फ़ौज में एक ही बटालियन के फ़ौजियों का भाईचारा और दोस्ती सगे भाइयों से भी बढ़कर होती है। वह बटालियन, वह रेजीमेंट मुश्किल क्षणों में, आपकी अनुपस्थिति में भी आपके परिवारजनों के साथ खड़ी रहती है हमेशा। फिर परिवार को भी जीवट हो जाना पड़ता ही है। कोई और चारा होता नहीं उनके पास। जहाँ तक इन सबके बीच लिखने-पढ़ने की बात है तो वह तो आपके अपने शौक़-ओ-जुनून पर है। सबके पास दिन के वही चौबीस घंटे हैं। यही एकमात्र चीज़ है, जिसे भगवान् ने पृथ्वी के हर प्राणियों में बराबर बाँटा हुआ है... दिन के चौबीस घंटे। तो इन चौबीस घंटों में शौक़ जो है वह थोड़ा-बहुत अपने लिए समय निकलवा ही लेता है। शेष काम जुनून कर देता है।

आकाश माथुर- पिछले कुछ समय से मंचों (कवि सम्मेलनों और मुशायरों) पर आपकी सक्रियता और उपस्थिति काफी बढ़ी है। क्या अब आप मंच को और ज़्यादा गंभीरता से ले रहे हैं, या यह सिर्फ़ पाठकों से सीधे जुड़ने का माध्यम है?

गौतम राजऋषि- नहीं, ऐसा कुछ सोच-समझ कर नहीं किया है। मंच पर जाकर पढ़ना या किताबें लिखना, ये सब मेरे लिए शौक़ की बात है। एक तरफ़ मंच पर जाना और अपने लिखे को सुनाना, वहीं दूसरी तरफ़ अपने लिखे को किताब की शक्ल में लाना... दोनों के ही अपने अलग-अलग आनंद हैं। मंच पर थोड़ी उपस्थिति इसलिए बढ़ी है कि अब अपने प्रोफ़ेशनल जीवन में थोड़ा-सा वक़्त मिलने लगा है, तो ऐसे आयोजनों के निमंत्रण को पहले के बनिस्पत ज़्यादा स्वीकार्य करने लगा हूँ। अभी भी बहुत सारे निमंत्रण को मना कर देना पड़ता है कि मेरे प्रोफ़ेशन की अपनी

व्यस्तताएँ होती हैं, इसका अपना डिमांड है जो कि स्वाभाविक रूप से मेरे साहित्यिक कारवाइयों से ऊपर प्राथमिकता रखता है। दोनों बातों में अस्ल बात यही है कि यह सब मैं बस शौक़ के लिए करता हूँ। मंच मेरी आवश्यकता नहीं है। मंच पर ज़्यादा दिखना किसी विवशता या मजबूरी या इसी तरह की और किसी बातों का हिस्सा नहीं है। बस अच्छा लगता है। मज़ा आता है अपनी बुनी हुई ग़ज़लों को बोलकर सुनाने में। इस आनंद में अपनी किताब के पाठकों से भी जुड़ाव बढ़ता है तो वह एक बोनस ही है। है ना? वो सरशार सैलानी साब का शेर है ना- "चमन में इख़्तिलात-ए-रंग-ओ-बू से बात बनती है,
हम ही हम हैं तो क्या हम हैं तुम ही तुम हो तो क्या तुम हो"।

आकाश माथुर- आप एक साथ कई मोर्चों पर सक्रिय हैं। अगर दिल पर हाथ रखकर चुनना हो, तो आप ख़ुद को किस रूप में सबसे बेहतर और संतुष्ट पाते हैं- फ़ौजी, शायर, कहानीकार या उपन्यासकार?

गौतम राजऋषि- मैं दिल-जिगर-गुर्दा-आँख-कान-नाक-साँस-साँस से फ़ौजी हूँ। जब होश ने, होश में आना जाना भी नहीं था, तब से मैं बस और बस फ़ौजी ही बनना चाहता था। पता नहीं क्यों, पता नहीं कैसे...माँ कहती हैं कि जब बोलना सीखा और थोड़ी-बहुत समझ जागृत हुई तो मैंने कहना शुरू कर दिया था सबसे कि मैं सिपाही हूँ। जबकि परिवार में, पूरे ख़ानदान में दूर-दूर तक कहीं कोई सेना से जुड़ा हुआ नहीं था। जाने अवचेतन मन की गहरी परतों में कौन-सी चेतना बैठी हुई थी सेना को लेकर या फिर पिछले जन्म की कोई अधूरी रह गई आस? कई बार अबूझे से धुँधले-धुँधले से सपने रहे हैं नींद की तलहटियों में जिनमें मैंने ख़ुद को एक विकराल भीषण युद्ध में धराशायी होते देखा है। शायद दोनों विश्व-युद्ध में से किसी एक में, पिछले जन्म मैं हताहत सैनिक रहा हूँगा। ऐसी ही कुछ तो बात रही होगी कि जुनून रहा सेना में भरती होने का। तो मेरा फ़ौजी होना तमाम अव्वलो-आख़िरश-दरमियाँ-दरमियाँ में है और इन सब में हमेशा से सबसे ऊपर। बाक़ी सारी चीज़ें उसके बाद आती हैं। ये शाइरी, कहानियाँ, उपन्यास वगैरह। ये सब व्यक्तित्व का दूसरा पहलू हैं। एक तरह का एक्सटेंशन है पर्सनैलिटी का। फ़ौजी होना जुनून है। लेखक होना शौक़।

आकाश माथुर- एक सजग पाठक के तौर पर, आपकी पसंदीदा कहानी और आपके सबसे प्रिय लेखक कौन हैं, जिन्होंने आपको लिखने के लिए मजबूर किया?

गौतम राजऋषि- बड़ी लंबी फ़ेहरिस्त है यूँ तो यह, लेकिन फिर भी कुछ नाम लेना चाहूँगा। ख़ास तौर पर पाँच नाम, जिनको पढ़ते हुए मेरे लेखक ने बहुत कुछ सीखा है और ख़ुद को तराशा है। एक कहानीकार के रूप में उदय प्रकाश की कहानियों ने मुझे बड़ा मुतअस्सिर किया है। सही मायने में कहूँ तो जब मैं बारहवीं कक्षा में था, उस वक़्त उदय प्रकाश की एक लंबी और बहु-चर्चित कहानी "पीली छतरी वाली लड़की" हंस पत्रिका के कई अंकों में धारावाहिक के रूप में छपी थी। उस कहानी को पढ़कर मुझे पहली बार लगा कि मैं भी कहानी लिख सकता हूँ। हालाँकि उसके बाद लगभग अठारह वर्ष बीत गए, जब मैंने अपनी पहली कहानी वर्ष 2010 में लिखी थी। तो एक तरह से उदय प्रकाश की वह कहानी मेरे लिए कहानी-पाठशाला का पहला सबक़ थी। उसके बाद से तो उनकी लिखी तमाम कहानियों, चाहे वो 'तिरिछ' हो या 'वारेन हेस्टिंग्स का सांड' हो या फिर 'पाल गोमरा का स्कूटर' या 'अरेबा परेबा' या 'टेपचू' हो, सबको जैसे घोंट लिया मैंने। कहानी पढ़ने के उसी बौरायेपन में मेरा परिचय हुआ मनीषा कुलश्रेष्ठ की एक कहानी 'कुछ भी तो रूमानी नहीं से'...आहा! जाने क्या तो अटक-सा गया सीने में। वह एक बूँद होती है ना छज्जे से देर तक लटकी हुई, जिसे आप निहारते रहते हैं कि अब गिरी कि तब गिरी... कुछ वैसी ही स्थिति हो रखी थी मेरी इस कहानी को पढ़कर। फिर मनीषा कुलश्रेष्ठ के लिखे का ऐसा तिलिस्म चढ़ा मुझकर कि उनका लिखा एक-एक हर्फ़-हर्फ़ तलाश कर पढ़ने लगा मैं। उनकी कुछ अद्भुत कहानियाँ, जिन्होंने मेरी पाठशाला के सबक़ को आगे बढ़ाया...'स्वाँग', 'कठपुतलियाँ', 'कालिंदी', 'भगोड़ा', 'फाँस' वगैरह। सबक़ दर सबक़ की तलाश में भटकते इस कहानी के विद्यार्थी के सामने आयी फिर एक अचरज भरी कहानी 'ईस्ट इंडिया कंपनी'। पंकज सुबीर की यह कहानी मुझे एक अलग ही लेवल पर ले गई... वह जो गवैये के आलाप में आख़िर का एक क्रिसेंडो होता है ना, जहाँ से फिर सुर एकदम से नीचे आता है और राग वहीं समाप्त हो जाता है, ठीक वैसा ही कुछ। मतलब ट्रेन के पैसेंजर कूपे में सीट हथियाकर धीरे-धीरे पसरते जाने की नैसर्गिक भारतीयता को जिस तरह से उकेरा गया है इस कहानी में और फिर उस पसरने की तुलना भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी के आगमन और ब्रिटिश साम्राज्य के फैलते जाने से की गई है, वह जादुई है। फिर तो पंकज सुबीर की तमाम कहानियाँ..'शायद जोशी', 'अँधेरे का गणित', 'आंसरिंग मशीन', 'चौथमल मास्साब और पूस की रात'(इस कहानी ने तो ख़ैर ऐसा दीवानावार किया था कि उफ़) और एक जो वो रेणु की तीसरी कसम के बाद वाली 'चौथी, पाँचवी और छठी क़सम'...हाऽऽऽय!

इन सबको पढ़ते-गुनते-सीखते हुए ही कुणाल सिंह की एक कहानी 'सायकिल' से टकराया मैं। इस कहानी ने और ख़ास तौर पर इस कहानी के छोटे-छोटे वाक्यों के बीच छुपे-छुपे से मेटाफ़र्स ने मुझे एकदम से चित्त कर दिया था। कहानी ऐसे भी लिखी जा सकती है क्या...उफ़! मैं नए सबक़ सीखने लगा था। कुणाल की भाषा और उसकी वाक्य-संरचना आपको अवाक् कर देती है। उसकी कई कहानियाँ मेरे सबक़ में शामिल हुईं...'इतवार नहीं', 'गोंगेश पाल वृतांत', 'प्रेमकथा में मोज़े की भूमिका', 'डूब', 'सनातन बाबू का दाम्पत्य' वगैरह। आगे के सबक़ में लगभग साथ ही शामिल हुए चंदन पांडेय। उसकी एक कहानी 'भूलना' और एक कहानी 'परिंदगी है कि नाकामयाब है' ने एक झुरझुरी सी पैदा कर दी थी पूरे वजूद में। चंदन अपने आप में एक बहुत ही एक्सपेरिमेंटल कहानीकार हैं। उनकी कुछ कहानियाँ जैसे कि 'बनारस सिटी स्कूल', 'रिवाल्वर' या फिर 'लक्ष्य शतक का नारा'

एकदम बनी-बनाई लीक को तोड़कर लिखी गई कहानियाँ हैं। जवाब को समापन पर ले जाते-जाते, नीलाक्षी सिंह का भी नाम ज़रूर लेना चाहूँगा मैं। उनकी भी कई कहानियों ने मुझे अजब-ग़ज़ब ढंग से परेशान किया है...'टेकबा त टेक ना त गो' या फिर 'परिंदे का इंतज़ार सा कुछ' या 'रंगमहल में नाची राधा' वगैरह।

आकाश माथुर- सोशल मीडिया के दौर में कविता और शायरी का मिज़ाज बहुत बदल गया है। तात्कालिक वाह-वाही के इस दौर में आप समकालीन हिन्दी साहित्य की स्थिति को कैसे देखते हैं?

गौतम राजऋषि- हिन्दी साहित्य बस कविता थोड़ी न है। कविता से इतर और भी बहुत कुछ है अपने साहित्य में। कविता अपने जिस स्वरूप में पहुँच चुकी है और जिस तरह से इस्तेमाल हो रही है और लिखी जा रही है, उसके लिए सोशल मीडिया नहीं... इस विधा के पैरोकार ज़िम्मेदार हैं। सोशल मीडिया तो बस एक फ़ेसिलिटेटर भर है और अपने लिखे की तारीफ़ सुनने की ख़्वाहिश रखना तो उतना ही नैसर्गिक है, जितना प्यास लगने पर पानी की तलाश करना। सोशल मीडिया की अति-सुलभता और त्वरित-पहुँच के जहाँ अपने फ़ायदे और नुक़्सान हैं, वहीं इसका इस्तेमाल करने वाले भी तो हमलोग ही हैं। कविता और शाइरी, कहानी व आलेख या साहित्य की अन्य गद्य विधाओं के बनिस्पत, अपने कतिपय छोटे फ़ॉरमेट की वजह से सोशल मीडिया पर ज़्यादा प्रचलित हैं। इसका यह मतलब नहीं है कि गद्य की अन्य विधाओं में कचरा नहीं लिखा जा रहा है। पंद्रह सेकेंड की रील को अगर करोड़ों लोग देख रहे हैं तो तीन घंटे की अच्छी फ़िल्म भी दर्शकों की भीड़ जुटा रही है। फ़ेसबुक या इंस्टा पर छोटी-छोटी कविताओं या कविता जैसा ही कुछ-कुछ लिक्खे को पढ़ने वाले यदि सैकड़ों-हज़ारों में हैं, तो पत्रिकाओं में छपने वाली और मंचों से सुनायी जाने वाली अच्छी कविताओं-नज़्मों-ग़ज़लों के भी हज़ारों-लाखों पढ़ने-सुनने वाले हैं। तो यह जो बहस है कि सोशल मीडिया की वजह से और उस पर हासिल होने वाली त्वरित वाह-वाही की वजह से विधा बिगड़ रही है, इससे मैं सहमत नहीं हूँ। विधा को बिगाड़ने-सँवारने वाले हमलोग ही हैं, कोई मीडिया प्लैटफ़ॉर्म नहीं। अगर कचरा सोशल मीडिया पर है तो पत्र-पत्रिकाओं में भी है। यदि पत्र-पत्रिकाओं में अच्छी सामग्री है, तो सोशल मीडिया पर भी उतनी ही बेहतरीन कविताएँ और शाइरी हैं। अमजद इस्लाम अमजद का शेर याद आता है- "अगरचे कोई भी अंधा नहीं था / लिखा दीवार का पढ़ता नहीं था / तुम्हीं ने कौन सी अच्छाई की है / चलो माना कि मैं अच्छा नहीं था"

आकाश माथुर- आपकी रचनाओं में अक्सर मानवीय रिश्तों, प्रेम और स्मृतियों की बेहद महीन परतें दिखती हैं। एक फ़ौजी के भीतर इस कदर बची हुई कोमलता के पीछे की प्रेरणा क्या है?

गौतम राजऋषि- ड्यूटी पर खड़े एक फ़ौजी से ज़्यादा एकाकी... उससे ज़्यादा तन्हा शख़्स उस घड़ी में पूरी क़ायनात में और कोई नहीं होता। वैसे सच कहूँ तो बड़ा मुश्किल है इस सवाल के जवाब में कुछ भी विस्तार से कहना। इस सवाल के जवाब में कुछ भी कहना फ़ौजियों के 'ग्लोरिफ़िकेशन' के ख़ाते में गिना जाने लगेगा और वह मैं चाहता नहीं हूँ। लेकिन बस इतना ज़रूर कहूँगा कि उधर सरहद पर ऊँचे बर्फ़ीले पहाड़ों या घने जंगलों में मुस्तैद सैनिक के पास उसको बचाए रखने के लिए उसकी अपनी राइफ़ल के सिवा उसके अंदर सहेजी हुई स्मृतियाँ, उसके परिजनों का प्यार और यादें ही होती हैं बस। ड्यूटी पर खड़ा सैनिक सामने दुश्मन के आने पर जितना कठोर हो सकता है, दुश्मन की अनुपस्थिति में ड्यूटी के समय वही सैनिक अंदर से अपने पूरे वजूद के सबसे कोमल पलों को जी रहा होता है। आप कल्पना भर कीजिए बस... सुदूर बर्फ़ीले पहाड़ पर नियंत्रण-रेखा के कंटीले तारों के साथ लगा खड़ा हुआ फ़ौजी, रात का सन्नाटा, सामने घुप्प अँधेरा, ठिठुराती हुई सर्दी... निगाहें चुस्त सामने किसी भी परिस्थिति को भाँपने के लिए, लेकिन मन विचरता हुआ माँ, पत्नी, बहन, बेटी, प्रेमिका को याद करता हुआ। दुनिया भर की प्रतीक्षा, ब्रह्मांड भर की स्मृतियाँ सिमट कर उसके पास आ जाती हैं। प्रतीक्षा और स्मृति की महीन परतें उसके वजूद का स्थायी हिस्सा बनकर उससे लिपटी रहती हैं। यही प्रेरणा है। यही जीजिविषा बनाए रखती है। मुक्तिबोध कहते हैं ना- "मैं तुम लोगों से इतना दूर हूँ / तुम्हारी प्रेरणाओं से मेरी प्रेरणा इतनी भिन्न है / कि जो तुम्हारे लिए विष है मेरे लिए अन्न है"।

आकाश माथुर- कोई ऐसी कविता जो आपने कठिन ऑपरेशन या ड्यूटी के दौरान लिखी हो और वह आपके दिल के सबसे क़रीब हो? उसके पीछे की कहानी क्या है?

गौतम राजऋषि- ऐसे तो बहुत सारी पंक्तियाँ हैं, लेकिन कुछ पंक्तियों का ख़ास तौर पर ज़िक्र करना चाहूँगा। एक ग़ज़ल के कुछ शेर हैं जो अजीब सी मन:स्थिति में हुए थे। हमें ग़ज़ल के व्याकरण सिखाते समय, अपनी कक्षा में हम लोगों के उस्ताद पंकज सुबीर तरही मिसरा उछाला करते थे जिस पर हम लोगों को गिरह लगानी होती थी और ग़ज़ल बुननी होती थी। बहुत पुरानी बात है। लगभग उन्नीस-बीस साल पहले की बात है। उस्ताद ने तरही मिसरा उछाला था "रात भर आवाज़ देता है कोई उस पार से"। मैं मेजर के रैंक पर था उन दिनों और कश्मीर के किसी दुर्गम इलाक़े में डिप्लॉय था। मिसरा मुझ तक तीन-चार दिन विलंब से पहुँचा कि उधर इंटरनेट की अपनी समस्याएँ थीं। उन्हीं दिनों आतंकवादियों के साथ एक भयंकर मुठभेड़ में हमने अपने दो साथी खो दिए थे। मन की हालत ठीक नहीं थी। तो उसी हालत में उस तरही मिसरे पर कुछ शेर हुए थे, जो मेरे दिल के बहुत क़रीब हैं...

चीड़ के जंगल खड़े थे देखते लाचार से
गोलियाँ चलती रहीं इस पार से उस पार से
जिस्म तो छलनी गिरा धरती पे, लेकिन सज उठी
ख़ून से लथपथ हरी वर्दी नए श्रृंगार से
मिट गया इक नौजवाँ कल फिर वतन के वास्ते
चीख़ तक उट्ठी नहीं इक भी किसी अख़बार से
कितने दिन बीते कि हूँ मुस्तैद सरहद पर इधर
बाट जोहे है उधर माँ पिछले ही त्योहार से
अब शहीदों की चिताओं पर न मेले सजते हैं

है कहाँ फ़ुरसत ज़रा भी लोगों को घर-बार से
मुट्ठियाँ भींचे हुये कितने दशक बीतेंगे और
क्या सुलझता है कोई भी मसअला हथियार से
बैठता हूँ जब भी 'गौतम' दुश्मनों की घात में
रात भर आवाज़ देता है कोई उस पार से

आकाश माथुर- क्या सैन्य जीवन के तनाव या मोर्चे की रातों ने आपको लिखने के लिए प्रेरित किया, या साहित्य आपके लिए उस कठिन जीवन से इतर एक सुकून भरी दुनिया रहा है?

गौतम राजऋषि- लिखना निश्चित रूप से एक एस्केप की तरह रहा है। साहित्य से जुड़ाव तो पाठक के तौर पर बचपन से ही रहा। लेकिन लिखना नि:संदेह, जैसा कि आपने कहा, कठिन जीवन से इतर एक तात्कालिक सुकून की तलाश में हुआ। लिखना वह एक 'पोर्टल' की तरह रहा है मेरे लिए, जिसे हम साइंस फ़िक्शन में देखते हैं न। एक चमकीला सा गोल घूमता हुआ चक्कर वाला छोटा सा रास्ता खुलता है, सांइस फ़िक्शन में या ये जो मार्वल और डीसी की सुपर हीरोज़ वाली फ़िल्में होती हैं, उसमें। उस चमकीले छोटे से पोर्टल में घुसते ही हीरो किसी और ग्रह या किसी और समयकाल या किसी और 'पैरेलल' में पहुँच जाता है। तो लिखना मेरे लिए वैसा ही एक पोर्टल खोलता है, जिससे होते हुए मैं अपनी ही रची-बसायी दुनिया या 'पैरेलल' में चला जाता हूँ और जहाँ सारी दुश्वारियों से परे विचरता रहता हूँ। वह विचरना ज़रूरी नहीं कि साहित्य ही हो। कुछ-भी और कुछ-भी-नहीं के बीच "टू एंड फ्रो" करना होता है बस। उसमें से अधिकांश कुछ-भी-नहीं तो बस उधर डायरी के पन्नों तक ही सिमटा रह जाता है। थोड़े बहुत कुछ-भी रख देता हूँ पढ़ने वालों के सामने।

आकाश माथुर- आपके उपन्यास 'इन्फ़ॉर्मर' में जो कश्मीर दिखता है, वह मुख्यधारा के मीडिया से काफी अलग है।

गौतम राजऋषि- अभी तो मैंने बमुश्किल दस प्रतिशत भी नहीं दिखाया है असल कश्मीर को अपने उपन्यास में। लेकिन जितना भी दिखाया है, वह शत-प्रतिशत सच्ची तस्वीर है। मुख्यधारा की मीडिया को कश्मीर की सच्ची तस्वीर दिखाने से कोई मतलब नहीं है। मुख्यधारा को तो तस्वीर के बस वे रंग दिखाने हैं, जिससे उसकी टीआरपी बढ़े। ब्लैक और व्हाइट के बीच कितना कुछ ग्रे है, वह इस टीआरपी की भूख में छुपा ही रह जाता है। दो स्पष्ट ध्रुवों में बँटी हुई मुख्यधारा वाली मीडिया इतनी फ़ुर्सत नहीं है कि वह उस ग्रे को दिखाने की मशक्कत करे। लेफ़्ट को विस्थापित हिंन्दुओं की पीड़ा नहीं दिखती है तो राइट को कश्मीर के स्थानीय मुस्लिमों की दुश्वारियों से कोई लेना-देना नहीं होता है। लेकिन मेरी यह उपन्यास-शृंखला धीरे-धीरे सारी परतें उधेड़ेगी। 'इन्फ़ॉर्मर' में समर प्रताप सिंह और शाज़िया के अब्बा के बीच चले संवाद में से जो दोनों तरफ़ के ख़ून से सने परदे उठे हैं, वे अभी थोड़े से ही उठे हैं। अभी इस परदे को धीरे-धीरे और उठना है।

आकाश माथुर- समर साब जैसा कोई मिला आपको क्योंकि विधायक के लड़के के साथ कुछ लोगों का होना और उसमें अहंकार होना सामान्य है। पर समर साब वैसे नहीं है। मिला तो वह कौन है और नहीं मिला तो इसे कैसे गढ़ा।

गौतम राजऋषि- समर साब बिल्कुल सच्चे से और मुच्चे से हैं। जैसे भी हैं एकदम वैसे ही हैं। यहाँ देखने वाली बात यह भी है कि वे बस विधायक के ही बेटे नहीं हैं, एक संवेदनशील साहित्यकार माँ के भी बेटे हैं। दूसरी बात ये कि बिहार में आकाश, आपको ऐसे ढेरों परिवार मिल जाएँगे जो राजनीति से जुड़े हैं लेकिन उसकी छाया से दूर हैं। उधर बिहार में दोनों एक्सट्रीम के लोग हैं... ऐसे अहंकारी कि मानों ख़ुद अहंकार ने अपने होने की परिभाषा उनसे लिखवायी हो और ऐसे कोमल ऐसे मृदुल कि रुतबा-पैसा क्या होता है उन्हें मालूम भी न हो। तो समर साब इसी दूसरी किस्म वाले बिहारियों में से हैं। बड़ा ही कॉम्प्लेक्स सा किरदार है उनका। कौन हैं वे, इस बारे में ज़्यादा तो नहीं बता पाऊँगा अभी। धीरे-धीरे उपन्यास-दर-उपन्यास खुलता जाएगा उनका परिचय।

आकाश माथुर- फ़ौज में भर्ती होने की कहानी जो समर साब की है वह कर्नल गौतम राजऋषि की कहानी से कितना वास्ता रखती है। या कर्नल साब की कहानी कुछ और है।

गौतम राजऋषि- देखिए कर्नल गौतम राजऋषि तो बारहवीं कक्षा पास करते ही नेशनल डिफेंस एकेडमी की बली-वेदी पर क़ुर्बान हो गए थे। वहीं समर साब ने तो पटना में बाक़ायदा ग्रैजुएशन किया और फिर उसके बाद इंडियन मिलिट्री एकेडमी में दाख़िला ले सके। तो एक बड़ा अंतर तो यहीं है सबसे पहले। समर साब हमारी तरह ख़ुश-नसीब नहीं थे कि नेशनल डिफ़ेंस एकेडमी में तीन साल रगड़ा-पट्टी खाते हुए ग्रैजुएशन करते। समर साब ने तो कमाल की कॉलेज-लाइफ़ जी। लड़कियों के साथ पढ़े, मस्ती किए हैं। बेचारे कर्नल साब ने तो कभी को-एड की झलक तक नहीं देखी है। हाँ, एक सामानता ज़रूर है कि दोनों ने किसी ना किसी को साबित करने के लिए कंपीटिशन निकाला था। वो कहानी फिर सही...

आकाश माथुर- पाठकों के साथ हमें भी उत्सुकता है कि आप अब क्या रच रहे हैं।

गौतम राजऋषि- अभी तो बस समर साब की कहानी ही चल रही। शृंखला का तीसरा उपन्यास लगभग पूरा हो चुका है और इस साल के आख़िर तक प्रकाशित भी हो जाएगा। 'मिशन' नाम है तीसरे हिस्से का। उसके बाद सैनिकों की ज़िंदगी की छोटी-छोटी गुदगुदाती कहानियों के संकलन पर काम करना है। बहुत सारी कहानियाँ इकठ्ठी हो गई हैं। एकदम अलग सी हँसती ठिठोली करती एकदम छोटी-छोटी कहानियाँ, जो सैन्य-जीवन की एक दूसरी तस्वीर उकेरती हैं। फिर एक और किताब आएगी आने वाले दो-तीन सालों में "फ़ौजी की डायरी" नाम से। दरअस्ल कथादेश पत्रिका में, लगभग तीन साल तक हर महीने मेरा एक कॉलम आता रहा था इसी नाम से। उस कॉलम को पढ़ने और चाहने वाले बहुत से पाठक मिले। बहुत लोगों का मेल और मैसेज आया हुआ है कि वह पूरा कॉलम किताब की शक्ल में आना चाहिए। तो यह है अगले तीन-चार साल की लिक्खम-लिखाई।

000

उल्टे पाँव स्मृतियों की यात्रा

गोविन्द सेन

गोविंद सेन
193 राधारमण कॉलोनी,
मनावर- 454446, धार, म.प्र.
मोबाइल- 9893010439
ईमेल- govindsen2011@gmail.com

बचपन में जाने के लिए मुझे अपने जीवन की उल्टी यात्रा करनी होगी। पकी उम्र से बचपन की कच्ची उम्र की ओर। उन गाँवों की ओर जहाँ मेरे बचपन के छूटे हुए दिन रखे हैं। वैसे तो समय की धूल यादों को धुँधला देती हैं। लेकिन ज़रा-सी फूँक मारने पर वे फिर चमकने लगती हैं। मेरे गाँव का नाम गुलाटी है। नाम आपको अजीब लगेगा जैसे किसी का सरनेम हो। लेकिन नाम यही है। गाँव छोटा-सा था। यानी एक गुलाटी मारो तो इस पार से उस पार हो जाओ। यह मध्यप्रदेश के धार जिले की मनावर तहसील का एक गाँव है। यहीं मेरा बचपन बीता। वैसे मेरा जन्म मामा जी के गाँव राजपुरा में हुआ था। मेरी नाल वहीं गड़ी है। यह गाँव भी धार जिले में ही है। मेरा बचपन गुलाटी, बालीपुर और राजपुरा के बीच डोलता रहा। बालीपुर मेरी मौसी का गाँव है जो गुलाटी के पास ही है। गुलाटी में तब केवल प्राथमिक स्कूल था। पाँचवीं पास करने के बाद छठी से आठवीं तक के लिए पास के गाँव बालीपुर जाना होता था। गुलाटी में प्राथमिक स्कूल हमारे घर के एकदम सामने था। हमारे घर की दीवारें गारे की थीं। दीवारें और फर्श गोबर से लिपे जाते थे। घर के आँगन में एक कनेर लगा हुआ था जिस पर गुलाबी रंग के सुवासित फूल महका करते थे। स्कूल और घर के बीच एक छोटा सा मैदान था। मेरे घर का किवाड़ पूर्व में स्कूल की ओर ही खुलता था। स्कूल में वर्मा जी शिक्षक हुआ करते थे। वे मंदसौर से आए थे इसलिए गाँव वाले उन्हें मंदसौर वाले मास्साब कहा करते थे। स्कूल के तीन भाग थे। छत दो ढाल वाली नलीदार पतरों की थी। उत्तर में बरामदा था। इसी में मुख्य दरवाज़ा था, जो बीच के बड़े हाल में खुलता था। इसी हाल में पहली से पाँचवी तक कक्षाएँ लगा करती थीं। छात्रों को टाटपट्टी पर बिठाया जाता था। पीछे एक कमरा था। वर्मा सर उसी कमरे में सपरिवार रहते थे।

स्कूल की छुट्टी होती और स्कूल खाली हो जाता। वर्मा सर के तीन बच्चे थे। वर्मा सर मुझे किसी फ़िल्मी हीरो की तरह गोरे-चिट्टे लगते थे। वैसे ही उनके बच्चे भी गोरे चिट्टे थे। दो लड़कियाँ थीं जिन्हें मैं दीदी कहता था। बड़ी विम्मी दीदी और छोटी पम्मी दीदी। सबसे छोटा लड़का विजू था जो मुझसे कुछ छोटा था। उनकी तीन पहियों की साइकिल थी। यह मेरे लिए सबसे बड़ा आकर्षण का केंद्र थी। हाल में हमारी धमा-चौकड़ी होती रहती। मुझे तीन पहिए की साइकिल दौड़ाने में असीम आनन्द आता था। लेकिन यह सब अधिक दिन तक नहीं चला। जल्द ही मंदसौर वाले वर्मा सर का तबादला हो गया। वे सब चले गए। हँसी-ख़ुशी-खेल के सुहाने दिन बीत गए। मैं तीसरी कक्षा में आ गया था। तब तक मैं अपना नाम ग़लत लिखा करता था। इसे किसी ने सुधरवाया भी नहीं था। मेरे हिसाब से मेरा नाम वैसा ही बोला जाता था। इसलिए मैं वैसा ही लिखा करता था। मेरा नाम बाबूजी ने सभी भाइयों की तरह भगवान् के नाम पर रखा था-गोविन्द। मक़सद था कि कभी भी यदि मुझे पुकारो तो भगवान् का नाम जुबान पर आ जाए। आँचलिकता के प्रभाव के कारण मेरा नाम सही उच्चरित नहीं होता था। मुझे गोबिन कहकर पुकारा जाता था। 'व' को 'ब' पुकारा जाता और अंत में 'द' ग़ायब होकर आधे न की बजाय न पूरा हो जाता। मैं ख़ुद भी अपना यही नाम सही समझता था। मैं यही नाम लिखता भी था। स्कूल का निरीक्षण करने कलवानी स्कूल से पांडे जी आए थे। कलवानी गुलाटी से पाँच-छह किलोमीटर दूर का एक गाँव है। शायद उस समय छात्रों की गुणवत्ता जाँचने के लिए एक स्कूल के अनुभवी शिक्षक को दूसरे स्कूल में भेजा जाता था। पांडे सर सफ़ेद कमीज़-पजामा पहने हुए थे। कुछ भरे बदन के सज्जन थे। उन्होंने सबसे गिनती पहाड़े पूछने के बाद कहा कि सब अपना-अपना नाम लिखकर अपनी पट्टी औंधी रख दें। मैंने भी अपनी पट्टी पर प्रेम से अपना नाम लिखकर औंधा रख दिया। मुझे पूरा विश्वास था कि मैं अपना नाम सही-सही लिखना जानता हूँ। सर मेरी पट्टी जाँचेंगे तो मेरा नाम सही निकलेगा। लेकिन जब पांडे सर ने मेरी पट्टी देखी तो उसे ग़लत पाया। सबके नाम सही निकल रहे थे और मेरा ग़लत निकला। सबके सामने मेरी हेठी हुई थी। मैं रुआँसा हो गया था। किसी ने मुझे अब तक ग़लत नाम लिखने पर टोका क्यों नहीं! उन्होंने 'गोबिन' को काटकर लिखा-'गोविन्द'। इस तरह मुझे अपना सही नाम 'गोविन्द' मिला।

मुझे समझ में आ गया था कि बोला कुछ भी जाए लेकिन मेरा असली नाम-'गोविन्द' है। अब

जब भी अपना नाम लिखने का मौक़ा आता है तो वह घटना मुझे सहज ही याद आ जाती है। पांडे सर के प्रति कृतज्ञता से भर जाता हूँ। कहते हैं कि नाम में क्या रखा है ? यह बात पूर्णतया सही नहीं है। यदि आपका नाम किसी महान् पुरुष से जुड़ा हुआ हो तो आपको वह आत्मविश्वास से भर देता है। पहले मैं यह नहीं जानता था कि मेरे नाम का अर्थ क्या है ! गोपाल का अर्थ तो पता था-गायों का पालन करने वाला अर्थात् कृष्ण। बहुत बाद में पता चला था कि गोविन्द का अर्थ गाय की रक्षा करने वाला होता है। और यह भी श्रीकृष्ण का ही एक नाम है। बचपन से ही मैं बहुत संवेदनशील, भावुक, मितभाषी और दब्बू किस्म का बालक रहा हूँ। बाद में पता चला कि मैं मनोविज्ञान की दृष्टि से अन्तर्मुखी श्रेणी में आता हूँ। ऐसा होना कोई अनहोनी बात नहीं। बचपन में यह प्रवृत्ति अत्यधिक रही। प्राय: कल्पना लोक में विचरण करता रहता था। मुझमें हीन भाव भरा रहता था। कई सहपाठी मुझे ज़बरन दबाया करते थे। प्राथमिक स्कूल की ही बात है। भील अवार का एक लड़का मुझे तरह-तरह से परेशान करता रहता था। वह मेरे सिर पर तर्जनी मोड़कर ठोला मारा करता था। पूछने पर अनजान बन जाता। मेरी कई चीज़ें चुरा लिया करता। उसने सभी लड़कों को भी अपनी तरफ़ मिला रखा था। उसके बहकावे में आकर सबने मुझसे कट्टी कर ली थी।

अक्सर बाबूजी बालों में जुओं की पड़ने की वजह से मेरी घोटमोट कर दिया करते थे। मेरी घोटमोट बनी हुई थी। सफाचट खोपड़ी उस शैतान को उकसा रही थी। वह कभी मेरी चोटी खींच लेता। कभी सिर पर ठोला मार देता। वह बार-बार मेरा ध्यान भंग कर रहा था। एक दिन वह ठोला मारने ही वाला था कि मैंने उसे पकड़ लिया। मैं उससे तंग आ चुका था। आख़िर मैं उससे भिड़ गया। जो होगा, देखा जाएगा। लड़ते-लड़ते स्कूल के बाहर मैदान में आ गए। दोनों में हाथापाई होने लगी। कभी मैं उसे नीचे गिरा देता और कभी वह मुझे। लेकिन मैंने हार नहीं मानी। इस मल्ल युद्ध को देखकर बच्चों को मज़ा आ रहा था। हिन्दी की किताब में नाग पंचमी के अवसर पर दो पहलवानों के लड़ने पर एक कविता थी-'यह नाग पंचमी झम्मक-झम, यह ढोल-धमाका धम्मक-धम / मल्लों की जब टोली निकली, यह चर्चा फैली गली-गली / दंगल हो रहा अखाड़े में, चन्दन चाचा के बाड़े में... ।,' ऐसा लग रहा था कि वह कविता दृश्य हो रही हो। लेकिन मेरी जान पर आ पड़ी थी। मुझे अब तो याद नहीं कि वह लड़ाई कैसे ख़त्म हुई। हाँ, इतना ज़रूर याद है कि लड़ाई में मेरा घुटना और हथेली छिल गई थी। ख़ून निकल आया था। दब्बू समझे जाने वाले मुझ जैसे लड़के का यह पहला साहसिक क़दम था।

अर्धवार्षिक परीक्षा थी जिसे हम छहमाही परीक्षा कहते थे। सोनी जी हमें पढ़ाते थे। वे मनावर से साइकिल से आते थे। सफ़ेद-झक कमीज़-पाजामा पहनते थे। मुझे उनकी मार से बहुत डर लगता था। उस समय शिक्षक बच्चों को मारते रहते थे। सोनी जी भी इसमें पीछे नहीं थे। कभी कान उमेठते थे तो कभी हथेली पर स्केल मारते। मैं उनसे बहुत डरता था। उनके सामने होने से याद किया हुआ भी भूल जाता। शायद चौथी कक्षा में था। कोई विदुषी महिला निरीक्षक हमारे स्कूल में आईं थीं। बाल सभा आयोजित की गई थी। छात्रों को कविता-कहानी-भाषण सुनाना था। मैंने भी अपना नाम लिखा दिया। हालाँकि किसी के भी सामने कुछ सुनाने या कहने में मेरी घिग्घी बँध जाती थी। सहसा ज़बान तालू से चिपक जाती। दिमाग़ का फ्यूज़ उड़ जाता। लेकिन उस दिन मैंने हिम्मत की। कई बार मन को कड़ा किया। मैंने सुनाना शुरू किया-'हे प्रभु आनंददाता ज्ञान हमको दीजिए / शीघ्र सारे दुर्गुणों को दूर हमसे कीजिए।' से 'ब्रह्मचारी धर्मरक्षक वीरव्रतधारी बनें' तक सुना गया। तालियाँ भी बज गईं। हालाँकि इन बड़े-बड़े शब्दों का ठीक से अर्थ तक तब मुझे मालूम नहीं था। सबके सामने कविता सुना पाना मेरे लिए बड़ी उपलब्धि थी। वहाँ सभी शिक्षक और लड़के जमा थे। मुझे इनाम में लकड़ी का एक स्केल मिला था। इससे मुझमें आत्मविश्वास का संचार हुआ। हमें रोज़ एक पेज नक़ल घर से लिखकर लाना होता था। हिन्दी में से किसी पाठ को हम लिखकर लाते थे। सोनी जी रोज़ नक़ल जाँचते थे। नक़ल देखकर उस पर 'सुन्दर' 'अच्छा' 'बहुत अच्छा' 'ख़राब' या 'अक्षर सुधारो' जैसे नोट्स मिलते थे। हमारी कक्षा में प्रताप को अक्सर सुन्दर, बहुत सुन्दर जैसे नोट्स मिलते थे। मैं उससे बहुत प्रभावित था। मुझे लगा मैं ऐसा सुन्दर लिख सकता हूँ।

मैं सुन्दर अक्षर लिखने में जी-जान से जुट गया। हर अक्षर की बनावट को ध्यान से देखता और उसी तरह लिखने की कोशिश करता। एक दिन सोनी जी ने मेरी कॉपी देखकर कहा कि तुमने प्रताप से नकल लिखवाई है। मैंने दृढ़ता से इनकार किया। तब उन्होंने अपने सामने मुझसे लिखवाया। मैंने लिखकर बता दिया। तब उन्हें यक़ीन आया। इस तरह मुझे भी 'सुन्दर', 'बहुत सुन्दर' मिलने लगा। इससे बहुत लाभ हुआ। मेरी लिखावट सुन्दर आने लगी और मात्राएँ भी सही लगने लगी। आत्मविश्वास पैदा होने लगा। हीनभावना तिरोहित होने लगी। हमारा गाँव गुलाटी मनावर तहसील में आता है। मनावर गुलाटी से पाँच किलोमीटर दूर था। मुझे सिनेमा चस्का लग गया था। सिनेमा को तब हम फिल्म या पिक्चर कहते थे, मूवी नहीं। छह से नौ का शो होता था। मैं अक्सर प्रताप और तुकाराम या पूनमदादा के साथ फिल्म देखने जाता था। जब कोई फिल्म देखता तो मन ही मन उसकी कहानी, हीरो-हीरोइन, डायलॉग, ख़ास दृश्य लंबे समय तक दिमाग़ में घूमते रहते। मैं कुछ वैसी ही कहानी दिमाग़ में बनाने लगता। वह कहानी दिमाग़ में ही बनती और दिमाग़ में ही मिट जाती थी।

प्रारंभ से ही मुझे पढ़ने और चित्र बनाने, रंग भरने का ख़ासा शौक़ रहा है। बाद में पेंटिंग का शौक़ तो कम हो गया किन्तु पढ़ने का शौक़ आज भी है। बचपन में क़िस्मत से मुझे पढ़ने की सामग्री मिल जाया करती थी। पड़ोस में पंचायत भवन में ग्राम सेविका रहती थीं जिन्हें हम बेंजी कहते थे। वहाँ मुझे चन्दामामा, नंदन जैसी बाल पत्रिकाएँ पढ़ने को मिल जाया करती थीं। मैं ख़ूब पढ़ता। मैं किताबों के लालच में प्राय: वहीं बना रहता। बेंजी का बेटा श्यामू मेरा मित्र बन गया था। मुझे याद है कि

मेरी ड्राइंग और हस्तलेख अच्छा होने से बेंजी मुझसे वर्णमाला के चित्र और शब्द बनवाती-लिखवाली रहती थीं। यह रंगों और शब्दों की दुनिया मुझे ख़ूब भाती। पिता जी को हम बाबू जी कहा करते थे। उनके पास हमेशा रेडियो रहता था। उन्हें रेडियो पर गाने एवं अन्य कार्यक्रम सुनने का बहुत शौक़ था। मुझे भी रेडियो सुनने में बहुत मज़ा आता था। गाने मुझे किसी दूसरी दुनिया में ले जाया करते। तब "खेती-गृहस्थी कार्यक्रम" चाव से सुनते थे। इस कार्यक्रम को बोलचाल में 'नंदा जी -भेरा जी' कहा जाता था। इसे प्रस्तुत करने वालों में एक नंदा जी थे और दूसरे भेरा जी। एक निमाड़ी बोलते तो दूसरे मालवी। कार्यक्रम में लोकगीत, कृषि उपयोगी बातों के साथ किसी ख़ास दिन किसी कवि की कविताएँ सुनाई जाती थी जो निमाड़ी या मालवी में होती।

विविध भारती पर "बिनाका गीत माला", "हवा महल", "भूले बिसरे गीत" आदि कार्यक्रम आते जो बहुत भाते थे। इसमें फ़िल्मी गीत सुनने को मिलते। बिनाका गीत माला में अमीन सयानी और तबस्सुम की आवाज़ें कानों में रस घोलतीं। गर्मियों और बड़े दिन की छुट्टियाँ अक्सर मामा जी के घर राजपुरा में गुज़रती थीं। राजपुरा एक बड़े गाँव अमझेरा के पास है। बीच में केवल एक तालाब है। गर्मियों में तालाब सूखने जाने से दोनों गाँवों के बीच रास्ता बन जाता। वहाँ जाकर मुझे लगता था जैसे मैं नरक से स्वर्ग में आ गया होऊँ ! वहाँ का तालाब, मेलवाड़ा (राणा बख्तावरसिंह का महल), मोर, हरे पेड़, फ़सलें, तालाब, काले मुँह के बन्दरों के करतब मन को हर लेते थे। खेलने के पूरे अवसर वहाँ मौजूद थे। हम जमकर दूध-दही खाते। नानी जी हमें बहुत लाड़ से रखती थीं। यहाँ का प्राकृतिक सौन्दर्य मन को बहुत लुभाता था। छोटा भाई वहीं रहता था। मौसेरे भाई भी वहाँ आ जाते।

नानी जी से हम रोज़ कहानी सुनते। कहानी को वार्ता कहा जाता था। हम नानी जी से वार्ता सुनाने का आग्रह करते। वे हमें तरह-तरह की मज़ेदार वार्ताएँ सुनाती थीं। कभी कोल्या (सियार) की कहानी तो कभी सोने के बाल वाली राजकुमारी की कहानी तो कभी तीरथ जाने वाली मिनी बाई (बिल्ली) की कहानी तो कभी पूँछ कटे उन्दरे (चूहे) की कहानी। कभी-कभी ये वार्ताएँ कुछ गंभीर, रहस्यमयी और डरावनी किस्म की भी होती थीं। एक ऐसे राजकुमार की कहानी जो दिन में मरा हुआ होता और रात को ज़िंदा हो जाता। राजकुमारी उसके शरीर के काँटें निकालती और वह ज़िंदा हो जाता। किसी वार्ता में गीत की मर्मस्पर्शी पंक्तियाँ आ जातीं- 'छड़-छड़ पड़े कामड़ी पड़े रे प्यारा, नाचणु होय तो नाच जी।' या 'चम्पेली बाई चम्पेली कुण हलावे डाळ, भाई ने मारी बेनड़ी...' हम साँस थामे उन्हें सुनते रहते। एक अलग दुनिया में चले जाते। दिमाग़ में तरह-तरह के बिम्ब बनने लगते। नानी जी रात को घर के सारे काम निपटा कर बिस्तर पर लेटे हुए वार्ता सुनाती थीं। हम भी नानी जी के अगल-बगल में सोते थे। उन्हें घर का काम करना होता था। बहुत थक जातीं। सुनाते-सुनाते उन्हें नींद लग जाती।

मामा जी का व्यवहार हमारे साथ मित्रतापूर्ण था। उनके बारीक गोल अक्षर बहुत सुन्दर लगते थे। उनका कविता लिखना, चित्र बनाना, पतंग बनाना, मिट्टी के खिलौने बनाना ख़ूब आकर्षित करता। जहाँ भी कोई कलात्मकता होती, मुझे प्रभावित करती। पाठ्यपुस्तक की कविता-कहानी पढ़ते हुए, नानी जी से वार्ताएँ, रेडियो पर प्रसारित फ़िल्मी गीत-कविताएँ सुनते हुए, फिल्मों की कहानियों में रमते हुए मुझे लगा कि मैं भी ऐसा कुछ लिख सकता हूँ या कोई कहानी गढ़ सकता हूँ। यह मेरे मन का काम हो सकता है। कविता और कहानी जैसा कुछ लिखना सहज ही शुरू हो गया था। मुझे अपनी पुरानी कापियों में सबसे पुरानी कविता जो मिली, वह मैंने सातवीं कक्षा में लिखी थी। शायद दसवीं-ग्यारहवीं कक्षा में कोई अनगढ़ सी कहानी लिखने की भी याद है। इस कहानी को मैंने अपनी सहपाठी दोस्तों नरेन्द्र, प्रदीप और दयाराम को दिखाया था। 1978 में मैंने हायर सेकण्ड्री की परीक्षा उत्तीर्ण की। तब-तक मैं कुछ लिखने तो लगा था, लेकिन मुझे पता नहीं था कि रचनाएँ किस तरह पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशनार्थ भेजी जाती हैं।

हायर सेकेंडरी के बाद बी.एससी. करने के लिए होल्कर साइन्स कॉलेज में दाखिला लिया। लेकिन घोर अर्थाभाव के कारण मन उचट गया। तब मेरे मित्र प्रदीप ने सुझाया कि मैं आय.टी.आय. कर लूँ तो मैं जल्दी ही किसी काम से लग जाऊँगा। फिर मैं आय.टी.आय. में प्रशिक्षण लेने लगा। रहने के लिए वहाँ हॉस्टल भी मिल गया था। मेरी साहित्यिक अभिरुचि के बारे में कुछ मित्रों को मालूम था। मेरे एक मित्र राजेश जोशी के रिश्तेदार राकेश मंडलोई भी लिखते थे जो खंडवा से थे। संयोग से वे एक बार राजेश जोशी से मिलने आए। मैं उनसे मिला और उन्होंने मुझे "युवक" (आगरा) पत्रिका में रचनाएँ भेजने का सुझाव दिया। मैंने रचना भेज दी। इस तरह मेरी पहली रचना जो ग़ज़ल थी "युवक" पत्रिका के अक्टूबर अंक में 1982 को छपी। छपने पर बहुत ख़ुशी हुई। बाद में तो "युववाणी" आकाशवाणी इन्दौर से भी कविताएँ प्रसारित होने लगीं। मेरा आत्मविश्वास बढ़ता गया। अपने बेरोज़गारी के दिनों में भोगी हुई तकलीफ़ों के आधार पर एक कहानी 'बरकत' मैंने लिखी थी। यह कॉपी के लाइनदार पन्नों पर स्याही के पेन से लिखी थी। इसे मैंने कई दिनों तक सँभाल कर रखा था। उन दिनों दैनिक स्वदेश में प्रति वर्ष पं. रामनारायण शास्त्री कहानी प्रतियोगिता आयोजित की जाती थी। मैंने वही कहानी भेज दी। इस कहानी पर मुझे प्रथम पुरस्कार मिला तो मेरी ख़ुशी का ठिकाना नहीं रहा। यह बात सन् 1992 की है, तब मुझे पुरस्कार स्वरूप एक हज़ार का चेक प्राप्त हुआ था। बचपन छूटा, किशोरावस्था छूटी। मैं जीवन की मुख्यधारा में बहते हुए उत्तरार्ध में आ गया। लिखना मुझे अपने मन का काम लगने लगा। यथासंभव ज़बरन लिखने से बचा। जो मन में आया, वही सहज लिखा। कहानी, कविता, व्यंग्य, यात्रा संस्मरण सब लिखता रहा। किसी एक विधा में बँधा हुआ नहीं रहा। लेखक के लिए उसकी स्मृतियाँ बहुमूल्य होती हैं। लेखन में बचपन, किशोरावस्था और जीवन के हर दौर में मिले अनुभव और प्रेरणाएँ मेरे ख़ूब काम आते रहे।

000

दूर कहीं बहती है, एक नदी विस्मृति की

प्रताप दीक्षित

(जब तुम्हें देखता हूँ / बीते सुख के इंद्रधनुषी रंगों में/ मेरी विस्मृति की नदी के शांत जल में डूबने के लिए – 'रिवर ऑफ फॉर्गेटफुलनेस' – लोरिएंट मॉन्टेनर)

आख़िरी सेमेस्टर ख़त्म होने को था। प्लेसमेंट की उम्मीद जग चुकी थी। घर लौटने की तैयारियाँ चल रही थीं। उसने मन ही मन निश्चय कर लिया-अब बस, सब यहीं ख़त्म। वह एक नई शुरुआत करेगी, मानों अतीत की ये परछाइयाँ कभी उसके जीवन में आई ही न हों। इसी बीच एक दिन मैडम उससे मिलने आईं। उनकी आवाज़ में हमेशा वाली विनम्रता घुली हुई और सौम्यता की परत थी- 'मेघना, एक आख़िरी मदद चाहिए... बस आख़िरी बार।' मेघना ने निगाहें झुका लीं। भीतर कहीं एक कठोर निर्णय आकार ले चुका था-अब और नहीं।

मैडम की आँखों में अजीब-सी लाचारी तैर रही थी। वे धीरे-धीरे बोलीं, "एक लड़का आया है...बाहर का है, शायद पहली दफ़ा। बहुत सहमा हुआ है। बाकी लड़कियाँ या तो छुट्टी पर हैं, या बीमार... तुम समझ रही हो न?"

मेघना चुप रही, जैसे शब्द गले में अटक गए हों। मैडम ने स्वर और भी मुलायम कर लिया, "वह जितना देगा... उतना तुम्हें फिर कभी नहीं मिलेगा। इसे मेरी आख़िरी गुज़ारिश मान लो। उसके बाद तुम चली जाना... अपनी नई ज़िंदगी की ओर।"

उस रात मेघना देर तक खिड़की के पास खड़ी रही। शहर की रोशनियाँ दूर-दूर तक फैली थीं- हर चमक जैसे कोई अनकहा सच छुपाए बैठी हो। उसे अपने गाँव की काली, सँकरी गलियाँ याद आईं, जहाँ लोग एक-दूसरे को नाम से पुकारते थे, हाल पूछते थे। यहाँ हर चेहरा अनजाना था, हर मुस्कान के पीछे कोई सौदा छिपा था। क्या सच में यह आख़िरी बार होगा? क्या वह सब कुछ भुला पाएगी? क्या पिता की आँखों में झाँकते समय दिल में चुभन नहीं उठेगी? फिर उसने ख़ुद से कहा - "बस इस बार और... उसके बाद सब ख़त्म।' उसके भीतर जैसे कुछ टूट गया। उसे लगा, वह किसी ऐसे मोड़ पर खड़ी है, जहाँ से लौटना आसान नहीं। बाहर शहर वैसे ही चमक रहा था, लेकिन उसके भीतर एक अँधेरा फैल गया था-गहरा, अनकहा, और डरावना। उसे पहली बार महसूस हुआ- सपनों की क़ीमत सिर्फ़ पैसों से नहीं चुकाई जाती, और कुछ फ़ैसले ज़िंदगी भर साथ चलते हैं, चाहे हम उन्हें कितना ही भुलाना चाहें।

पूर्व-राग

मेघना ने कभी नहीं सोचा था कि जीवन किसी पुराने दर्पण की तरह अचानक सामने आ खड़ा होगा- जिसमें वह अपना चेहरा नहीं, अपना अतीत देखेगी। मध्यवर्गीय परिवार की लड़की मेघना जब अपने छोटे शहर के धूल भरे स्टेशन से ट्रेन में बैठी थी, उसके पिता की आँखों में गर्व और चिंता का मिला-जुला रंग था। माँ ने बार-बार उसके बैग में रखी ज़रूरत पड़ने और दवाइयों, टिफ़िन और भगवान् की छोटी तस्वीर को टटोल कर देखा था। एजुकेशन लोन का बोझ पिता की झुकी पीठ में साफ़ झलकता था, पर उनकी आवाज़ में भरोसा था- 'मेहनत करना, बेटी... बाकी सब अपने आप ठीक हो जाएगा।' मेघना ने उसी भरोसे को सीने में रखकर महानगर के उस बड़े कॉलेज की दहलीज़ पार की। थी, जहाँ रोशनी इतनी थी कि आँखें चकाचौंध हो जाएँ। ऊँची इमारतें, चमकते कैफ़े, अंग्रेज़ी में बोलते लड़के-लड़कियाँ, और हर चेहरे पर एक अलग आत्मविश्वास-उसे लगा जैसे वह किसी और ही दुनिया में आ गई हो।

प्रताप दीक्षित
एमडीएच 2/33, सेक्टर एच, जानकीपुरम,
लखनऊ 226021, उप्र
मोबाइल- 995639863
ईमेल- dixitpratapnarain@gmail.com

हॉस्टल का कमरा छोटा था, पर सपनों से भरा हुआ। उसकी रूममेट रिया

-फैशन, पार्टियाँ, और कॉन्टैक्ट्स! रिया की दुनिया मेघना से अलग, कहीं बड़ी थी।

शुरू में मेघना पढ़ाई में डूबी रही। केस-स्टडी, प्रेज़ेंटेशन, इंटर्नशिप की दौड़... लेकिन महीने के अंत में बैंक अकाउंट का सूना बैलेंस उसे बार-बार डराता। लोन की किश्तें, किताबों का खर्च, दोस्तों की तरह कभी-कभार बाहर जाने की इच्छा-सब मिलकर उसे भीतर से कचोटते। इसी ख़ालीपन में उसकी दोस्त बनी-रिया। रिया अक्सर कहती, 'ज़िंदगी सिर्फ़ किताबों से नहीं चलती, मेघना। थोड़ा जीना भी सीखो। वह कहा करती, 'ज़िंदगी में थोड़ा भी तो एडवेंचर चाहिए।' रिया ने पहली बार मज़ाक में कहा था, 'कुछ दिनों के लिए एक काम करोगी? बस पार्टी में जाना, लोगों से बात करना...पैसे मिलेंगे।'

मेघना चौंकी थी, 'क्या काम?'

रिया ने हँसकर कहा, 'कुछ ख़ास नहीं... बस कंपनी देना।'

रिया ने कहा-'किसी को पता नहीं चलेगा। बस दो-तीन बार। इतना पैसा मिलेगा कि तुम्हारी फीस भर जाएगी। तुम सुंदर हो, स्मार्ट हो-डर किस बात का?' कुछ दिन बाद रिया उसे एक शाम एक महँगे रेस्तराँ एक महिला से मिलाने ले गई। महिला सभ्रांत, सलीकेदार थी-धीमी आवाज़, नपी-तुली मुस्कान, साड़ी में, परफ्यूम की हल्की ख़ुशबू और बातों में अपनापन। उन्होंने मेघना से पढ़ाई, परिवार, सपनों के बारे में पूछा। फिर बहुत सहज स्वर में कहा, 'कुछ लड़कियाँ पार्ट-टाइम काम कर लेती हैं... सिर्फ़ कुछ घंटों का, सुरक्षित, बिना किसी झंझट के, अच्छी कमाई हो जाती है।' फिर बहुत सहज ढंग से बोली, 'बेटी, कोई ग़लत काम नहीं होता... बस कुछ लोग अकेले होते हैं, उन्हें साथ चाहिए। तुम चाहो तो कभी भी मना कर सकती हो। पहली बार के बाद तुम्हें ख़ुद लगेगा कि डरने की बात नहीं... इस दुनिया में नैतिक अनैतिक कुछ नहीं। ये मान्यताएँ उन लोगों द्वारा गढ़ी गई हैं जो साधन सम्पन्न हैं। ख़ास तौर पर यह सो-कॉल्ड नैतिकताओं के नियम हम स्त्रियों के लिए ही बने हैं।" उसने भरोसा दिलाया-कोई नाम नहीं पूछा जाएगा, अँधेरे कमरे में जाना होगा, सुबह कार वापस छोड़ देगी। पैसा तुरंत मिल जाएगा। मेघना चौंकी, पर रिया ने उसका हाथ दबाया, 'डरने की बात नहीं।' उसने मुस्करा कर कहा, 'सब ठीक रहता है। कोई जान भी नहीं पाएगा।'

उस रात हॉस्टल लौटकर मेघना बहुत देर तक छत देखती रही। उसे याद आया पिता का चेहरा, माँ की थकी मुस्कान, और बैंक का मैसेज। फिर रिया की बात- 'बस एक बार... पैसा अच्छा मिलेगा... किसी को पता नहीं चलेगा।' रिया ने उस शाम कमरे की खिड़की के पर्दे गिरा दिए थे। बाहर शहर की रोशनी थी, भीतर पीली ट्यूबलाइट का थका हुआ उजाला। उसने मेघना को आईने के सामने खड़ा किया और हल्की मुस्कान के साथ बोली, 'देखो अपने को... तुम कितनी स्मार्ट हो, बस ख़ुद को पहचानना सीखो।' रिया की आवाज़ में ऐसा आत्मविश्वास था, जैसे वह दुनिया का कोई गुप्त नियम बता रही हो। उसने अलमारी से अपनी एक सादी, पर महँगी ड्रेस निकाली- न ज़्यादा चमकदार, न ज़्यादा साधारण। बाल सँवारते हुए बोली, 'कोई ज़बरदस्ती नहीं है...बस रात में कुछ घंटे, एक कमरा, और सुबह वापस। सब सुरक्षित। पैसा अच्छा मिलेगा। किसी को मालूम भी नहीं होगा।'

मेघना चुप रही। उसके मन में जैसे कई आवाज़ें एक साथ उठ रही थीं। पिता की तस्वीर सामने आ गई- थके हुए हाथ, क़र्ज़ के काग़ज़, उससे छोटे दो भाई, दो बहनें। उनकी फीस। पिता का भरोसा बेटी पढ़-लिखकर घर की हालत बदलेगी। माँ का चेहरा भी उभरा-जिसमें चिंता और ममता साथ-साथ रहती थीं। दूसरी तरफ़ हॉस्टल की दुनिया, रिया और बाकी लड़कियाँ अपने-अपने क़िस्से सुनातीं-किसी की सगाई, किसी की शादी, किसी की पहली रात की झिझक, हँसी और अनुभवों की फुसफुसाहटें। उन बातों में एक जिज्ञासा भी थी, जो उम्र के साथ अपने आप भीतर जागती है। रात को बत्ती बुझाकर जब सब सो जाते, तब मेघना को उन आधे-अधूरे क़िस्सों की गूँज सुनाई देती- और वह ख़ुद से डर जाती कि उसके मन और देह में कैसी अनजान हलचल उठ रही है। वह समझ नहीं पाती- यह सिर्फ़ पैसों की मजबूरी है या अपने भीतर उठती जिज्ञासा का कोई छिपा आकर्षण भी। मेघना के भीतर फिर वही खींचतान शुरू हो गई। उसे लगा जैसे वह दो किनारों के बीच खड़ी है। एक तरफ़ पिता-माँ का भरोसा, घर की विपन्नता, भाई, बहनों की फीस, माँ की दवाइयाँ दूसरी तरफ़ पढ़ाई, भविष्य के अनिश्चित सपने। सबका प्लेसमेंट होना ज़रूरी नहीं। दूसरी तरफ़ पैसे की ज़रूरत, शहर की चकाचौंध, अपने भीतर अनकही जिज्ञासा, बार-बार उठती एक प्रसुप्त बेचैनी-सब मिलकर उसे कमज़ोर कर गए। रिया ने उसके कंधे पर हाथ रखा, 'तुम अकेली नहीं हो... सब करते हैं। कोई जानता नहीं। बस एक बार... फिर देखना।'

मेघना ने आईने में ख़ुद को देखा- आँखों में डर भी था, जिज्ञासा भी, और एक अजीब सी थकान। उसे लगा जैसे इस शहर में उसके पास अपना कहने को कोई नहीं। अगर वह बीमार पड़ जाए, टूट जाए, तो कौन होगा उसके पास? उसने सोचा- मैं यह अपने लिए नहीं, घर के लिए कर रही हूँ... बस एक बार... फिर सब ख़त्म। भीतर कहीं मन की अनजानी हलचल भी थी, जिसके बारे में सहेलियाँ फुसफुसाकर बातें करती थीं। रिया ने आश्वस्त किया, 'डरना मत...सब ठीक होगा।' वह ख़ुद को समझाती- बस एक बार और... फिर कभी नहीं। उसका दिल धड़कता रहता। डर, शर्म, अजनबीपन। उस पल मेघना को लगा जैसे अचानक कोई दरवाज़ा खुल गया है, जिसके पार की दुनिया वह जानती नहीं। उसके क़दम काँप रहे थे। उसके भीतर का अंतर्द्वंद्व एक गहरी चुप्पी में बदल गया-जिसकी आवाज़ उसे बहुत दिनों तक सुनाई देती रहने वाली थी।

पहली बार वह होटल के कमरे में गई तो दिल बहुत तेज़ धड़क रहा था। अँधेरा था, पर्दे खिंचे हुए थे, और हवा में अजनबीपन की ठंडक। सुबह सचमुच कार उसे हॉस्टल छोड़

गई। सब कुछ किसी सपने जैसा लगा-अधूरा, उलझा, पर उतना डरावना भी नहीं जितना उसने सोचा था। कुछ दिनों बाद उसने किताबें खरीदीं, फीस भरी, अपने लिए कुछ प्रसाधन सामग्री, जो अभी तक केवल विज्ञापनों या दुकानों के शो-केस में देखी थी। माँ के लिए साड़ी भेजी। माँ ने फ़ोन पर कहा, 'तू तो हमारी लक्ष्मी है।' उस वक़्त मेघना के गले में कुछ अटक गया, पर उसने ख़ुद को समझाया- 'बस थोड़े दिन की बात है... पढ़ाई पूरी हो जाए, नौकरी लग जाए, सब ठीक हो जाएगा।'

धीरे-धीरे वह सिलसिला बन गया। हर बार वह अपने भीतर एक दरवाज़ा बंद कर देती- जैसे यह कोई और लड़की है, जिसका नाम मेघना नहीं। दिन में वह क्लास की होनहार छात्रा थी, रात में किसी अनजान कहानी की किरदार। आईने में ख़ुद को देखती तो लगता- आँखों के नीचे हल्की थकान उतर आई है। पर फिर रिज़ल्ट आते, प्रेज़ेंटेशन में तारीफ़ मिलती, और वह अपने अपराध-बोध को तर्कों से ढक देती, 'मैं किसी को नुकसान नहीं पहुँचा रही... बस अपने सपनों के लिए कर रही हूँ।'

आदिम राग

जैसा उसे मैडम ने बताया था वह प्रवासी लड़का मासूम लगा। शायद उसी की उम्र का रहा होगा। लेकिन अपनी उम्र से बहुत कम दिखता। स्त्री-पुरुष संबंधों के बारे में बहुत कुछ जान चुकी थी। उसने बीते हुए इतने वक़्त में कितने चेहरे देखे थे - किसी के चेहरे पर आत्मविश्वास झलकता, कोई हड़बड़ाया हुआ, कोई अजीब तरह से बातूनी, कुछ बिना झिझक के पास आ जाते, जैसे सब कुछ पहले से तय हो। कुछ सीधे देह से कपड़े उतारने लगते। पहल पुरुष ही करते। मेघना उन सबके बीच धीरे-धीरे अपने को सँभालना सीख गई थी। परंतु यह लड़का शर्माता हुआ प्रतीत हुआ। वह धीरे-धीरे अपनी कमीज़ के बटन खोल नहीं, बटन खोलने का उपक्रम कर रहा था- हर बटन जैसे एक हिचकिचाहट। मुश्किल से अपनी कमीज़ उतारी थी। कमरे की बत्तियाँ, रोशनी बंद थी। खिड़कियों पर मोटे पर्दे थे, लेकिन खिड़कियों पर पर्दे के बावजूद बाहर की रोशनी हल्की हल्की आ रही थी। बाहर से आती हल्की रोशनी कमरे में एक धुँधला उजाला भर रही थी। दूर हाईवे से गुज़रते ट्रकों की हेडलाइट कभी-कभी दीवार पर लकीर बनाती हुई फिसल जाती। उस हल्की चमक में लड़के का चेहरा आधा दिखता, आधा छिप जाता।

अचानक कमरे की बंद लाइटें एक क्षण के लिए जल उठीं। शायद बिजली जाने और आने के बीच इलेक्ट्रिक ब्रेकडाउन से, बस एक पल। दोनों ही घबरा गए थे। उसने स्पष्ट देखा लड़के के धवल, गोरे रंग के सीने पर रोमावली के अंदर एक लाल रंग का बड़ा मस्सा या जन्म चिह्न था। दोनों एक साथ घबरा गए। लड़के ने झट से नज़र फेर ली, जैसे पकड़ा गया हो। मेघना ने भी अनायास अपना चेहरा छिपाने के लिए झुका लिया और उसकी छाती से लग गई- एक पल के अचानक उजाले से बचने का मात्र विकल्प। प्रवासी लड़का सचमुच मासूम लगा। दरवाज़ा खुलते ही उसकी आँखों में घबराहट साफ़ दिख रही थी- जैसे कि किसी कठिन परीक्षा के प्रश्नपत्र का इंतज़ार कर रहा हो। उम्र शायद मेघना के आसपास ही रही होगी, पर चेहरा ऐसा जैसे अभी-अभी कॉलेज के पहले साल में दाख़िला लिया हो। मेघना ने भीतर ही भीतर सोचा- 'यह लड़का यहाँ क्यों आया होगा?' यह लड़का अलग था। जैसे वह अपने ही क़दमों से डर रहा हो। मेघना के भीतर कुछ बदलने लगा। वह ख़ुद को याद दिला रही थी कि यह बस आख़िरी मुलाक़ात, जिसके बाद सब ख़त्म। पर उस लड़के की झिझक उसे अपने पहले दिन की याद दिला रही थी- जब वह ख़ुद ऐसे ही काँपती हुई इस दुनिया की दहलीज़ पर आई थी। लड़का कुछ कहना चाहता था, पर शब्द नहीं मिल रहे थे. उसने बस इतना पूछा, 'तुम... ठीक हो न?'

मेघना को अजीब लगा। किसी ने उससे इस तरह कभी नहीं पूछा था। वह मुस्कुरा दी, 'हाँ...तुम?' उसने सिर हिलाया, पर आवाज़ नहीं निकली। कमरे में मौन का सन्नाटा गूँज रहा था। बाहर से आती रोशनी उनके चेहरों को छूकर लौट जाती। मेघना को लगा जैसे वह किसी ऐसे पल में खड़ी है, जहाँ समय रुक गया है, शायद पृथ्वी की गति भी। न कोई जल्दबाज़ी, न दिखावा, सिर्फ़ दो अजनबी, जो अपने-अपने डर के साथ एक कमरे में हैं। उस क्षण उसे अजीब-सा अपनापन महसूस हुआ। जैसे वह कोई ग्राहक नहीं, कोई अनजान लड़का नहीं, बस कोई ऐसा इंसान है जो उतना ही डरा हुआ है, जितनी वह ख़ुद। उसके कानों में, उससे दूर होते हुए भी, लड़के की दिल धड़कन सुनाई दे रही थी-तेज़, अनियमित, बेचैन। मेघना को याद आया- उसके अपना पहली बार का डर, घबराहट, उसे लगा था कि वह टूट जाएगी। उसने सोचा शायद यह लड़का भी अपने किसी डर से भागकर यहाँ आया है- साबित करने की ज़िद, किसी जिज्ञासा, या किसी अकेलेपन में।

उसने धीमे से कहा, 'डर लग रहा है?' लड़का कुछ पल चुप रहा, फिर हल्की आवाज़ में बोला, 'थोड़ा...! पहली बार है। मेरे यहाँ तो यह आम बात है। लोग डेट पर जाते हैं। मेरी कोई दोस्त नहीं, कभी डेट पर नहीं गया। दोस्त चिढ़ाते हैं, शक करते हैं।'

मेघना का दिल काँप गया। उसे लगा, जैसे वह अचानक किसी और कहानी में आ गई है- जहाँ उसे निभाना नहीं, समझना है। उसने अपने भीतर के सारे सीखे हुए अभिनय को एक तरफ़ रखा और बस उसके पास बैठ गई। बाहर से एक और ट्रक गुज़रा, रोशनी दीवार पर फिसली और ग़ायब हो गई।

लड़के ने धीमे से पूछा, 'तुम... यहाँ क्यों आती हो?' सवाल सुनकर मेघना सिहर उठी। उसने कभी किसी को जवाब नहीं दिया था। उसके पास जवाब था भी नहीं-बस...! वह चुप रही। लड़के ने फिर कुछ नहीं पूछा। बस बैठा रहा। कुछ देर बाद उसने अपने बैग से एक छोटा-सा काग़ज़ निकाला- उसमें शायद किसी पते का टुकड़ा था। बोला, 'मैं बाहर पढ़ता हूँ... दोस्त कह रहे थे... आदमी बनना है तो...' वह रुक गया, जैसे शब्द शर्म से पीछे हट गए हों।

मेघना को लगा, यह दुनिया कितनी अजीब है- जहाँ किसी को अपनी मर्दानगी साबित करने के लिए यहाँ आना पड़ता है,

और किसी को अपने घर की हालत सुधारने के लिए। उसने धीरे से उसकी हथेली पकड़ ली। लड़के ने आँखें बंद कर लीं। उस क्षण में कोई जल्दबाज़ी नहीं थी, कोई सौदा नहीं- बस दो लोगों का डर, जो एक-दूसरे के सहारे धीरे-धीरे कम हो रहा था। मेघना के मन में पिता का चेहरा आया, माँ की आवाज़ आई, और अपने गाँव की सुबहें- जहाँ सब कुछ साफ़ और सरल लगता था। उसे लगा, वह बहुत दूर आ गई है, किसी ऐसे मोड़ पर जहाँ से लौटना मुश्किल है। लड़के की छाती पर वह लाल चिह्न उसे बार-बार दिख रहा था- जैसे कोई निशान, जो इस रात को हमेशा के लिए याद रखेगा। उसने सोचा-शायद यह आख़िरी बार सचमुच आख़िरी हो। शायद इस लड़के की मासूमियत उसे रोक लेगी। पर समय रुकता नहीं। बाहर गाड़ियों की आवाज़ें चलती रहीं, कमरे में हल्की रोशनी उतरती रही, दो अजनबी अपनी-अपनी कहानी के एक ऐसे पन्ने पर बैठ गए, जहाँ शब्द कम थे, पर अर्थ बहुत गहरे। उस रात मेघना ने पहली बार जाना कि हर मुलाक़ात एक जैसी नहीं होती। कुछ चेहरे भूल जाते हैं, कुछ दिल में रह जाते हैं- एक लाल चिह्न की तरह, जो अँधेरे में भी चमकता रहता है। उसे लगा, यह लड़का उसकी कहानी में सिर्फ़ एक ग्राहक नहीं, एक आईना बनकर आया है- जिसमें उसे अपनी ही मासूमियत की बची-खुची छाया दिखाई दे रही थी।

लड़के की घबराहट का मज़ा लिया। कुछ हमदर्दी भी पैदा हुई। उसके मन में खेलने की इच्छा हुई। उसे सचमुच हँसी आ गई थी। लड़के की झिझक इतनी साफ़ थी कि वह अपने डर को छुपाने की कोशिश भी ठीक से नहीं कर पा रहा था। उसकी आँखें बार-बार झुक जातीं, हाथ काँपते हुए अदृश्य कमीज़ के बटन टटोलते, जो बदन पर थी ही नहीं, फिर ठहर जाते। उस संकोच में एक तरह की मासूमियत थी, और उसी मासूमियत ने मेघना के भीतर हल्की शरारत जगा दी। वह उसके पास बैठ गई, जैसे किसी छोटे बच्चे को दिलासा दे रही हो। उसने धीरे से कहा, 'डरो मत...कोई जल्दी नहीं है।' लड़का मुस्कराने की कोशिश करता, फिर ख़ुद ही शर्म से गर्दन झुका लेता। मेघना को उसकी हालत पर दया भी आई और एक खेल-सा भी सूझा- धीरे-धीरे उँगलियाँ बढ़ाती, फिर रुक जाती, जैसे उसे छेड़ रही हो। लड़का और घबरा जाता, फिर दोनों को हँसी आ जाती। लड़के को आश्वस्त किया। मेघना को लगा जैसे वह कोई अभिनय नहीं कर रही- बस एक अजनबी को ढाँढस बँधा रही है। उसने उसके कंधे पर हाथ रखा, कहा, 'सब ठीक है... पहली बार सबको डर लगता है।' लड़के की साँसें धीरे-धीरे सामान्य होने लगीं। उसने भी हिम्मत करके कुछ कहा, फिर ख़ुद ही हँस पड़ा। दोनों के बीच की दूरी जैसे कम हो गई। मेघना को आश्चर्य हुआ- इतने समय में, उसने ऐसे क्षण कम ही देखे थे, जहाँ हड़बड़ी न हो, माँग न हो, बस थोड़ी झिझक और थोड़ा अपनापन। कुछ देर बाद सब थम गया-अधूरा-सा, शांत-सा। जैसे दोनों ने किसी दौड़ को पूरा करने के बजाय बीच रास्ते बैठकर साँस ली हो। लड़का थककर चुप हो गया। उसने सिर तकिए पर रखा और आँखें बंद कर लीं। मेघना भी उसके पास लेट गई। जाने कब दोनों गहरी नींद में डूब गए थे। ऐसा कम ही होता। अक्सर सारी रात वह जागती, या जगाए रखा जाता। कोई बात करता रहता, कोई फिर से पास आना चाहता, कोई बेचैन होकर करवटें बदलता। पर आज कमरे में एक सुकून था। बाहर से गाड़ियों की रोशनी दीवार पर सरक जाती, फिर अँधेरा गहरा जाता। लड़के की साँसें अब नियमित थीं। वह गहरी नींद में था। मेघना ने आँखें बंद कीं तो उसे अपना घर याद आया- माँ की धीमी लोरी, पिता की खाँसी, और वह पुरानी चारपाई, जिस पर वह बचपन में बेफ़िक्र सो जाती थी। उसे लगा, जैसे बहुत दिनों बाद उसके भीतर कोई शांति उतर आई है।

सुबह की हल्की रोशनी खिड़की के किनारे उतर रही थी, दोनों चुपचाप सो रहे थे। दोनों बहुत देर तक सोते रहे -दो अजनबी, जो कुछ पलों के लिए अपने-अपने डर भूल गए थे। हमेशा तड़के सुबह 4-5 बजे गाड़ी उसे लेने आ जाती थी। वह तैयार पहले ही से होटल की लॉबी में इंतज़ार करती। जाने कब से जमी तन और मन की थकान रही होगी। स्त्री है न, जो न सिर्फ देह, मन को भी नया आकार देती है। मेघना को लगा, कुछ मुलाक़ातें अधूरी होकर भी पूरी हो जाती हैं-क्योंकि उनमें जल्दबाज़ी नहीं, बस थोड़ी-सी हमदर्दी और थोड़ी-सी थकान होती है।

उत्तर-राग

एक दिन माँ ने फ़ोन किया- 'एक रिश्ता आया है। आरव नाम है। लड़का विदेश में सेटिल्ड है। बहुत अच्छा परिवार है। तुम्हें बुआ की लड़की की शादी में बने वीडियो में देखा है। मेघना चुप रही। लड़के की फ़ोटो भेजी गई। साफ आँखें, हल्की मुस्कान। कुछ अजीब-सा लगा- जैसे कहीं देखा हो...पर उसने ध्यान नहीं दिया। फ़ोन पर बात हुई। लड़का विनम्र था, पढ़ा-लिखा, समझदार। उसने कहा-'मुझे आप पसंद हैं।'

शादी तय हो गई। शादी सादगी से हुई। रिश्तेदार, हँसी, शोर, ढोलक, गीत। सब कुछ सपने जैसा। मेघना ने सोचा- शायद ज़िंदगी सचमुच नई शुरुआत देती है। उसने अपने अतीत को फिर दफ़ना दिया।

मधु रात्रि- कमरे में हल्की रोशनी थी। फूलों की ख़ुशबू, पर्दों की छाया। मेघना घबराई हुई बैठी थी। आरव धीरे से पास आया। उसने मुस्कराकर कहा- 'डरो मत।' मेघना ने उसकी आँखों में देखा। और अचानक... जैसे बिजली गिरी हो। वही चेहरा, वही शांत

आँखें। वही आवाज़। वह वही युवक था। उस रात... वह होटल...! मेघना का दिल जम गया। उसके हाथ ठंडे हो गए। साँस अटक गई। क्या उसने पहचान लिया होगा? क्या वह अब उसे अपमानित करेगा? छोड़ देगा? क्या वह सब कुछ ख़त्म हो जाएगा?

मौन-राग- आरव ने उसकी घबराहट देखी। 'क्या हुआ?' उसने पूछा। मेघना ने सिर झुका लिया। उसके मन में तूफ़ान था - क्या इसे सच या बताऊँ, नहीं? क्या वह पहले से जानता है? आख़िर उसने हिम्मत की, 'आरव... अगर मैं... अगर मैंने... अतीत में कोई ग़लती की हो...?' उसकी आवाज़ काँप रही थी।

आरव कुछ देर चुप रहा, फिर धीरे से बोला- 'मेघना... मैं भी तुम्हें कुछ बताना चाहता हूँ।' उसने खिड़की की ओर देखा, 'कई साल पहले... मैं यहाँ काम के सिलसिले में आया था। अकेला था... उलझा हुआ... और... मैंने एक रात... एक लड़की से मुलाकात की थी।' मेघना का दिल धड़कना भूल गया। आरव ने कहा- 'वह लड़की बहुत चुप थी। उसकी आँखों में डर था... और दुख भी। मैंने उससे कोई सवाल नहीं किया। बस बातें कीं। मुझे लगा वह मजबूर है। उस रात कमरे में अँधेरा था। यदि उसे फिर कहीं देखूँ तो पहचान नहीं सकूँगा।" वह रुका, कमरे में सन्नाटा भर गया। आरव ने धीरे से उसका हाथ पकड़ा, 'मेघना... क्या तुमने ग्रीक मिथकों में एक नदी लेथे के बारे में सुना है?'

मेघना ने सिर हिलाया।

'कहते हैं,' आरव बोला, 'एक विस्मृति की नदी है। नदी निद्रा के देवता हिप्नोस की गुफा से होकर बहती है। इसमें स्नान करने के बाद मनुष्य अपना अतीत भूल जाता है। पुनर्जन्म होता है, नए जीवन के लिए। मान्यता थी कि इस नदी का जल पीने या उसमें स्नान करने के बाद पिछले जीवन की सारी सारी स्मृतियाँ भूल जाती हैं। दुख, प्रेम, पीड़ा, पछतावा-सब मिट जाते हैं।' उसने उसकी आँखों में देखा, 'जीवन में भूमिकाएँ पहले से नहीं तय की जा सकती हैं न। इंसान से ग़लतियाँ होती हैं। लेकिन क्या हर ग़लती के बाद जीवन ख़त्म हो जाना चाहिए? यह विस्मृत की नदी, लेथे, हर एक के अंदर बहती है। बस हम उसे जान नहीं पाते। लेकिन जीने के लिए ज़रूरी होता है अतीत को भूल जाना।'

उसने कहा- 'आज हम लेथे की नदी में उतर सकते हैं...अपने दिल में...और नया जीवन शुरू कर सकते हैं?' मेघना के भीतर जैसे कोई गाँठ खुल गई। वर्षों से जो डर था, वह आँसुओं में बह गया। वह निर्निमेष आरव की आँखों में देखती रही। आरव ने उसे बाँहों में भर लिया। होंठों से उसके माथे को बहुत आहिस्ते धीरे से छुआ। मेघना को यह अनछुआ स्पर्श पहली बार महसूस हुआ था।

000

लघुकथा

कमांड

किसलय पंचोली

इस साल किसना ने अपने ऑटो को कंपनी से अटैच कर लिया है। अब नींद के पाँच छः घंटों को छोड़कर उसका मोबाइल कभी भी बज उठता है। अभी सुबह जब वह कंबल में दुबका पड़ा था कि मोबाइल बज पड़ा। कैसे अनसुना करता? हड़बड़ा के उठ बैठा। कॉल रिसीव किया। सवारी दो किलोमीटर दूर थी। और डेस्टिनेशन था 40 किलोमीटर दूर एअरपोर्ट। वह समझ गया ज़रूर फ्लाइट पकड़नी होगी। चाय भी नहीं पी पाएगा। उसने फटाफट मुँह हाथ धोए। दातुन किया। हुड वाली जर्सी पहनी और स्टार्ट किक लगा दी।

अब वह सवारी को एअरपोर्ट ड्रॉप कर वापस लौट रहा है। फ्रंट ग्लास से झाँकते गेंदे के सूखे फूलों को देख उसे याद आया जल्दबाज़ी में वह रोज़ की तरह ऑटो की पूजाकर सुराही के पास रखा हार नहीं चढ़ा पाया। ख़ैर। कल रात काफी ठंडी थी। और सुबह डेढ़ घंटे में ही मौसम कितना बदल गया। अब गर्मी होने लगी है। उसने जर्सी का हुड पीछे गिरा चेन थोड़ी खोल ली। किसना सोचने लगा क्या ख़ाली मौसम बदला है? डेढ़ दशक में लोग भी बदल गए हैं। पहले वाली बात बिल्कुल नहीं रही। अब ज़्यादातर पढ़ने वाले स्टूडेंट और काम काजी सवारियाँ ऑटो बुक करती हैं और नंबर मिलानकर बैठते से ही इलेक्ट्रॉनिक गेजेट्स में व्यस्त हो जाती हैं। पहले दस तरह की सवारियाँ मिलती थीं। बूढ़े, जवान, आदमी, औरतें। ख़ूब बातूनी या घोर चुप्पे। ईमानदार या बेईमान। दिलदार या चिकचिकिए। बातें होती थीं। चरित्र उद्घाटित होते थे। सलाहें, नुस्ख़े लिए दिए जाते थे। पहचान निकल आती थी। आत्मीयता विकसित हो जाती थी। ऑटो चलाने में 'जीवन का रस' मिलता था। अब सवारियाँ ज़रा बात नहीं करतीं। बस वे और मोबाइल, कौन ऑटो ड्राइवर, कैसी बात?

पर किसना करे भी क्या? ऑटो ही उसकी रोज़ी- रोटी है। दिल्ली यूनिवर्सिटी से राजनीति शास्त्र में स्नातकोत्तर किसना की रोज़ी-रोटी। रोटी से पेट भरता है। जीवन रस से थोड़े ही। वह और सोचने लगा। 'कितनी विचित्र बात है। इंसान मशीन ईजाद करता है। जैसे यह मोबाइल। फिर वही मशीन इंसान को ही मशीन बना देती है। जैसे इस मुए मोबाइल ने बना दिया है। क्या इंसान कभी कोई ऐसी मशीन बना पाएगा जो एक कमांड पर इंसान को इंसान बने रहने में मदद करे? शायद कभी नहीं।'

तभी उसे जग्गू चाय का ठिया दिखा। उसने ऑटो रोक दिया। और कॉल रिसीविंग ऑफ कर ख़ुद ही मुस्करा दिया। ईश्वर की दी 'मन मशीन' के अपने कमांड पर! उसे अब इत्मीनान से ख़ुद से बात करते हुए चाय की चुस्कियों में जीवन रस का स्वाद आने लगा।

000

किसलय पंचोली

301, सी 2, गार्डेनिआ मिलन हाइट्स, बिचौली मर्दाना, अग्रवाल पब्लिक स्कूल के पास, इंदौर, मप्र 452016

मोबाइल- 9926560144

इमेल- kislayapancholi@gmail.com

तमाशा

सैली बलजीत

सैली बलजीत
1288, लेन-4, राम शरणम् कॉलोनी, पठानकोट - 145001, पंजाब
मोबाइल- 6280683663
ईमेल- sailibaljit@gmail.com

वह उदास होकर लौटा था। इतनी चिलचिलाती धूप में लोग तमाशा देखने भला कहाँ आते हैं। उसका भी तो धूप की चिलचिलाहट ने बुरा हाल कर दिया था। सवेरे ही वह अपनी झुग्गी से निकलता है तो उसकी साइकिल पर इक्का-दुक्का तमाशे के समान के अतिरिक्त तमाशे का प्रमुख ज़रिया उसका बंदर और बंदरिया भी साथ में होते हैं। जिन्हें वह साइकिल के आगे वाली रॉड और कैरियर पर बैठाना नहीं भूलता। रास्ते में जो भी राहगीर मिलता है। एक बार तो विस्मित हो जाता है। बंदर का जिस्म टी-शर्ट और निक्कर से निखर आया था और बंदरिया को घघरा-चोली पहनाना वह नहीं भूलता। ये सब चोंचले वह न करे तो इस फटीचर तमाशे को देखने कौन आए। उसकी साइकिल के ब्रेक एकाएक चरमराते हैं, तो तेज़ रफ्तार से दौड़ती साइकिल के झटके से बंदर और बंदरिया गिरते-गिरते बचते हैं, लेकिन अब वे इतने संयमित हो गए हैं कि वे साइकिल के रॉड को कसकर पकड़ना नहीं भूलते। ट्रक यूनियन उसके तमाशे के लिए उपयुक्त स्थान होता है। दिन-भर ट्रकों की खटर-पटर से थके-हारे ट्रक ड्राइवर चारपाइयों पर पसरे रहते हैं। पुराने-से वट वृक्ष की शीत छाँव का मोह वे लोग संवरन नहीं करते...

एकाएक... जाने कितनी चारपाइयाँ उस घनी छाँव का हिस्सा होने लगती हैं। पास वाले चाय का खोखा उन ट्रक ड्राइवरों के लिए राम बाण औषधि हो जाता है... हर घंटे-आधे घंटे के बाद चाय की गिलासियाँ लिए चाय वाला छोकरा उन्हें राहत देने वाली शय हो जाता है। ट्रक-यूनियन के आसपास दिन भर आवारा गर्दी करने वाले शहर के बिगड़ैल किस्म के लड़के, ज़मीन पर बोरियों का सिला हुआ ख़ूब लंबा-चौड़ा टाटनुमा बिछौना बिछाकर, ताश के पत्तों में रमे रहते हैं। ताश खेलते हुए बीड़ियों के सुट्टों से उठता धुआँ इधर-उधर फैलता रहता है और वे बिगड़ैल किस्म के लड़के दिन भर वहीं पसरे रहते हैं। इस सुनसान जगह पर अब ट्रक यूनियन की बिल्डिंग्स बन जाने से ख़ूब रौनक हो गई है... शहर के कई लोगों ने अपने बड़े-बड़े शोरूम भी खोल लिए हैं इधर।

वह एकटक आसमान की ओर ताकता है। सूरज का गोला ठीक सिर पर आ गया है। पसीने से तर-ब-तर वह अपने गमछे से चेहरे पर चू आए पसीने को पोंछता है तो उसे राहत महसूस होने लगती है। साइकिल के ब्रेक चरमराने से साइकिल रुक गई थी। उसने इधर-उधर ताका था, उसे तमाशे के लिए कोई उपयुक्त जगह तलाशनी होती है। फिलहाल उसने जीवन बीमा की इमारत के पिछवाड़े वाली खुली जगह पर तमाशा ज़माने को तरजीह दी थी। इस जगह पर घने सायेदार पेड़ तो हैं ही...आसपास झुग्गियों वाले छोकरे भी तो वहाँ मिल जाते हैं... फिर ट्रक-ड्राइवरों के अतिरिक्त चाय के खोखे वाले छोकरे... ट्रकों के क्लीनर... राह में चलते इक्का-दुक्का लोग...

उसके तमाशे के लिए यही लोग तो अहम होते हैं... एक ट्रक ड्राइवर चारपाई पर ऊँघता हुआ चिहुँका था, 'फिर आ गया तू...? इतनी गरमी में तमाशा करेगा...?'

'चार पैसे कमाने आता हूँ... आप सब्बी न हों तो... बोलो मैं इधर तमाशा करने आऊँ भला...?' वह फर्राटे से बोला था।

'भाई... इतनी गर्मी में इन बेज़ुबान जानवरों पर तो तरस खाया कर... देखा नई... क्या हाल हो गया है इनका...?'

'ठीक ठाक तो हैं... सुबह ख़ूब खिलाकर लाता हूँ इन्हें...।'

'पानी किसने पिलाना होता है इन्हें...? जा उठ... पहले इन्हें पानी तो पिला... देखा नई... गर्मी से बेहाल हो रहे हैं मेरे बंदर-बंदरिया...।'

'सच कहा तूने सरदारा... भूल हो गई...।'

'अब खड़ा-खड़ा क्या देखता है... उठ अब हो जा शुरू...।' वह डुगडुगी बजाने लगा था।

आसपास की झोंपडियों वाले नंग-धडंग बच्चों के अतिरिक्त शहर के बिगड़ैल किस्म के लड़के भी घनी छाँव तले होने वाले तमाशे का हिस्सा होने लगे थे। वह अपनी पिटारी से तमाशे वाला सामान निकालने लगा था। छोटी-सी टायरों वाली गाड़ी उसने साइकिल के कैरियर से उतार ली थी। अब उसका तमाशा शुरू होने में कोई दिक़्क़त नहीं रहती थी। उसने भीड़ के दायरे को मन ही मन देखा था। वह उदास हो गया था। इतने लोगों की भीड़ से तमाशा कैसे करे वह। वह सोचने लगा था। लेकिन... तमाशा तो करेगा ही वह। घर से वह क्या झख मारने आया है? उसने तमाम कोशिशें कर ली थीं। लेकिन... भीड़ उसी अनुपात में खड़ी थी। वह अब तमाशे के धंधे की बारीकियों पर उतर आया था। लोगों की भीड़ को रिझा पाने में उसने तमाम कोशिशें दाँव पर दी थीं। मसलन... बंदर को लोहे के गोलाकार बड़े से रिंग में से कुदवाना.. बंदरिया के औरतों की तरह नखरे... बंदरिया की रूठ कर मायके चले जाने की धमकी... मसलन... बंदर का किसी बिगड़ैल छोकरे की तरह सिगरेट पीकर... छल्लों को हवा में उछालना... मसलन... बंदर-बंदरिया की आँखों पर रौबदार काले चश्मे चढ़ाना... मसलन... बंदर का बंदरिया को मनाने के अनेक लालच देना... मसलन.. बंदरिया का लाख जतनों से मान जाना... और... टायरों वाली छोटी-सी छकड़ानुमा गाड़ी को पूरे ताक़त से ठेलना... और...भीड़ के दायरे के बराबर चक्कर लगाना... लेकिन... धंधा जमा नहीं था... तमाशा ख़त्म होने से पहले ही भीड़ छितराने लगी थी... कुछेक लोगों के फेंके हुए सिक्कों और रुपयों को उसने ज़मीन पर बिछी चादर से बीन लिया था। वह उदास हो गया था।

धंधा जमा नहीं था, वरना उसे अब तक तो अभी आगे वाले चौक तक जाना था। उसने अपने फ़ैसले का स्वयं वध कर दिया था। उसने ज़मीन से इक्का-दुक्का सामान समेट लिया था। साइकिल की रॉड पर बंदर उछल कर आ बैठा था। उसने उसे दुलारा था। बंदर भी थक गया था। बंदरिया भी साइकिल के कैरियर पर जा बैठी थी, उसने साइकिल की गद्दी को कसकर पकड़ लिया था। उसकी आँखों पर अब भी काला धूप का चश्मा चढ़ा हुआ था, लोग उचक-उचक कर उसे देख ठिठोली करने लगे थे। उसने साइकिल को पूरी ताक़त से ठेल दिया था। दोपहर तक वह अपनी झुग्गी में पहुँचा तो थकावट से चकनाचूर हो गया था। उसने साइकिल को आम के पेड़ के साथ खड़ा कर दिया था, तब तक बंदर और बंदरिया भी छलाँग लगाके नीचे उतर आए थे। उसने उन दोनों को साथ वाले इमली के पेड़ के साथ बाँध दिया था। उन दोनों को उसने पुचकारा था और झुग्गी के भीतर से उनके लिए चपातियाँ ले आया था। वे दोनों चटखारे लेकर खाने लगे थे।

उसकी बीवी ने पूछा था, 'आज इतनी जल्दी लौट आए...?'

'क्या करता... धूप में मर जाता...? स्साले लोग निकलते ई नई घरों में... तमाशा क्या देखेंगे?' वह बौखलाया था।

'हुआ क्या आख़िर...?' उसकी बीवी ने पूछा था।

'लगता है... अब धंधा चैपट होने वाला है... दिन भर कहाँ-कहाँ झख मारनी पड़ती है... तब कहीं जाकर चार पैसों की शकल देखनी नसीब होती है...।'

'गर्मी में जाते ही क्यों हो...?'

'तो क्या करूँ... कुछ कमाई होगी तो ई चार पैसे आएँगे न...?'

'आज कुछ कमाई हुई...?'

'यह लो... यह हुई है कमाई...' उसने पाँच-पाँच के कुछ मुचड़े से नोट जेब से निकालते हुए कहा था।

'चलो छोड़ो... इस तरह उदास थोड़े होते हैं...?'

'तो क्या करूँ...?'

'रोटी खानी है न...?'

'क्यों... भूखे मरना है...? भाड़ में जाए धंधा...।'

उसकी बीवी ने एक थाली में कुछ रोटियाँ और सब्ज़ी रख दी थी। वह रोटी पर टूट पड़ा था। उसे नींद आने लगी थी। वह इमली के पेड़ के नीचे चकत्तों में फैली छाँव में चारपाई पर पसर गया था। लेकिन... सड़क पर आते-जाते ट्रैफिक का कानफाड़ शोर दोपहर को भला कहाँ सोने देता है। वह करवटें बदलने लगा था। उसे कई घंटों के बाद नींद आई थी। एकाएक उसका मँझला बेटा भागा-भागा आया था। उसे हिलाकर उठाने लगा था। वह हड़बड़ी में उठ बैठा था।

'क्या हुआ... बे... सोने दे ना...?'

'बापू... उठ तो... वो देख...।'

'क्या हुआ... क्यों चिल्ला रहा है...?'

'उठ... देख तो... वह लड़का... रामू के पास खड़ा है... जाने क्या खिलाने की कोशिश कर रिया है... देख बापू... वो रहा...।'

'क्या...?' वह भौंचक्का-सा रह गया था।

'सच्ची कै रिया हूँ बापू... देख तो...वो रहा...'

उसने देखा था, वह लड़का अपने 'रामू' के पास खड़ा उसे कुछ खिलाने की फिराक में था 'रामू' उसके बंदर का नाम है जो रस्सी से बंधा उछल-कूद रहा था। वह चारपाई से उठ बैठा था।

'क्या हो रिया था...? क्या खिला रिया था इसे... रुक तो तेरी भैण की... सच बता क्या चक्कर है?'

'कुछ भी तो नईं... ।'

'सच बता... तेरे साथ दूसरा जना कौन है... ?'

'मेरा साथी है जी... ।'

'क्या करने आए थे यहाँ ...?'

'कुछ मिला तो नईं दिया रोटी में... ?'

'क्या बात करते हो जी... बस ऐसे ई... पुन्न का काम है जी... ।'

'चल भाग स्साले... बड़ा आया 'पुन्न' वाला... अपने 'रामू' को कुछ हो गया तो...?'

'क्या होगा... जी... रोटी ई तो खिला रिया था... ।'

'अब फिर इधर नईं आना... अगर फिर देख लिया ना इधर तो देखना... तेरा क्या हाल करता हूँ... ।'

'आप तो ख़फ़ा हो गए जी... ।'

भीतर झुग्गी से उसकी बीवी चिल्लाई थी, 'क्या हुआ...? क्यों चिल्ला रए हो...?'

'होना क्या है... इन शहरी लड़कों का क्या करूँ...दोपहर को तंग करने आ जाते हैं... अपने 'रामू' को... ।' वह बोला था।

'क्या करते हैं...?'

'स्साले जाने क्या खिला रए थे 'रामू' को... भाग गए... ।'

'खिलाने देना था...'

'पगली... क्या पता रोटी में कुछ मिला ही न दिया हो... पता है आजकल कुछ भी हो सकता है... ।'

'उन्हें पूछना था ना...?' उसकी बीवी झुग्गी से बाहर आ गई थी। उसने देखा था, वे शहरी लड़के भाग गए थे... उन्हें ढूँढ़ना अब फिजूल था। उसने सोचा था... कहीं ये लड़के किसी और काम के लिए तो नहीं आते... झुग्गी में उसकी बीवी है... जवान लड़कियाँ हैं... कुछ भी हो सकता है.. वह क्या जाने 'रामू' को कुछ खिलाने की आड़ में वे रोज़ यहाँ आएँ... आज ज़माना बहुत ख़तरनाक हो गया है... कुछ भी कर सकते हैं वे लड़के... 'रामू' को खिलाने के बहाने झूठी सहानुभूति लेने की फिराक़ में तो नहीं आते वे लड़के... वह झुग्गी के भीतर आ गया था।

दूसरे दिन पास वाले चाय के खोखे में वह बैठा था। कभी-कभार कड़क चाय की जब तलब होती है तो यहीं आ जाता है। तरह-तरह के लोगों से गपशप भी हो जाती है और टाइम भी निकल जाता है। झुग्गी में गर्मी से और भी बुरा हाल हो जाता है। यहाँ चाय के खोखे में चाय पीते हुए। पंखे की हवा भी मिल जाती है। वह अक्सर यहाँ घंटों बैठा रहता है। चाय के खोखे वाला मिंदी उसे पूछने लगा था-'कल क्या हुआ था... मद्दी शाह... बड़ा रौला-रप्पा हो रहा था झुग्गियों में...?'

'पता नईं शहर के लोगों को क्या हो गया है जी... दोपहर को तंग करने आ जाते हैं... ।'

'पहले भी कब्बी देखा है उन्हें...?'

'क्या पता... कल अपने छिंदे ने देखा तो पता चला... ।'

'पूछना था... क्या करने आए थे...?'

'स्साले पुन्न करने आए थे... अपने बंदर को जाने क्या खिला रए थे...?'

'उनका हुलिया याद है तुम्हें...?'

'क्या याद रखना था... सब्बी शहरी छोकरे एक जैसे ई तो दिखते हैं... जनानियों की तरह लंबे बाल... कानों में मुर्कियाँ... और... कपड़े भी जनानियों जैसे... क्या पता कौन थे... ।'

'मेरे खोख़े में भी ऐसे छोकरे आते हैं... चाय पीने... देर तक सिगरेटें फूँकते हुए बैठे रैते हैं... तुम फिकर नईं करना... मद्दी शाह... मैं पता लगा लूँगा... ।'

'ख़याल रखना... ।'

'अब्बी कल ई दो छोकरे आए थे, ऐसा ई हुलिया था उनका... देर तक बैठे रए थे... चाय के बाद... दारू पीने लगे थे... मेरा वास्ता इन्हीं छोकरों से ई तो पड़ता है... ।'

'याद रएगा न मिंदी शाह...?'

'तुम भी ध्यान रखा करो मद्दी शाह... तुम्हारी झुग्गी में जवान लड़कियाँ हैं तुम्हारी... तुम्हारी बीवी है... और... भी दूसरी झुग्गी वाले हैं... उनकी भी जवान लड़कियाँ हैं... ज़माना ख़राब है... जाने क्यों आते हैं वे छोकरे...?'

'मुझे भी शक हो रिया है... 'रामू' को कुछ खिलाने का बहाना ई करते होंगे... चल... अबकी आए तो ध्यान रखूँगा...' वह अनमना-सा हो गया था।

उसने गंभीरता से सोचा था कि उसने तो कब्बी सोचा ही नहीं था कि जवान होती लड़कियों के कई स्यापे होते हैं... क्या पता कब किसका दिमाग़ ख़राब हो जाए... फिर ऐसे आवारा छोकरों का क्या... कुछ भी कर सकते हैं... उस दिन उन छोकरों की नीयत उसे ठीक नहीं लगी थी। अब उसे अपनी बीवी को भी हिदायतें देनी होंगी कि ज़माना ख़राब है... उसे अब और सख़्त होना पड़ेगा। वह मिंदी के ख़ोखे से लौटते हुए लगभग सोचता रहा था। झुग्गी में पहुँचा तो अँधेरा पसर आया था। उसने आते ही इधर-उधर ताका था, सिवाए उसके छोटे लड़के के वहाँ और कोई नहीं दिखा था। पास वाले खम्बे पर दूधिया रोशनी झरने लगी थी। उसकी बीवी ने मिट्टी वाला चूल्हा सुलगा दिया था। फिलहाल चारपाई पर बैठना मुनासिब समझा था उसने। उसने 'रामू' को ऊँघते हुए पाया था... साथ ही ठुमक-ठुमक कर चलने वाली बंदरिया भी लगभग सुस्ता रही थी। आसपास वाले छोटे बच्चों के लिए वे तमाशा ही तो हैं... वह भी तो तमाशा ही है। उसने दोनों ही रस्सी को खोल दिया था। अब वे आज़ाद हो गए थे लेकिन... रस्सी की डोरी तो उसके हाथ में ही थी। वह उन्हें पास वाली खुली जगह में टट्टी-पेशाब के लिए ले जाता है। कितना ध्यान रखता है वह इन दोनों का... धूप से बचने के लिए छाँवदार पेड़... तो बारिश से बचने के लिए टीननुमा छत... और... जाड़ा आता है तो इन्हें भी झुग्गी में ही भीतर सुला देते है। रात को... अपने ही साथ...और... कितने गंदे हैं... ये शहर वाले आवारा किस्म के लड़के... दोपहर को तंग करने यहाँ चले आते हैं... वह ग़ुस्साने लगा था। रात को अँधेरा होते ही आसपास वाली इमारतों तथा स्ट्रीट लाइट की बत्तियाँ दमक उठती हैं तो उसकी झुग्गी के पास वाली ट्यूब लाइट से उसकी घर वाली रात का खाना बना लेती है। बच्चे उछल-कूद करते हुए थक जाते हैं तो खाने पर टूट पड़ते हैं। कजली की जवान होती देह उसके लिए चिंता का विषय हो गया है। शहर के मनचले लड़कों का क्या पता... कब ताक-झाक करने आ जाएँ... वह अब रात को बीवी के साथ सोते हुए अनेक

सावधानियाँ बरतने लगा है। कितनी बार वह अपनी बीवी को समझा-बुझा कर थक गया है कि बच्चों की इतनी फ़ौज से उसका दिल नहीं भरा... फिर इस उम्र में यह सब जँचता है...?? झुग्गी में सब्बी एक साथ ही तो सोते हैं... फिर जवान लड़की रात को जाने कब उठ बैठे... उसे बीवी के साथ सोते हुए एहतियात तो बरतनी ही चाहिए न... फिर इन जनानियों की अक़्ल पर कभी भी पर्दा पड़ सकता है... दिन होता है तो आसपास दूसरी झुग्गियों में भी ज़िंदगी पसर जाती है।

'रामू' और 'चमेली' को ठंडे पानी से नहलाना उसे अच्छा लगता है। वे दोनों भी इतनी देर तक ठंडे पानी से नहाते हुए फूदकते रहते हैं। ज़िंदगी उसी ढर्रे पर चलती रहती है... वह अपने धंधे के लिए तैयार हो गया था।

'रामू' और 'चमेली' साइकिल की रॉड और कैरियर पर बैठा कर ले जाना उसका क्रम हो गया है... ये दोनों न हों तो धंधा ख़ाक होगा उसका... आज उसने भदरोआ के इलाक़े का रुख़ लिया था। चक्की दरिया के साथ सटे इलाक़े में उसके धंधे की बढ़िया संभावनाएँ दिखती हैं।

'तमाशा यहीं करोगे न आज...?' बीड़ी के सुट्टे मारता हुआ एक लड़का बोला था।

'तब्बी तो इधर आया हूँ आज...' वह तपाक से बोला था।

'उधर खुली जगह है... वहीं आ जाओ...' उस लड़के ने सामने वाली खुली जगह पर जाने का मशविरा दिया था।

'तुम ऐसे करो... आसपास वाले घरों के लोगों को इत्तला दे दो...।'

'तुम डुगडुगी बजाओ ज़रा... ज़ोर से... देखना अभी कितने लोग चले आएँगे...।' वह डुगडुगी बजाने लगा था।

छोट-छोटे बच्चे भागे चले आए थे। आसपास की औरतें भी छाती पर दुपट्टे सरकाए हुए भीड़ का हिस्सा होने लगी थीं। वह बराबर डुगडुगी बजाता रहा था। तमाशा शुरू होने में देरी हो रही थी, भीड़ जुटे तो तमाशा शुरू करे वह। लगभग बीस लोगों का जमघट हो चला था। डेढ़-दो घंटे की मशक़्क़त से उसके हाथ मात्रा तीस-चालीस

रुपये ही लगे थे। इतना इससे पहले भी तो हो जाता था। वह उदास हुआ लौटने लगा था। उसका मन नहीं हो रहा था आगे जाने को... प्रीत नगर, पटेल चैक, ढांगू रोड, माडल टाऊन, रेलवे रोड, शास्त्री नगर, अबरोल नगर, इन्द्रा कॉलोनी के अतिरिक्त और कई इलाक़े भी तो हैं। उसका धंधा वहाँ क्या जमेगा, उसे तो अपने ही तरह के टप्परवास और फटीचर लोगों के दायरे में तमाशा करके अच्छा लगता है। ये लोग तालियाँ पीटते हैं तो वह चौड़ा हो जाता है। शहर के लोग तो तमाशबीन हैं। तालियाँ पीटना तो क्या उल्टे फब्तियाँ कसते हैं... यह भीतर से टूट जाता है तब। उसने साइकिल से सामान उतारते हुए 'रामू' और 'चमेली' दोनों को पेड़ से बाँध दिया था। वे दोनों अब आज़ाद थे... उन पर कोई पाबंदी नहीं रही थी... वह भी खाना खाने के बाद भीतर झोंपड़ी में सुसताने चला गया था। लेकिन उसकी तंद्रा उसी तरह अभंग ही थी। उसने आज उस बाऊनुमा शहरी लड़के को दबोचना था। उसके छोटे बेटे ने उसे चेताया था, 'बापू उठ तो...'।

'क्या हुआ बे... आ गया न वो लड़का...?'

'मुझे क्या पता... आ तो इधर ई रियाऐ बापू...।'

'आने दो... देखना... कैसे दबोचता हूँ उसे... तुम कहीं छुप जाओ भीतर जाकर... मैं देखता हूँ उसे...।' उसने अपने पुत्तर को झुग्गी में जाने का मशविरा दिया था। उसने सारी औरतों, लड़कियों, बच्चों को भी भीतर चले जाने को कहा था। अब वह अकेला ही रह गया था वहाँ। 'रामू' और 'चमेली' उसी तरह उछल-कूद रहे थे... एक दूसरे की जुएँ निकालते हुए वे खुजाते रहे थे। बीच-बीच में ऊँघ भी रहे थे। वह भी झुग्गी की परली तरफ़ वाले खाली प्लाट की दीवार के पीछे छुपकर बैठ गया था।

दोपहर की चिलचिलाती धूप उसे जलाने लगी थी। कहीं भी कुछ आहट होती तो वह मुस्तैदी से उठ बैठता... लेकिन... लगभग एक घंटे के बाद वही शहरी बाऊनुमा लड़के इधर ही आते दिखे थे। झुग्गियों में सन्नाटा पसरा देख उसने इत्मीनान से इधर-उधर ताका था। वह भी तैयार हो गया था। इन लड़कों ने इधर-उधर ताकते हुए बंदर के पास आकर पोटली से कुछ रोटियाँ निकाली थीं। वह फुर्ती से उठा था। लेकिन... उसने देखा वे लड़के वहाँ नहीं थे। उसने इधर-उधर ताका था। वे लड़के उसके बाहर आते ही अपनी फिटफिटियों पर चढ़े आँखों से ओझल हो गए थे। वह आज भी उनके यहाँ आने का मंतव्य समझ नहीं पाया था। उसने सोचा था। वे भैण के यार ज़रूर यहाँ आशिकी करने आते होंगे... मिंदी के चाय के ख़ोख़े में चाय पीने चला आया था वह।

उसके वहाँ आते ही मिंदी ने कहा था, 'उन छोकरों का पता चल गया है...।'

'हैं...? कैसे?' वह बौखलाया था।

'बैठ तो सही... चाय बनाऊँ...?'

'चाय भी पीता हूँ... तुम बताओ तो सही... कौन हैं वे छोकरे...?'

'कल शहर के दूसरे लड़कों के साथ वे भी आए थे चाय पीने...।'

'तुमने कैसे जाना कि वहीं लड़के हैं वे...।'

'यहाँ बड़े-बड़े तीसमार ख़ाँ आते हैं... मेरे खोखे पर...।'

'बता यार... क्यों पहेलियाँ बुझा रहा है...?'

'कल शाम को यहीं बैठे थे... सब्बी... देर तक दारू पीते रहे थे...।'

'पर... तुमने कैसे जाना कि वे 'वही'

लड़के हैं...।'

'दारू पीते-पीते जहान भर की बातें करते रहे थे...'

'बंदर के पास वे क्यूँ आते हैं... वे लोग...?'

'बताता हूँ...'

'कोई टोटका करना है उन्होंने... बंदर के चारों तरफ़ कुछ फेरे लगाने आते हैं... एक जना तुम्हारे बंदर को कुछ खिलाने आता है... तो दूसरा तुरन्त बंदर के गिर्द चक्कर लगाने की फिराक़ में रैता है...।'

'कमाल है भाई... सच्ची यही बात है...?'

'ऐसे ई बोल रए थे... जानवर से तो वे डरते हैं... सबसे बढ़कर तुमसे डरते हैं... जाने क्यों...?'

'मैं क्या कैता हूँ उन्हें...।'

'तूने उस दिन उन्हें डपट दिया था न...? ...गालियाँ भी निकाली थीं।'

'हाँ... और क्या करता... 'रामू' को कुछ खिला रए थे वे... फिर झुग्गी में जवान लड़कियाँ भी हैं... क्या पता स्साले 'रामू' को खिलाने के बहाने ताक-झाँक ही न करने आते हों... उन्हें भगा दिया था...'

'नईं मद्दी भाई... उन्हें भगाना मत अब... वे तुमसे मदद चाहते हैं...।'

'क्या चाहते हैं... मुझसे...?'

'यही कि अबके आए तो उन्हें डपटना नईं...'

'तो क्या करूँ...?'

'बेचारों का काम होना चाहिए... बंदर के गिर्द फेरे ही तो लेने होते हैं... उन्हें... बस... तुम 'रामू' को ज़रा पकड़ के रखना... भाई उनको किसी सयाने ने ऐसा टोटका करने को कहा है... ऐसा करने से उनके कारोबार में इज़ाफ़ा होगा...।'

'तो मैं क्या करूँ... फिर...?'

'पुन्न का काम है...।'

'यह कैसा पुन्न है भाई...?'

'उनको तुम्हारी मदद की ज़रूरत है... समझते क्यों नईं...?'

'क्या समझूँ...?'

'बंदरों के तमाशे में कितना कमा लेते हो...?'

'यही तीन-चार सौ रुपये रोज़ का... जिस दिन बारिश हो जाए... समझो खल्लास...।'

'वे छोकरे तुमसे इसीलिए तो बात करने आए थे...।'

'चल छोड़ अब... उनसे बात कर लो... वे आएँगे... कुछ रुपये भी दे जाया करेंगे...।'

'ठीक है... यह हुई न बात... इतने दिन ऐसे ई निकाल दिए कमबख़्तों ने...।'

'तेरी कमाई भी हो जाएगी और उनका काम भी... ठीक...?'

'देखते हैं... चलता हूँ...।'

वह वापस अपनी झुग्गी में आ गया था। उसने देखा था। 'रामू' और 'चमेली' इत्मीनान से रस्सी से बँधे हुए उछल-कूद रहे थे। वह थक गया था। शहतूत की चितकोबरी छाँव छितराने लगी थी। उसने उन्हें खोल दिया था। अब वे साथ वाली दीवार के पास आकर बैठ गए थे। यहाँ धूप से बचने के लिए दीवार का साया उन्हें अच्छा लगा था। उसने उन दोनों को पुचकारा था। उसने सोचा था बेचारों को कहाँ-कहाँ चिलचिलाती धूप में दिनभर साइकिल पर बैठाए लिए फिरता है। कैसा धंधा है यह। उसे घाटे का धंधा लगा था। तमाशा करके भला इतने भरकम 'टब्बर' का ख़र्चा चल सकता है? उसने देखा था उसकी लड़की पिछवाड़े वाले खाली पड़े प्लॉट से शायद पेशाब कर के लौटी है। वह कुछ नहीं बोला था। आकर चुपचाप चरपाई पर पसर गया था। लेकिन... जवान होती कजली पर अब पाबंदियाँ भी तो लगानी पड़ेगी न...दूसरे दिन वह उठा तो उसकी नज़रें उस शहर वाले बाऊनुमा लड़कों को तलाशने लगी थीं। इतनी सवेरे भला वे कहाँ से आ जाएँगे। उसे अब दोपहर तक प्रतीक्षा करनी थी। वह मुस्तैद हो गया था। वह शहर वाले बाऊनुमा लड़के अपनी खटियल फिटफिटिए से उधर ही आते दिखे थे। आते ही उन्होंने अपनी फिटफिटिया शहतूत की चितकोबरी छाँव में खड़ी कर दी थी।

एक जना बोला था, 'आपसे बात करनी थी... जी... कल मिंदी खोखे वाले ने बताया होगा आपसे...?'

'उस दिन भी तुम लोग ई ही आए थे न...?' उसने पूछा था।

'आते रए हैं हम... बंदर से बढ़कर आपसे डरते रए हम...।'

'क्यों...?'

'बस... जानवर से डरना ई पड़ता है... फिर... आपका क्या पता... इसलिए डरते रए...।'

'रोटी डालने से तुम्हें डर नईं लगा... पता है... कैसे नोचते हैं ये बंदर...?'

'तब्बी तो डर से भाग गए थे उस दिन... आपसे एक बात करनी थी...।'

'पगले... क्या बात करनी थी... बोल... क्या मसला है जो शहर से इतनी दूर तक चले आते हो...?'

'मिंदी ख़ोख़े वाले ने हमें आपसे मिलने को कहा... तो आ गए हम...।'

'अब बोल... क्या बात है ?'

'बात यह है कि हमें एक टोटका पूरा करना है जी इक्कावन दिनों तक... रोज़ किसी बंदर के इर्द-गिर्द पाँच चक्कर लगाने के बाद धूपबत्ती करनी है... किसी सयाने ने कहा है ऐसा करने से मेरा चौपट हुआ धंधा पटरी पर आ जाएगा... जी...।'

'तो उसी दिन पूछ लेते बरख़ुरदार... इतनी सी बात थी...?'

'हमारी मदद कीजिए...।'

'क्या कर सकता हूँ... बोलो...?'

'बस अपने बंदर को इतनी देर तक पकड़े रखना है... और... इतने में हम पाँच चक्कर लगा लिया करें फटाफट... हमारी मदद

करिएगा...।'

'कल से इसी समय आ जाया करोगे न...?'

'बिल्कुल जी... एक बात और करनी थी...।'

'बोल अब...?'

'हम आपकी मदद ऐसे ई थोड़े लेंगे... कुछ देकर ई जाया करेंगे...।'

'क्या देकर जाओगे...?'

'बीस रुपये एक आदमी के... हर रोज़... बोलिए मंज़ूर है...?'

'मज़ाक करता है...? इतने पैसे तो आज एक बच्चा भी नई पकड़ता... न... न... भाई... पचास रुपये से कम बात नहीं बनेगी... मर्ज़ी है तो कल से आ जाना... पर... एक बात याद रखना... पचास से कम बात नईं बनेगी...'

'ज़्यादा हैं...'

'सोच लो... मंज़ूर हो तो कल से आ जाना... पता है... आज बंदर कहाँ मिलते हैं शहरों में... जाने कहाँ भटकना पड़ना था तुम्हें... डमटाल की पहाड़ियों पर... शुक्र करो... हम लोगों का डेरा यहाँ जमा है... वरना... तुम्हें यह बंदर भी नईं मिलना था... अब बोलो... कल से शुरू कर दें... तुम्हारा ड्रामा...?'

'ठीक जी...'

'अब टैम से आ जाया करना... इसी टैम पर... और... पचास रुपये एक जने के हिसाब से याद रहेगा न...?'

'आज का दो जनों का यह लो जी... एक सौ... आज ई से शुरू कर देते हैं...।'

'तुम्हारी मर्ज़ी' उसने सौ का नोट जेब में डालते हुए कहा था।

'कहाँ है बंदर...?' वह छोकरा इधर-उधर देखने लगा था।

'लाता हूँ...' वह 'रामू' को रस्सी के सहारे चलाते हुए वहाँ ले आया था।

'चलो आ जाओ... एक-एक करके... धूपबत्ती है न...?'

'सब्बी हैं...'

उसने बंदर को कसके पकड़ लिया था... साथ में उसे भुने हुए चने भी खिलाने लगा था।

उन दोनों ने देखते ही 'रामू' के गिर्द फुर्ती से गिनते हुए पाँच चक्कर लगाकर धूपबत्ती सुलगा ली थी। 'रामू' धूप के कसैले धुएँ से नाक-भौं सिकोड़ने लगा था... उसके लिए यह सब नई बात ही तो थी.. वे दोनों 'रामू' के सिर के ऊपर धूपबत्ती घुमाते हुए रटे-रटाए मंत्रों का उच्चारण करने लगे थे।

'अब ख़ुश हो न... बरखुरदार...?' उसने पूछा था।

'अपना काम हो रिया है जी... ख़ुश क्यों न होंगे...?'

'इतने से काम के लिए तरस रए थे न...?'

'यह बहुत बड़ा काम था जी... हमारे लिए... आपने तो मेहरबानी कर दी जी... हम पर... रब्ब आपका भला करे...।' अब वे दोनों रोज़ाना आने लगे थे।

वह भी तो अब बँध गया था। पचास-सौ रुपयों के लिए वह उन छोकरों का ग़ुलाम हो गया था। अपने तमाशे का टैम भी अब ऐसे ही उन छोकरों के इन्तज़ार में ख़राब होने लगा था। उस दिन वे छोकरों ने तो हद कर दी थी। दोपहर भी ढलने लगी थी। वह जल-भुन गया था। अब तो वह बंदरों का तमाशा करके लौट भी आता था। आज तो तमाशा भी रह गया। उसने 'रामू' और 'चमेली' को धूप वाली जगह से खोलकर पास ही दूसरे घने दरख़्त की छाँव तले बाँध दिया था। वे लड़के भी उसे आते हुए दिखे तो वह लगभग आग-बबूला हो उठा था।

'यह टैम है आने का... तुम लोगों ने तो मुझे भी टाँग रखा है... पता है... कहीं भी नई गया आज... तुम्हारा इंतज़ार करता रहा...।'

'बस लेट हो गए जी...' एक जना बोला था।

'ऐसे नईं करना... कल से... ठीक आठ बजे सवेरे, कहा न तुम्हें...?'

'कहा था...जी...।'

'पता है... तुम लोगों के इस ड्रामे ने हम सब्बी को बाँध कर रख दिया है... वरना... अब तो हमने किसी दूसरे शहर में डेरा डाल दिया होता... अब हम तो बँध गए न... दो महीनों के लिए...?'

'मेहरबानी कर रए हैं जी... आप...।'

'इन सौ-दो-सौ रुपयों के लिए तुम्हारी राह तकते रहते रहें...?'

'अब्बी इतने ही सही... शहर के और लोग भी हैं... जिन्हें यह सब करना है... पूछ रए थे जी... उनको हाँ कह दूँ न...?'

'क्यों नईं... जहाँ तुम लोग आते हो... चार जने और भी आ जाएँ... मुझे क्या फ़र्क़ पड़ेगा... पर देखना... सब्बी को एक ही टैम पर आने का है... समझे... एक साथ आओ... और... अपना ड्रामा करो... और... जाओ...।'

'ठीक है जी...।'

'टैम पर आना है सब्बी ने... मैं तुम्हारे बाप का नौकर नईं जो सारा दिन इसी ड्रामें में पड़ा-मरा रहूँ... पता है... मुझे अपना तमाशा भी तो करना होता है... और भी कई काम होते हैं घर के... समझ गए ना...?'

'समझ गए...।'

वे लड़के दूसरे दिन अपने साथ सात-आठ जनों को और ले आए थे। अब कुल मिलाकर बारह-तेरह लोगों का जमघट हो गया था... सवेरे उठते ही शहर के ये लड़के उसकी झुग्गी का रुख़ करने लगे थे। अब आसपास वाले लोग भी इस ड्रामे को देखने लगे थे। अब उसने मन ही मन हिसाब लगाया था। लगभग तीस जने वहाँ आने लगे थे। शहर के लोगों को यह सुविधा घर बैठे मिल गई थी... इस बात की चर्चा पूरे शहर में होने लगी थी। अख़बारों में इस ड्रामे की ख़बर सुर्ख़ियों में छपने से वहाँ लोगों का ताँता लगने लगा था। अब लगभग पूरा दिन यही सब होने लगा था।

इस ड्रामे से बेचारा 'रामू' भी धूप-बत्ती का धुआँ फाँकते खिन्न हो उठा था। अब उसकी रोज़ की कमाई हज़ारों में होने लगी थी। रुपयों की गिनती करते हुए उसकी बाँछे खिल गई थीं। लेकिन... उसे इस बात का क्षोभ हुआ था कि कितने दिनों से वह तमाशे के लिए कहीं भी नहीं जा सका था। उसने शहतूत की चितकोबरी छाँव तले बँधे हुए 'रामू' और 'चमेली' को अनमने से देखा था जो एक दूसरे की जुएँ निकाल रहे थे। उसे उन पर तरस आया था। उसके तमाशे के यही तो दो अहम किरदार हैं, जिनके बिना तमाशे की परिकल्पना भी नहीं की जा सकती, यहीं बँधे हैं। वे कितने दिनों से। उनकी उछल-कूद इस रस्सी के दायरे में सिमट कर रह गई है। उसने सोचा था कि यह भी तो उस तमाशे का दूसरा रूप है, जिसके एवज में लोग उनके पास आते हैं और उसकी जेब रुपयों से भर जाती है। तमाशे में तो उसे हाथ पसारे हुए लोगों को रुपया-दो रुपये ज़मीन पर बिछी चादर पर फेंकने की गुहार लगानी पड़ती हैं तब कहीं जाकर शाम तक दो-तीन सौ रुपयों का जुगाड़ हो पाता है। उसने सोचा था... शहर के लोगों के इस ड्रामे का आख़िर एक दिन तो अंत होना ही है। सिर्फ़ दो महीनों की ही तो बात है। वह फिर से तमाशे में जुट जाएगा। 'रामू' और 'चमेली' भी खुली हवा में साँस ले सकेंगे... वरना... यहाँ रस्सी से बँधे हुए वे दोनों भी उदास से हो गए हैं।

उस दिन उसकी बीवी ने पूछा था, 'यह सब कब तक चलेगा...?'

वह बोला था, 'थोड़े दिनों की बात है...चार पैसे ही देकर जाते हैं... वे लोग...।'

'लोगों को इस तरह कब तक बेवक़ूफ़ बनाओगे...?'

'मैं कब कैता हूँ... यहाँ आएँ... वे लोग ख़ुद ई तो आते हैं...बोल...?'

'मैं तो कैती हूँ... उन्हें मना कर दो... क्या तमाशा बना रखा है...?'

'कहा न... थोड़े दिनों की बात है... थोड़ी कमाई और हो जाए...।'

'इसे कमाई कैते हो...? यह तो धोखा हुआ न...?'

'कहा न... थोड़े दिन इंतज़ार करो... लोगों का विश्वास है... अगर 'रामू' के गिर्द पाँच चक्कर लगाने में उनका विश्वास है तो बोल उनका दिल तोड़ दूँ...?'

'पर... यह कमाई खून-पसीने की तो न हुई ना...?'

'ऐसा क्या मैं नईं सोचता... मुझे भी कभी-कभार लगता है कि इस धंधे में खोट है... यह धंधा लूट वाला है...।'

'तो क्यों लोगों से खिलवाड़ कर रए हो...?'

'कहा न... पचास-साठ दिनों की बात है... यहाँ कोई आएगा...?'

'मुझे क्या पता...?'

'कोई नईं आएगा यहाँ... यह मेला उजड़ जाएगा... देखना...।'

'दिल को चैन तो मिलेगा न...? सारा दिन फिटफिटियों के खटर- पटर... लोगों ने यह कैसा ड्रामा बना दिया है... बेचारा 'रामू' देखा नईं धूपबत्ती का धुआँ फाँकते हुए किस तरह नाक-मुँह सिकोड़ता है...।'

'पता है...।'

'अब कोई नया छोकरा आए तो उसे हाथ जोड़कर मना कर देना...यहीं पड़े रहना है क्या...? अपना गाँव छोड़े भी तो कितने महीने हो गए हैं... इस तमाशे वाली ज़िंदगी ने सबी को तमाशा बना दिया है...।' सच ही लोगों के जमघट में 'रामू' तमाशा हो गया था।

सारा दिन उसके गिर्द चक्कर लगाने वालों की गिनती में दिनों-दिन बढ़ोत्तरी हो रही थी। उसने सोचा था कि इस तमाशे का कभी तो अंत होगा। उसे इस तमाशे से सबसे ज़्यादा नुकसान यह हुआ कि वह अब कहीं भी आ-जा नहीं सकता था। पता नहीं कब कोई आ धमके। इसलिए उसे हाज़िर होना ही पड़ता है... झुग्गी के आसपास। अभी कल ही एक शख़्स लगभग शाम ढलने के वक़्त आ धमका था। उसने उसे मना किया तो वह शख़्स आँखें तरेरने लगा था। उसे लगा था, लोगों ने पचास रुपयों में उसे जैसे ख़रीद ही लिया हो। वह भी गुस्से में आ गया था। आख़िर उसकी भी कोई ज़िंदगी है। लाख चाहते हुए भी वह उसे मना कर ही नहीं सका था। जाने क्या-क्या ऊल-जुलूल सोचने लगा था वह। कजली भी जवान हो रही है। दूसरी झुग्गी वाली दूसरी लड़कियाँ भी जवान हो रही हैं। इस माहौल में वह उसे सलीक़े से रख सकेगा? वह सोचने लगा था... क्या पता इस तमाशे की आड़ में किसी मनचले का दिमाग़ ख़राब हो जाए... वह भयभीत हो गया था। सच ही आज ज़माना बहुत ख़राब है। जवान लड़कियों पर नज़र रखनी ही पड़ती है। उसने मन ही मन सोचा था कि अब उस पर पाबंदियों का जाल तान देना होगा... फिर छोटे लड़के भी अब बच्चे थोड़े रहे.. वे भी तो इसी माहौल में पल-बढ़ रहे हैं... ग़लत आदतें ही सीखेंगे। अभी थोड़े दिन पहले ही उसे बीड़ी के सुट्टे मारते हुए पकड़ा था उसे... अब उसे किसी भी हालत में इस माहौल में नहीं रहना...सबसे बढ़कर उसे इस नए धंधे की कमाई ने मजबूर कर दिया था। ऐसी कमाई कभी भी फल-फूल नहीं सकती। उसने सोचा था... इसे हराम की कमाई भी तो नहीं कह सकता... इस धंधे से सारा दिन उल्लुओं की तरह बैठे रहना पड़ता है... फिर यह मेहनत की कमाई ही हुई न...?

उसने मन ही मन फ़ैसला किया था... कल से इस तमाशे का अंत कर देगा... उसने ठेका नहीं ले लिया... शहर की भलाई का... भाड़ में जाएँ शहर के लोग... उसे बंदर-बंदरिया का तमाशा किए भी तो कितने दिन हो गए हैं। उसने देखा था... 'रामू' और 'चमेली' शहतूत की ढलती छाँव में उदास से ऊँघने लगे हैं। उसने दोनों को पुचकारा था... अब कल से इन्हें तमाशे के लिए ले जाएगा... उसकी यही तो हक़-हलाल की कमाई है... उसने मन ही मन एक पुख़्ता फ़ैसला किया था कि कल उसे और सख़्ती से पेश आना होगा। शहरवालों से... चाहे लाख़ गुहार लगाते रहें... उसने उनके इस नाटक का अंत कर देना है...उसने देखा था... एक शख़्स हाथ में धूपबत्ती लिए इधर ही आ रहा है। वह ग़ुस्सा गया था। आग-बबूला हो गया था... वह शख़्स गुहार लगाता रहा था... उसने उसका पचास का नोट ज़मीन पर फेंकते हुए, पिच से थूक दिया था।

000

कथा-कहानी

तीसरा कौन

ममता त्यागी

दरवाज़े की घंटी बजी तो शिल्पी ने बाहर जाकर देखा कि ताज़े लाल गुलाब के फूलों का बुके दरवाज़े की शोभा बढ़ा रहा था। उसने मन में सोचा,'अरे वाह ! इतनी जल्दी जनाब का दिमाग़ ठिकाने आ भी गया। सुबह लड़ कर गए थे इसलिए ऑफ़िस जाकर मन नहीं लगा होगा तभी तो फूल भेज दिए।' वह जल्दी से बुके उठाकर अंदर आ गई। उसका मन प्रफुल्लित हो गया और सोचने लगी वह ख़ुद ही मूर्ख है ज़रा सी बात पर तुनक बैठी। पर ज़रा सी बात कहाँ थी, उसने तो अवि से कितने प्यार से कहा था, 'वीकेंड पर ड्यूक गार्डन चलेंगे। आजकल स्प्रिंग में वहाँ फूलों की बहार देखते ही बनती है।' पर वह ज़िद पर अड़ गया कि घर में मूवी ही देखेंगे। कितने दिनों से कोई इण्डियन मूवी नहीं देखी। साथ मिलकर नेटफ़्लिक्स पर 'धुरंधर' देखते हैं। उसने कहा भी था कि उसे चार घंटे मूवी में बर्बाद नहीं करने हैं, बाहर जाएँगे तो अच्छा लगेगा। दोनों ही अपनी ज़िद पर अड़ गए, बस इसी बात पर उनमें बहस हो गई। सुंदर फूल देखकर वह सब भूल गई और तय किया कि अवि की पसंद का बढ़िया-सा डिनर बनाकर अवि को मना लेगी। आख़िर इतना सुंदर बुके भेजकर दोस्ती की पहल भी तो उसने ही की है।

शिल्पी और अवि की शादी को अभी कुछ समय ही हुआ था। दोनों ही इंदौर से यहाँ पढ़ने आए थे किसी दोस्त के यहाँ एक पार्टी में मिले। धीरे-धीरे दोस्ती बढ़ी और कुछ समय पहले दोनों विवाह के बंधन में बँध गए। अमूमन जैसा नई शादी-शुदा जोड़े में होता है प्यार और छोटी-छोटी बातों पर तकरार, वही सब उनके बीच भी होने लगा। पर झगड़ा होते ही तुरंत एक दूसरे को मना भी लेते थे। आज बात ज़रा ज़्यादा बढ़ गई थी और अवि बिना कुछ खाये ग़ुस्से में ऑफ़िस के लिये निकल गया था। शिल्पी का वर्क फ्रॉम होम ही था। वह भी ग़ुस्से में तनतनायी घूमती रही, न काम में मन लग रहा था न किसी और बात में पर फूलों ने फिर उसे कोमल अहसास से भर दिया। शाम को जब अवि घर आया तो उसने मुस्कराते हुए स्वागत किया जबकि आज उसे काफ़ी देर हो गई थी। अवि ने सोचा चलो अच्छा है, मैडम का मूड अपने आप ही ठीक हो गया।

उसने उड़ती सी एक नज़र फूलों पर भी डाली पर वह अपनी ही सोच में डूबा था और उसने चुपचाप ख़ाना खा लिया। शिल्पी सोचती रही वह बोलेगा और अवि को लगा वह कुछ कहेगी। दोनों में कोई बात नहीं हुई। वह बहुत थका हुआ था, ख़ाना खाकर जल्दी ही सो गया। अगली सुबह अवि तैयार होकर ऑफ़िस के लिए निकल गया और शिल्पी जल्दी से घर का काम ख़त्म कर अपने ऑफ़िस का काम करने लगी। परंतु बार-बार उसके मन में आ रहा था कि जब अवि ने फूल भेजे थे तो मुँह से क्यों नहीं बोला, एक बार अपने हाथ से फूल दे देता तो उसे कितना अच्छा लगता। पर वह भी मानिनी थी, स्वयं कैसे पूछती। ऐसे ही कश्मकश में दिन गुज़रता रहा और दोपहर हो गई। थोड़ी देर बाद घर की घंटी बजी तो उसने फ़ोन में मुख्य द्वार के कैमरे में देखा कि दरवाज़े पर डिलीवरी मैन कुछ सामान रखकर जा रहा था। वह नीचे गई तो देखा दरवाज़े पर पीले गुलाबों का ख़ूबसूरत-सा बुके रखा है। वह हैरान हो गई, उसके चेहरे पर मुस्कान आ गई, अवि पर बहुत प्यार उमड़ आया। उसने सोचा अवि को क्या हो गया जो रोज़ ही फूल भेज रहा है।

अवि ऑफ़िस पहुँचा तो बहुत खिन्न था, कल ही उसकी बॉस से कहा सुनी हो गई थी। अवि एक बड़ी कंपनी में इंजीनियर था जो मेडिकल संबंधित उपकरण बनाती थी। वह कंपनी के रिसर्च एंड डेवलपमेंट विभाग में मैनेजर था। उनके पास नए-नए प्रोजेक्ट आते थे और वह हमेशा अपने प्रोजेक्ट बहुत सावधानी से पूरा करता था। दो महीने पहले ही उसकी टीम में दो नई इंजीनियर लड़कियाँ आई थीं। दोनों ही बुद्धिमान थीं, परंतु काम का तजुर्बा कम था। उनकी समय पर काम पूरा न करने की आदत से बहुत परेशान था। बार-बार रिमाइंडर भेजना उसे पसंद नहीं था। एक प्रोजेक्ट की डेडलाइन पास आ रही थी, और अभी तक उस प्रोडक्ट की टेस्टिंग भी शुरू नहीं हुई थी। मार्केटिंग टीम का दबाव भी बन रहा था। प्रोजेक्ट भी तभी फाइनल होगा जब प्रोडक्ट की सही तरीक़े से टेस्टिंग होगी और क्वालिटी इंजीनियर उसे पास करेंगे तभी मार्केटिंग टीम का काम शुरू होगा। सारा काम एक से दूसरे डिपार्टमेंट के साथ जुड़ा था और सब एक दूसरे पर निर्भर थे। इसी बात से वह चिंतित था। उसकी बॉस अमैंडा थोड़ा नाराज़ हो गई कि अवि की

ममता त्यागी
411 ब्रायरली ड्राइव, एपेक्स, नॉर्थ कैरोलाइना, यू एस ए
मोबाइल- 984-218-6178
ईमेल- mamta.t80@gmail.com

लीडरशिप ख़राब है, वह अपनी टीम से सही तरीक़े से काम नहीं ले पा रहा है।

रात को भी उसके दिमाग़ में यही सब चलता रहा। शिल्पी के साथ हुई बहस ने उसे और भी परेशान कर दिया था। शिल्पी बहुत अच्छी लड़की थी पर कभी-कभी बच्चों की सी ज़िद पर अड़ जाती थी। कल जब वह घर गया तो बहुत थका था, शिल्पी को अच्छे मूड में देखकर चैन मिला और वह जल्दी ही सो गया, सुबह उठा तो फूलों पर दोबारा उसकी नज़र पड़ी। अब उसे हैरानी हुई कि यह सुंदर गुलदस्ता यहाँ कैसे रखा है ? किसने भेजा होगा ? फिर उसे लगा शिल्पी ड्यूक गार्डन जाने की बात कर रही थी और उसने मना कर दिया तो शायद इसीलिए शिल्पी ने ज़िद में गार्डन घर ही मँगवा लिया। शिल्पी के चेहरे की मुस्कान बता रही थी कि वह बहुत ख़ुश है। फिर उसे लगा शायद शिल्पी ने उसे मनाने को ही मँगवाया है। पर जब शिल्पी ने कुछ भी नहीं कहा तो उसका पुरुषोचित अहम् उसके सामने आ गया। उसने स्वयं भी कुछ नहीं पूछा और निराश होकर ऑफ़िस आ गया।

शिल्पी घर से काम करती थी उसका सामना कभी ऑफ़िस के अन्य लोगों से प्रतिदिन नहीं होता था। अगर कुछ भी समस्या आती, मेल के माध्यम से एक दूसरे तक पहुँचा दी जाती और एक्शन भी ले लिया जाता। अवि को तो हर समय अपनी टीम को देखना था, उनसे काम लेना पड़ता था। उसे मन ही मन ग़ुस्सा आ रहा था कि शिल्पी इतनी सी बात नहीं समझती कि उसे कोई परेशानी भी हो सकती है। अगर झगड़ा हुआ था तो बात करनी चाहिए थी, उसकी प्रॉब्लम पूछती पर उसने तो ग़ुस्से में और फूल ही मँगाकर डाइनिंग टेबल पर सजा दिये। वह अपने विचारों में उलझा ही था कि तभी उसका सहकर्मी ईथन उतरा हुआ चेहरा लेकर उसके रूम में आ गया। आम तौर पर वह किसी की व्यक्तिगत ज़िंदगी में दख़ल नहीं देता पर आज इतने ख़ुशमिज़ाज दोस्त को परेशान देख उसने पूछ ही लिया। ईथन ने भी अपना मन उसके सामने खोल दिया। पता चला कि उसकी गर्लफ्रेंड उसे चीट कर रही थी। अवि ने पूछा- 'तुम्हारी गर्लफ्रेंड तो चार साल से तुम्हारे साथ थी फिर अचानक क्या हो गया ?'

ईथन उदास स्वर में बोला, 'मैं उसे रोज़ नए तोहफ़े लाकर नहीं देता था। मैं उसे प्रपोज़ करने के लिये एक क़ीमती रिंग ख़रीदना चाह रहा था उसी के लिए पैसे जमा कर रहा था। उसका बॉस आए दिन उसे महँगे तोहफ़े, फूल आदि देने लगा था। मैं अधिक पैसा कमाने के चक्कर में उसे समय ही नहीं दे पा रहा था तोहफ़े तो दूर की बात थी। पता नहीं इन सबके बीच वह कब मुझसे दूर हो गई पता ही नहीं चला। सब मेरी ही ग़लती है।'

उसका स्वर भीग गया। ईथन तो अपनी व्यथा सुनाकर अपना मन हल्का कर चला गया पर अवि के सामने एक प्रश्न छोड़ गया। अवि सोचने लगा वह भी तो शिल्पी को समय नहीं दे पा रहा है अपने ऑफ़िस के काम में ही उलझा रहता है। वह सारा दिन घर में रहती है, अगर बाहर जाने को कहती है तो वह थकान का बहाना बना देता है। कहीं शिल्पी भी तो उससे विमुख नहीं हो रही है? उसका मन घबरा गया। सहसा उसके दिमाग़ में विचार कौंधा कि कहीं कोई और तो उनके बीच नहीं आ रहा जो उसे फूल भेजकर अपना बनाना चाहता हो। शिल्पी अपने आप तो फूल मँगवाने से रही, ज़रूर किसी ने भेजे होंगे। पर यह कौन हो सकता है ? कहीं ये फूल श्रीकान्त ने तो नहीं भेजे ? जब से वह शहर में आया है हमेशा घर आने के और शिल्पी से बात करने के बहाने ढूँढ़ता है। अब शिल्पी का बचपन का दोस्त है तो क्या हुआ, उसे यह याद रखना चाहिए कि शिल्पी अब उसकी पत्नी है उसकी अमानत है। अवि के मन में अजीब तरह के ख़याल आने लगे। एक तो काम की अधिकता से वैसे ही वह तनाव में था और इस विचार ने उसे और भी परेशान कर दिया। उसने सोच लिया आज घर जाते ही शिल्पी से बात करेगा।

शिल्पी सुबह से ऑफ़िस के काम में व्यस्त रही, आज एक के बाद एक कई क्लाइंट्स के साथ मीटिंग थी। उसके बाद रिपोर्ट बनाने लगी। चार बज गए उसने कुछ खाया भी नहीं था। काम ख़त्म हुआ तो जल्दी से नीचे आकर कॉफ़ी बनायी और कुछ खाने को लेकर डाइनिंग टेबल पर आ बैठी। तभी सामने रखे फूलों पर दोबारा उसकी नज़र चली गई। अभी तक यह फूल उसे प्रसन्नता दे रहे थे। अचानक उसे ख़याल आया कि अवि ने दो दिनों से ऑफ़िस जाकर उसे कॉल तक नहीं किया। वैसे तो तक़रीबन रोज़ ही पूछता था। पिछले कई दिनों से वह देख रही थी अवि अपने में ही गुम-सा रहने लगा था। न तो ज़्यादा बात करता न ही कुछ शेयर करता था। उसका माथा ठनका कि कहीं अवि का ऑफ़िस में किसी के साथ कुछ चल तो नहीं रहा है, तभी वह ऐसे खोया-सा है। पर ऐसा होता तो फूल क्यों भेजता ? नहीं, यह उसका वहम् है ऐसा कुछ भी नहीं है। पर फिर सोचने लगी कि हो सकता है अपनी ग़लती छुपाने के लिए उसने फूल भेजे हों। पुरुष जब ऐसा कुछ करता है तो छिपाने के लिए पत्नी को अधिक विश्वास में लेता है ताकि वह उस पर शक न करे। शिल्पी के मन में शक का कीड़ा कुलबुला गया। उसका दिमाग़ झनझना गया और मन ने भरोसा कर लिया कि पक्का ही अवि कुछ ग़लत कर रहा है इसलिए दो दिन से उसे फूल भिजवा रहा है। पहले तो कभी उसने बुके तो क्या कभी एक गुलाब भी नहीं लाकर दिया और अब अचानक रोज़ ही बड़ा-सा बुके भिजवा देता है। हो न हो दाल में ज़रूर कुछ काला है, उसे पता करना ही होगा।

उससे क्रोध में कुछ खाया भी नहीं गया। उसने तय कर लिया कि आज अवि के ऑफ़िस से आते ही वह उससे पूछ कर रहेगी। शाम के छह बज गए, अवि का दूर-दूर तक पता नहीं था। शिल्पी तनाव और क्रोध में भरी इधर से उधर घूम रही थी। साढ़े छह बजे और अवि की कार आई। गराज डोर खुलने की आवाज़ सुनते ही शिल्पी तन कर आक्रामक मुद्रा में डाइनिंग टेबल के एक सिरे पर बैठ गई। उसके सामने फूलों के दो गुलदस्ते रखे थे, जो अब ख़ुशी के स्थान पर उसे दंश-सा दे रहे थे। अवि जैसे ही अंदर आया और शिल्पी को फूलों के पास बैठे देखा तो उसकी भी भौंहें तन गई। ऐसा लग रहा था जैसे आज घर में भूचाल आने वाला है। दोनों ही प्रतिद्वंद्वी अपने अपने स्तर पर वाक्युद्ध की तैयारी कर चुके थे

बस अब देखना यह था कि पहला बाण कौन छोड़ेगा ? अवि ने अपना बैग रखकर फ्रिज से पानी लिया और बिना कुछ बोले पानी पीने लगा। शिल्पी के मन का ज्वार अब चरम सीमा पर था अब उससे रहा नहीं गया उसने पहला वार कर ही दिया,'यह रोज़ फूल भेजने का नाटक किसलिए कर रहे हो ? क्या छुपाना चाहते हो, जो यह रिश्वत भेजी जा रही है?'

अवि सुनते ही भड़क उठा, 'यह क्या कह रही हो ? मैं कुछ छिपा रहा हूँ और फूल भेज रहा हूँ, मतलब क्या है तुम्हारा ?'

'ज़रूर तुम्हारा किसी से चक्कर चल रहा है और मुझे पता न लग जाए इसलिए पहले से ही मुझे ख़ुश करने के लिए फूल भेजे जा रहे हैं। आज तक तो कभी एक कली भी नहीं थी और अब रोज़ फूल.....।' शिल्पी ने ग़ुस्से में कटाक्ष किया।

'मुझ पर आरोप लगाने से पहले ज़रा अपने गिरेबान में झाँको। मैंने किसी को फूल नहीं भेजे और न ही मैं कुछ छुपा रहा हूँ। यह क्यों नहीं कहती कि फूल तुम्हारे किसी चाहने वाले ने भेजे हैं और तुम कुछ छिपाना चाह रही हो।' अवि का स्वर तल्ख़ हो गया।

शिल्पी सुनते ही आग बबूला हो गई, 'अच्छा जी, अब उल्टा चोर कोतवाल को डाँटे। तुम्हारे पास मेरे लिए तो वक़्त ही नहीं है। बस ऑफ़िस और वहाँ के लोग ही तुम्हारे अपने हैं, मैं तो कुछ भी नहीं हूँ। सारा दिन घर में पड़ी रहती हूँ और तुम ज़रा से फूल भेज कर मुझे बहलाना चाहते हो।' शिल्पी का गला भर आया। क्रोध का ज्वार उबल कर बैठ गया था और अब आँखों से पिघल कर बह निकला।

'अरे, फिर वही रट लगा दी। मैं कितनी बार कहूँ कि मैंने तुम्हें यह फूल नहीं भेजे। मुझे इस बारे में कुछ नहीं पता और अब यह रोना किसलिए शुरू कर दिया ?' अवि झुँझला गया। उसे समझ नहीं आ रहा था कि उसका निशाना उल्टा कैसे पड़ गया।

तभी दरवाज़े की घंटी बजी, दोनों चौंक गए। इस वक़्त कौन हो सकता है ? एक ही प्रश्न उनके मन में आया। अवि ने जल्दी से स्वयं को संयत किया, शिल्पी ने भी आँसू पोंछ लिए। उन्हें लगा कि कोई दोस्त आया होगा अगर इस तरह दोनों को देखेगा तो न जाने अपने मन में क्या सोचेगा ? अवि ने दरवाज़ा खोला तो देखा एक अजनबी खड़ा था।

'हाय, मेरा नाम मार्क है और मैं इसी कम्युनिटी के एस्टेट साइड में रहता हूँ। क्षमा कीजियेगा, आपको इस समय डिस्टर्ब कर रहा हूँ।' उसने शालीनता से कहा।

'मैं आपकी क्या मदद कर सकता हूँ?'

'मैं आपसे कुछ बात करना चाहता हूँ।'

'आइए।' अवि ने कहा।

शिल्पी भी हैरान सी अजनबी को देख रही थी। उसने धीरे से मुस्करा कर उसका स्वागत किया। मार्क की नज़र भी सामने रखे फूलों पर पड़ी और उसके चेहरे पर एक रहस्यमयी दर्द भरी फीकी सी मुस्कान आ गई।

'मैं इसी कम्यूनिटी के 411 हॉप मिल ड्राइव पर रहता हूँ और आपका घर हॉप जेंक्स ड्राइव पर है। आपके घर का नंबर भी 411 ही है। बहुत ही मिलता जुलता-सा पता है।' मार्क ने कुछ संकोच भरे स्वर में कहा।

अवि और शिल्पी उसकी बातों से कुछ हैरान से थे, उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि मार्क क्या कहना चाह रहा था।

मार्क ने कहा, 'यहीं से मेरी लाइफ में थोड़ी गड़बड़ हो गई है।'

अवि ने हैरान होकर कहा, 'मैं समझा नहीं कि नंबर की वजह से कैसे गड़बड़ हुई है ?'

'मेरी गर्ल फ्रेंड सान्या कुछ समय पहले ही मेरे साथ मूव कर गई थी। किसी बात पर वह मुझसे नाराज़ थी तो मैंने उसे मनाने के लिये उसकी पसंद के फूल ऑर्डर किए। फ़ोन पर वेंडर को पता लिखवा लाल फूल भेजने को कहा पर फूल घर नहीं पहुँचे। मुझे लगा कोई ग़लती हो गई होगी तो मैंने दोबारा बुके ऑर्डर किया पर वह भी नहीं पहुँचा जबकि मैं सान्या को कह चुका था कि मैंने उसे फूल भेजे हैं। अब मेरे घर में इसी बात पर युद्ध चल रहा है। उसे लगता है कि मैंने उसे झूठ कहा है।'

'मैंने वेंडर से पता किया तो उसने बताया कि फूल तो डिलीवर किए जा चुके हैं। उसने दरवाज़े पर रखे फूलों की फ़ोटो भी भेजी। जब मैंने ध्यान से देखा तो पता लगा वह मेरा घर नहीं था। ग़लती से फूल आपके घर डिलीवर हो गए और मुसीबत मेरी आ गई।' मार्क ने पूरी कहानी बतायी। एपेक्स में केवल उनकी कम्युनिटी में ही नहीं आजकल लगभग हर कम्युनिटी में ऐसा हो रहा था कि कई बार डिलीवरी किसी मिलते जुलते पते पर हो जाती थी और यहाँ तो बहुत साम्यता थी, नंबर भी एक था और रोड का नाम भी मिलता जुलता-सा था। अवि और शिल्पी दोनों ही हैरान से एक दूसरे की शक्ल देख रहे थे।

अवि ने सँभल कर कहा, 'ओह ! माफ़ कीजिये हमें भी पता नहीं था कि यह फूल किसने भेजे हैं ? आप ये दोनों गुलदस्ते ले जाइए और अपनी रूठी हुई गर्लफ्रेंड को मना लीजिए।' कहते हुए अवि मुस्करा पड़ा।

'नहीं-नहीं। मैं फूल लेने नहीं आया हूँ, मैं तो बस एक बार चेक करना चाहता था कि फूल वास्तव में कहाँ गए थे ?'

'मार्क ! यह फूल तो आपकी अमानत हैं और आपको ले जाने ही पड़ेंगे।' अवि ने दोनों बुके उसे थमा दिए।

जैसे ही मार्क गया शिल्पी आगे आई और अवि से लिपट कर बोली, 'सॉरी डियर,माफ़ कर दो मैंने तुम पर शक किया।'

अवि की हँसी निकल गई और बोला, 'तुम भी मुझे माफ़ कर दो, मैंने भी बेवजह तुम पर शक किया।'

'वैसे हम दोनों ही कितने बेवक़ूफ़ हैं कि सोच रहे हैं हमारे बीच कोई तीसरा आ गया है।' शिल्पी ने कहा। अवि ने शरारत से मुस्कराते हुए कहा, 'तीसरा तो अब हमारे बीच आना ही चाहिए पर ऐसा तीसरा नहीं बल्कि एक नन्हा मेहमान बनकर आना चाहिए।' शिल्पी ने शर्मा कर मुँह नीचा कर लिया। तभी फिर की घंटी बजी, अवि की माँ का फ़ोन था।

'अवि बेटा। परसों तुम्हारी एनिवर्सरी है। मैंने तुम दोनों की पसंद का बुके ऑर्डर किया हैं,और बताओ क्या भेजूँ ?' सुनते ही दोनों एक स्वर में चिल्ला उठे- 'नहीं -नहीं ! बहुत हो गया अब हमें फूल नहीं चाहिए।' अब घर में दोनों के ठहाके गूँज रहे थे और माँ फ़ोन पकड़े हैरान थी।

000

डेथ सर्टिफिकेट/बर्थ सर्टिफिकेट ...

ज्योति जैन

सुशील अपने ऑफ़िस में बैठा था कि किसी की मुस्कराहट पर हो निसार... मोबाइल की रिंगटोन बज उठी। स्क्रीन पर दिशा का नाम आ रहा था, जो उसके थिएटर के ग्रुप की सदस्य थी और साथ ही एमबीए की पढ़ाई भी कर रही थी। उसने तुरंत फ़ोन रिसीव किया...उधर से स्वर आया।

"हेलो अंकल, मैं दिशा...।"

"हाँ, बोलो बेटा...।"

"एक काम था आपसे... वह मैं, मुझे, उसे कुछ झिझक हो रही थी..."

"हाँ, बोलो बेटा... क्या बात है? क्या काम है?"

"अंकल, एक डेथ सर्टिफिकेट चाहिए था। क्या आप किसी को जानते हैं जो हेल्प कर दे?"

"ओके..." सुशील ने पूछा, "किसके नाम से?"

"जी, मेरे नाम से..."

एक पल सन्नाटा...सुशील चौंके, मौन हुए...यह थिएटर के मँजे हुए कलाकार का ही कमाल था कि सुशील की साँसों से भी दिशा को उनके चौंकने का पता नहीं चला।

सुशील को लगा, यह वक़्त "यह क्या पागलपन है? या यह क्या बेवक़ूफ़ी है?" जैसे डायलॉग का नहीं है। बच्ची किसी संकट में है और मेरी ऐसी प्रतिक्रिया इस संकट को बढ़ा सकती है।

प्रत्यक्ष में उसने कहा, "ओह, अच्छा, ठीक है बेटा, मिल जाएगा।"

"कारण क्या लिखूँ?"

"कारण...? काहे का अंकल?" दिशा ने पूछा।

"अरे भई, डेथ किस वजह से हुई? कारण तो लिखना पड़ेगा ना...।

"ओह, अच्छा...।" दिशा एक पल को चुप हो गई।

"अच्छा अंकल, मैं आपसे बाद में बात करती हूँ।"

" सुनो दिशा..."

उसके फ़ोन बंद करने के पहले ही सुशील ने जल्दी से कहा, "एक काम करते हैं, मेरी एक दीदी हैं, गीता दीदी, वे इस काम में तुम्हारी ठीक से मदद कर देंगी। तुम जो भी कारण लिखवाना चाहो, उन्हें लिखवा देना। चाहो तो मैं तुम्हारा नंबर उनको दे देता हूँ। ओके...?" सुशील को लग रहा था कुछ अनहोनी न हो जाए...उसके पहले ही सँभालना होगा...।

"ओके अंकल...।" दिशा ने अब सहजता से बोला, "आप उनका नंबर मुझे वाट्सएप कर दीजिए, मैं बात करती हूँ।"

नंबर देते ही तुरंत सुशील ने अपनी मुँहबोली बहन गीता को फ़ोन लगाया, जो बड़ी ही अच्छी काउंसलर थीं। उन्होंने दिशा से हुए संवाद के बारे में बताते हुए उन्हें सारी वस्तुस्थिति से अवगत कराया, जो शायद वे स्वयं भी पूरी तरह नहीं जानते थे। लेकिन वे बस बच्ची को गड्ढे में भी नहीं गिरने देना चाहते थे। निराशा के गड्ढे में, हताशा के गड्ढे में।

गीता दी बात को समझ चुकी थीं और वे यह भी समझ रही थीं कि हो सकता है दिशा उन्हें

ज्योति जैन
1432/24, नन्दा नगर,
इन्दौर- 452011, म.प्र.
मोबाइल- 9300318182
ईमेल- jyotijain218@gmail.com

फ़ोन न करे। वह स्वयं को कोई नुक़सान पहुँचाने वाला कदम उठाए, वे स्वयं ही उसे फ़ोन कर लेना चाहती थीं। उन्होंने सुशील से दिशा का नंबर लिया और तुरंत ही कॉल कर लिया। दिशा ने फ़ोन रिसीव किया...

"हैलो...दिशा बोल रही हैं?" गीता ने प्यार से पूछा...

"येस मैम ... गीता मैम...?"

"हाँ, तुम्हें कैसे ?" गीता ने आश्चर्य से पूछा...

"जी मैम, वो सुशील अंकल ने आपका नाम और नंबर दिया था। अभी टू कॉलर में आपका नाम आ गया, इसी से गेस किया।"

"ओह... वेरी गुड... बड़ी ही ज़हीन लड़की हो दिशा!"

"थैंक्स मैम..." दिशा ने कहा।

"वह तुम कोई डेथ सर्टिफिकेट बनवाने की बात कर रही थीं सुशील से?" गीता ने सहजता से प्रश्न किया।

"येस मैम..." दिशा के बोलते ही गीता ने उसकी बात बीच में ही काटते हुए बोला, "हम रू-ब-रू मिल लेते हैं... वह काम ज़्यादा आसान है और जल्दी हो जाएगा।"

"ओके मैम..." दिशा ने स्वीकृति दी।

"कहाँ मिल सकते हैं?"

"आई मीन तुम्हें कॉलेज वगैरह कहाँ से पास पड़ेगा, वहीं मिल लेते हैं...।" गीता ने उससे पूछा। उसने कॉलेज के नज़दीक का ही एक कॉफी हाउस बताया और दोनों ने मिलने का समय तय कर लिया।

प्रथम दृष्टया गीता दी को वह डिप्रेशन में तो नहीं लगी, पर निराश ज़रूर लगी। वे समझ चुकी थीं कि उसे काँच के बर्तन की तरह हैंडल करना होगा। दोनों की करीब दो-ढाई घंटे चली उस मुलाक़ात में जो कहानी गीता दी के सामने आई, वह यह थी कि कॉलेज की पढ़ाई के साथ-साथ शौकिया थिएटर कर रही दिशा को अपने एक सीनियर शुभम से मोहब्बत हो गई। लेकिन यह सच्चा इश्क़ नहीं था, यह तब ही दिशा को समझ लेना चाहिए था, जब शुभम ने उसे अपनी सारी हदें पार कर लेने के लिए प्रेरित किया, शादी का झाँसा देकर...

"उफ़्फ़..." गीता दी ने सुनकर सिर पकड़ लिया।

"शादी का झाँसा देकर... तो भई तुम झाँसे में क्यों आईं ?"

"शादी के लिए इंतज़ार किया होता न...! ये युवा पीढ़ी न, बिल्कुल धीरज नहीं... और फिर कुछ हादसा हो जाए तो सहनशील भी नहीं...।" उन्होंने मन ही मन सोचा। प्रत्यक्ष में वे दिशा को कुछ नहीं बोलीं, आगे सुनने लगीं कि अब जब दिशा भविष्य की बात करती है, तो शुभम को वह मैरिज मटेरियल नहीं लगती।

"खींचकर दो झापड़ देना चाहिए ऐसे लड़कों को जो लड़की को घुमाकर उसका फ़ायदा उठा लेते हैं, और शादी तो भई माँ-बाप की मर्ज़ी से ही करेंगे। ऐसे श्रवण कुमारों को वाकई सबक़ सिखाने की ज़रूरत है।" फाइनली, जो लड़की साथ में घूम फिरकर सो भी ले, वह भरोसे के लायक़ या मैरिज मटेरियल नहीं होती, यह सोच कर शुभम ने दिशा से ब्रेकअप कर लिया और उसे हताशा के गर्त में धकेल दिया, जहाँ वह एक अपराधबोध से भर गई थी। माँ, जो उस पर इतना भरोसा करती थी... एक सीधी-सादी, कम पढ़ी-लिखी, घेरलू औरत, जो पति की असामयिक मृत्यु के बाद जैसे-तैसे सिलाई के कारखाने में काम करती... उम्मीदों के साथ बेटी को पढ़ा रही थी। इस उम्मीद के साथ कि वह पढ़-लिखकर माँ का सहारा बनेगी। उस माँ के लिए दिशा अब गिल्ट में थी। प्ले में भी उसका मन नहीं लग रहा था... पढ़ाई में तो बिल्कुल नहीं। अब उसे लग रहा था कि मौत ही इन सबसे बचने का तरीक़ा है। लड़की इतनी संवेदनशील कि पिछले दिनों उसकी एक मित्र की दादी की मृत्यु के बाद उनका डेथ सर्टिफिकेट बनवाने में कई परेशानियाँ आईं थीं। शायद एक छोटी-सी ग़लती के कारण... तो बस उसने यह सोच लिया कि उसके मरने के बाद माँ को उसका डेथ सर्टिफिकेट बनवाने में दिक़्क़त न हो, तो यह काम भी स्वयं ही करना चाहती थी।

"हम्म्म..." गीता दी ने दिशा का हाथ अपनी हथेलियों में लिया और कहा, "तो मृत्यु के कारण में हम लिखेंगे शुभम... ठीक है? लेकिन फिर भी.. इस बारे में सोचने की कोई ख़ास वजह...?"

"जी वो... आईएम... मैं कंसीव कर चुकी हूँ..."

"ओह..." गीता दी के मुँह से निकला, तब तक दिशा बोली- "माँ तो बर्दाश्त नहीं कर पाएगी और माँ को कुछ हो गया तो यह मैं सहन नहीं कर पाऊँगी... इसलिए।" गीता दी ने अपनी कुर्सी से उठकर उसकी ओर जाकर उसे दोनों कंधों से पकड़ा और अपनी ओर घुमा लिया। दिशा का सिर उनके पेट पर टिका था और उनके कोमल लेकिन मज़बूत हाथों का स्नेहिल स्पर्श उसके सिर को सहला रहा था। रोकर दिशा हल्की हो चुकी थी... लेकिन डेथ सर्टिफिकेट तो बनवाना है।

"चलो.... तुम्हारा सारा काम हो जाएगा... बस मुझे तुम्हारा बर्थ सर्टिफिकेट चाहिए होगा...।"

"वह किसलिए...?"

"अरे भई, कुछ औपचारिकताएँ भी तो पूरी करनी होंगी न?"

"ठीक है दीदी, मैं कल ले आती हूँ...।" उसने कहा और कल मिलने का कहकर दोनों ने विदा ली।

घर पहुँचकर दिशा ने माँ से पूछा, "मम्मा, वह मेरा बर्थ सर्टिफिकेट चाहिए...।"

"क्यों... क्या हुआ?"

"कुछ ख़ास नहीं माँ... वे कुछ पेपर्स तैयार कर रहे हैं, उसमें ज़रूरत थी।"

माँ ने सहज भाव से लकड़ी की एक पुरानी अलमारी खोली, उसमें एक पतली-सी फाइल में तह किया हुआ दिशा का जन्म प्रमाण पत्र था। निकालते हुए उन्हें देखकर लगा मानों दिशा ही उनकी गोदी में हो.. उन्होंने उसे धीरे से सहलाया, उनकी आँखों की नमी भरी चमक मानों उस दिन को याद कर रही थी...

"क्या हुआ मम्मा...?" दिशा ने चकित होकर पूछा।

"कुछ नहीं बेटा, बस वह दिन याद आ गया जब तू मेरी गोदी में आई थी। पता है तेरे पापा और दादा-दादी इस दुनिया में आने से पहले ही तुझे मार देना चाहते थे...।"

"क्या...?" दिशा भौंचक्की थी।

"हाँ... उन्हें कुल दीपक, यानी बेटा, जो चाहिए था...।" दिशा को यह नई बात पता चली।

"फिर मम्मा...?"

"फिर क्या बेटा...?"

"मैं पढ़ी-लिखी तो नहीं थी, मगर बेवक़ूफ़ भी नहीं थी, और मैं ज़िद पर अड़ी हुई थी कि मैं अपनी बेटी को जन्म ज़रूर दूँगी। तेरे पापा ने उस वक़्त तो दादा-दादी का साथ दिया, लेकिन तेरे पैदा होने के बाद उनकी जैसे दुनिया ही बदल गई थी। तुझे ख़ूब प्यार करते थे। बस वही दिन याद आ गया कि कैसी मन्नतों से और ईश्वर के आशीर्वाद से तू मेरी ज़िंदगी में आई। यह तेरा जन्म प्रमाण पत्र नहीं बेटा, मेरी ज़िंदगी है क्योंकि तू ज़िंदगी बनकर ही मेरे घर आई थी।" कहते-कहते माँ की आँखों की नमी बाहर बह निकली।

"तेरे पापा के जाने के बाद अब तू ही है... बस वही दिन याद आ गया। वह दिन ऐसा होता है बेटा, लाख तकलीफ़ों के बावजूद, जिसे असहनीय कहते हैं, लेकिन वही माँ को सहनशील बनाती है और जब बेटी गोद में आ जाए, तो फिर तो ऐसा लगता है जैसे दुनिया में अब कोई दुख ही नहीं बचा।"

"मेरी बच्ची..." कहते-कहते माँ ने उसे गले से लगा लिया और दोनों की आँखों से आँसू बह निकले। माँ के हाथ से बर्थ सर्टिफिकेट लेते हुए, दिशा के हाथ काँप गए। इस माँ को वह तकलीफ़ देने जा रही थी...जो माँ मेरे जन्म की कल्पना से ही बरसों पहले पीछे पहुँच गई, वह मेरे नहीं रहने के बाद क्या करेगी...? कैसे जिएगी...? मेरी माँ ने मेरे लिए अपने परिवार वालों से लड़ाई लड़ी और मैं क्या इतनी कमज़ोर हो गई कि माँ को इस तरह मझधार में छोड़ दूँ...? वह मन ही मन तय कर चुकी थी... जो होगा, निपटूँगी... जैसे होगा लड़ूँगी... लेकिन माँ को कोई तकलीफ़ नहीं होने दूँगी। जब बर्थ सर्टिफिकेट को देखकर ही माँ इतनी भावुक हो रही है, उसके सामने मेरा डेथ सर्टिफिकेट तो कभी नहीं... कतई नहीं...! और वह मोबाइल उठाकर गीता दीदी को कॉल लगाने लगी।

000

लघुकथा

उपहार

मीरा जैन

"मोंटू ! यह बहुत ही अच्छी बात है कि जब से तुम समझदार हुए हो, होटल, पिकनिक आदि में न जाते हुए प्रतिवर्ष अपना जन्मदिन बाल गृह के बच्चों के साथ ही मानते हो। वे भी फल, मिठाई, चाकलेट आदि प्राप्त कर बेहद ख़ुश हो जाते हैं और तुम्हारे उत्साह व उल्लास में भी कई गुना वृद्धि हो जाती है। बेटा! दूसरों को ख़ुश कर ख़ुश होना यही श्रेष्ठ आचरण की निशानी है, इसे जीवन में कभी मत छोड़ना। आज तुमसे यह सब इसलिए कह रहा हूँ; क्योंकि हर वर्ष तो तुम उन्हें खिला कर बहुत ख़ुश होते हो, लेकिन आज बदले में जब उन बच्चों ने उपहार स्वरूप तुम्हें कुछ फल भेंट किये जिसे प्राप्त कर तुम्हारी ख़ुशी का कोई ठिकाना नहीं रहा। तुम उन्हें फल देते वक़्त जितने ख़ुश थे उससे कहीं अधिक लेते हुए, ऐसा क्यों हुआ ! क्या अपने घर में फलों की कमी है?"

"पापा ! आपका कहना बिल्कुल ठीक है, मैं उनसे फल लेकर बहुत ख़ुश हुआ; क्योंकि इन फलों में उनका प्यार छुपा था। मुख्य बात तो यह है पापा! हम ख़रीद कर उन बच्चों में फल वितरित करते हैं और उन्होंने यह जो फल दिए हैं यह उन किशोरवय बालकों के परिश्रम से ही उपजे हैं। ये उनके द्वारा लगाए गए पौधों के संरक्षण का ही कमाल है, जो आज वृक्ष बन गए हैं। वे मेरे दोस्त ही नहीं, पर्यावरण संरक्षक भी है इससे बड़ा उपहार जीवन में और क्या होगा।"

000

मीरा जैन
516, साँईनाथ कालोनी, सेठीनगर, उज्जैन, म.प्र. 456010
मोबाइल- 9425918116
ईमेल- jainmeera02@gmail.com

कथा-कहानी

जिउंदी रह पुत्त

हर्ष बाला शर्मा

डॉ. हर्ष बाला शर्मा
प्रोफ़ेसर, हिन्दी विभाग, इंद्रप्रस्थ कॉलेज फॉर वीमेन, 31 शामनाथ मार्ग, सिविल लाइंस, नई दिल्ली 110054
मोबाइल- 9868892661
ईमेल- ip.harshbala@gmail.com

सरदार अवतार सिंह आँखों पर हाथ रखे बैठे थे-मूढ़े पर उन्हे झूलते देख कोई सोच नहीं सकता था कि वे सो रहे हैं या कुछ सोच रहे हैं। उनकी लंबी सफेद दाढ़ी, सिर पर साफ़ा! एक अलग ही धज बनती हैं उनकी। श्वेत कपड़ों में उनको देखकर एक अजीब-सी सिहरन भी होती थी सिमरन को। सिमरन पिछले 15 बरस से तायाजी को देख रही है- श्वेत के अलावा कोई दूसरा रंग पहने हुए उन्हें नहीं देखा और उनके चेहरे पर आता-जाता कोई रंग भी उसे याद नहीं। बस खाना खाने के बाद एक बार सिर पर हाथ रखकर 'जिउंदी रह पुत्त' ही दिनभर में सुनाई देता था। सिमरन का कितना मन करता कि तायाजी कुछ तो कहें पर तायाजी तो जैसे दुनिया ही बिसरा चुके थे। सिमरन के पिताजी आर्मी में चीफ इंजीनियर थे। टेंकों की देखरेख से लेकर उनके चलने, ठीक रखने की ज़िम्मेदारी उनकी यूनिट की थी तो युद्ध क्षेत्र में भी उनकी ज़रूरत हमेशा ही होती थी। घर में उनका आना तो बस तीज त्योहार पर ही होता था- वह भी भूले भटके! पाँच बेटियों और दो बेटों के इस परिवार को बाँधकर चलाने की जितनी भूमिका माँ की थी, उतनी ही भूमिका तायाजी के अनुशासन की थी। किसी ने कभी उनको ऊँचा बोलते हुए नहीं देखा पर यदि उन्होंने यह तय कर लिया कि सुबह पाँच बजे के बाद बिस्तर पर लेटना मना है, तो 6 बजे सारे बच्चे सूरज को अर्घ देते हुए ही नज़र आते और वह भी बेनागा! और बदले में तायाजी से दो चीज़ें उमर भर मिलती रहीं- पहला आशीर्वाद 'जिऊनदे रहो! रब लम्बियाँ उमरा दें' और दूसरा 'एक-एक आना'।

सन् 1950 से शुरू हुआ यह सिलसिला तायाजी के पूरे होने तक चला। सिमरन उनके सबसे नज़दीक थी! माँ अक्सर बीमार रहती तो रसोई का सुबह का लगभग सारा काम उसके ही हिस्से आता! तायाजी को दो फुल्के और चटनी बनाकर देना उसका सबसे बड़ा सुख था! पता नहीं क्यों और कैसे पर तायाजी के भीतर का तूफ़ान सिमरन को सुनाई और दिखाई देता था। उसका दिल चाहता कि दरिया बनकर ये तूफ़ान एक बार बह जाए किसी तरह! उसका मन करता कि वह तायाजी से पूछे 'तुहाडे नाल की होया सी तायाजी!' पर फिर वह सहम जाती 'पता नईं तायाजी दसना चाँदे वी की नईं?' पर इस बार वह पिताजी से पूछकर ही रहेगी।

अबकी दीवाली पर 'पिताजी' दो दिन पहले ही आ गए! सिमरन को तो जैसे मुँह माँगी मुराद ही मिल गई। मज़बूत क़द-काठी के गोरे-चिट्टे, लेह में पोस्टेड और किसी भी ऐब से दूर रहने वाले पिताजी इन बच्चों की साँझी छत थे! तायाजी की साँझी ज़मीन से पिताजी की साँझी छत के बीच ये बच्चे बरस भर तो माँ का आँचल पकड़े डोलते रहते पर पिताजी के आते ही बच्चे उनके

आस-पास मँडराने लगते। सरल स्वभाव के पिताजी ढेर सारे सेब और जलेबी लिए हुए आते और साल में दीवाली के आसपास बच्चों की मौज आ जाती! अक्कड़-बक्कड़, छुपन-छुपाई, ढेला-फेंक के बीच पिताजी की नज़र ने गुमसुम सी बैठी सिमरन की निगाहें पढ़ लीं। सबको इधर-उधर करके पिताजी सिमरन के पास आकर बैठ गए।

'की गल पुत्त! ऐनी चुप्प ताँ तू कदी वी नईं दिखदी'

'पापाजी, इक गल पुछणी सी, दस्सोंगे?'

'पुत्त मैं कदी मना कित्ता कुछ वी?'

'मैं तायाजी बारे पुछना चहदि सी'

एक पल को सन्नाटा छा गया। पिताजी सिमरन को कुछ भी मना नहीं कर सकते थे। रुई के फाए जैसा उसका मन बर्दाश्त कर पाएगा उस रूह की तकलीफ़ को। शायद यही सोचकर पिताजी ख़ुद को तैयार कर रहे थे। वे जानते थे यह पूछने के लिए ख़ुद को कितने महीनों से तैयार कर रही होगी।

'क्या जानना चाहती है बेटा?'- बहुत दिनों बाद पिताजी हिन्दी में बोल रहे थे!

'सब कुछ।' सिमरन अपनी नन्हीं हथेलियों में सूरज उतार लेना चाहती थी- बिना जाने कि सूरज के बारे में सोचना जितना आसान होता है, उतना ही कठिन है उसे सँभालना! वह पास भी आ जाए तो सब कुछ जला देता है। और ये पंद्रह बरस की बच्ची उसी को पाने की ज़िद कर बैठी है। पिताजी एक पल को कहीं खो गए...

1947 का जून महीना। 15 तारीख को भोंपू बजाता हुआ ठेला कैंप के पास से गुज़र रहा था- पेशावर और लाहौर से होर ट्रेन आ रही हैं। जाओ, वेखो जो कोई अपना मिल जाए!'

दिल्ली! दिल्ली के कैंप! पहाड़गंज! नई दिल्ली कैंप, गुरु तेग बहादुर नगर, गुजरांवाला टाउन, मुल्तानी ढाँढा! जैसी जगहें अपने ही देश के दिल में उन्हें शरणार्थी बनाए हुई थीं! हर तरफ़ आँसू, चीख-पुकार, दवाइयों की कमी। अकेले रह जाने की पीड़ा पाँव पसारे हुई थी। दिल्ली का जो नाम भी नहीं जानते थे- धक्के खाते, जान बचाते, अपने ही देश के किसी कोने से क़त्लेआम के बीच जान बचाते 'खोए बच्चे' से यहाँ आ पहुँचे थे। 'हाय वीरा', 'ए वी लिखया सी करमाँ च', 'भागांवालिए! रब दा करम, ज़िंदा ते आ गए' जैसे उद्गारों के बीच लोग रोज़मर्रा की चीज़ों को निभाने लगे थे। अपनों को खोने का दर्द तो ज़िंदगी भर सालना ही था। इस बीच लाहौर, पेशावर से ट्रेनें पहुँचती तो लोग अपनों को ढूँढ़ने के लिए कभी निज़ामुद्दीन स्टेशन तो कभी नई दिल्ली स्टेशन पर नज़र आते। किसी की आँखों में मिलने के आँसू होते तो कुछ अपनी पहचानी लाशों को जलाने के लिए ले जाते। कितने लावारिस मर गए और कितने मिले, इसकी गिनती की फुरसत किसे थी। भूतिया ट्रेनों में लाशे ही लाशें थीं। कहीं कोई दूर कराह की आवाज़ सुन लोग दौड़ पड़ते-क्या पता कोई ज़िंदा कराह किसी अपने की हो।

ऐसी ही एक ज़िंदा कराह की पहचान ने मनजीत को अपने बड़े भाई से मिला दिया। मनजीत ख़ुद भी फौज में था तो ट्रेनों पर निगाह रखना मुश्किल भी नहीं था, पेशावर से दिल्ली आने वाली ट्रेनें थी ही कितनी! और आबादी? 'गिने चुने बंदे ही रह गए सी पुत्तर जी' पापाजी की आवाज़ भीग गई थी।

'तुसी पहचान लित्ता ताया जी नू! ऐने चिर बाद? किस तरह?'

'पता नहीं पुत्तर किस तरह? पर जेड़ी तस्वीर मन इच बनी होई सी, हूबहू ओई मेरे सामने आ गई! दिल नाल कोई दिल दी राह होंदी ही है मेरे ख़्याल।'

मनजीत अपने लहूलुहान भाई को लेकर घर आ गया। पर भाई घर तो आ गया, आत्मा कहाँ छोड़ आया।

'पुत्तर वीरजी दा ते शरीर ही रह गया...आत्मा तो ओथे पेशावर ही छड आए।'

'की होया सी पापाजी ओथे...

पेशावर जाने से पहले चलते हैं थोड़ा पीछे। थोड़ा...बस थोड़ा सा।

देहरादून का चुक्कू मोहल्ला! दो लड़के- एक दो साल का और दूसरा 15 साल का! दोनों अपने माता-पिता को एक्सीडेंट में खो चुके थे। चाचा-चाची ही उन्हें पालने वाले थे। घर-मकान किसके नाम थे- क्या ही फ़र्क़ पड़ता था, जब दोनों के सिर से माँ-पिता का साया उठ गया था। छोटा बच्चा तो इतना छोटा था कि माता-पिता का चेहरा सोचते ही चाचा-चाची का चेहरा फिट हो जाता है पर 15 बरस के बच्चे को दूसरे ही दिन से अपने अनाथ होने की बात समझ आ गई थी। 2 बरस के छोटे से बच्चे की ज़िम्मेदारी उसने ख़ुद पर ही ले ली थी। 15 दिन बीतते-बीतते घर में आया दूध, ब्रेड, अंडा कम पड़ने लगे थे। बड़े लड़के ने दूध-अंडा उसी दिन से छोड़ दिया। पर साल बीतते-बीतते रोज़ मर जाने की दुहाइयों के बीच उसे खाना छोड़ देने की भी आदत होने लगी थी। सहस्र धारा के पास जाकर उसे घंटों तक देखते रहने वाला बड़ा भाई अब चुप्पा हो गया था। कभी-कभी वहीं धारा के पास तेज़ गिरते पानी को देखकर उसके मुँह से बस चीख-सी निकल जाती।

'माँ! कित्थे चली गई तू। जीण जोगिए सानू वी नाल ले जाँदी।'

'पर कौन किसे साथ ले जाता है पुत्तर!' बड़ा घर लौटा तो छोटा बिलखियाँ मार रहा था। दौड़ के उसने छोटे को सीने से लगा लिया। चाची ने ताना मारा- दोनों मर जाते तो हमारा भी पिंड छूटता। इस बार 'बड़ा' बर्दाश्त नहीं कर पाया। दोनों हाथों से अपने छोटे का गला उसने ख़ुद ही दबा दिया।

'ले चाची, हुण ए ते मर गया ते मैं वी चला!'

बड़ा अपनी समझ से छोटे को मारकर अपना तर्पण करने चला था। सड़क के किनारे घंटों रोया या महीनों- किसी को नहीं पता! पर छोटा किसी चमत्कार की तरह बच गया था। छोटे को तो याद नहीं और बड़ा था नहीं पर कुछ लोगों को 'रब आपे ही रखदा है पुत्तजी' पर उसे इतना याद है कि जब वो 13 बरस का था और मकान के पीछे वाले नल के आगे बर्तनों का ढेर साफ कर रहा था, तब डाकिए ने एक चिट्ठी फेंकी थी। चाचा हैरान था कि पेशावर से किसकी चिट्ठी आ सकती है? पर छोटे के कान खड़े हो गए। दो लाइनों की चिट्ठी भर थी।

चाचा,

पैरी पैणा,

'छोटा मर गया ते मैं किस तरह पता नहीं, पर पिशोर आ गया। बस ऐहई कैणा सी कि मैं कदी वी लौटना नईं। मेरे मा-पियो दा मकान च नाम होय तां वी मैं मंगन नई आना चाचा। तू रोटी खवाई है ते मैं हक मंगन नहीं आवांगा।'

तेरा अवतार

चाचा चिट्ठी को पकड़े-पकड़े आँसू बहाता रहा पर चाची को कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा। चाची अपने उसी सुर में बोली- 'वे कित्थे मर गया छोटा। साडी छाती ते बैठा ते होया है।'

'चुप कर मरजाणी।'

'तू चुप कर। ज़्यादा प्यार आया है ते नाल ही चला जा ते एनू वी ले जा पेशावर।' दनदनाती हुई चाची अंदर चली गई! चाचा वहीं खड़ा था। छोटा यानी मनजीत आज पहली बार रोकर चाचा से बोल उठा- 'चाचा मैनू जाण दे। भागां नाल आज पहली बारी वीरजी दा पता चल्या है!'

चाचा ने तीखी निगाह से देखा 'केड़ा वीर ओए। जिसने तैनू मार दित्ता सी?'

'ओई वीर। चाचा, तू जानदा है ना। अपनी माँ मारेसी, मारण किसी नू न देसी। मैनू जाण दे।' चाचा उसे रोक नहीं सका।

मनजीत जब देहरादून से निकला तो बरेली आकर रुका। बरेली के एक घर में उसे आश्रय मिला और फिर पढ़ाई पूरी करते-करते आर्यसमाजी पद्धति से उसका विवाह 'विद्या' से हो गया! विद्या ने घर सँभाला और मनजीत देश सँभालने निकल पड़ा। पर वीर जी से मिलने की हूक उसके भीतर बनी रही। और फिर उस दिन मनजीत वीर जी को घर ले आया। तिमारपुर के उस घर में ताया जी खोए-खोए बैठे रहते।

कई दिनों तक बीमारी में बड़बड़ाते ताया जी के मुँह से कई उद्गार मनजीत ने सुने थे- 'मैं नहीं मार सकदा अपने हाथों पुत्तर' तो कभी कहते 'जद वीर नू मार सकदा तां फिर तवानू वी' या फिर 'रब की कराना है मेरे हाथों' जैसे न जाने कितने ही टूटे फूटे वाक्य उनकी ज़बान पर आते पर कुछ भी स्पष्ट रूप से समझ नहीं आता। ताया जी को मिर्गी के दौरे पड़ने लगे थे। थोड़ा ठीक होने पर वीर जी ने बाहर मूढ़े पर बैठना शुरू कर दिया था। उसी मूढ़े पर जिस पर सिमरन उन्हें देखा करती थी। बैठे-बैठे अचानक चिहुँक उठते 'वे भागां भरी तू वी चल दित्ती!' कहीं कोई दिल दिमाग़ का हिस्सा था जो उन्होंने खो दिया था और अब जुड़ने को तैयार नहीं था।

एक दिन मनजीत उनकी सेवा कर रहा था कि अचानक अजीब सी माँग कर बैठे- 'छोटे! एक वड्डा चाकू ला सकदा है, जेडा बंदे नू चीर के रख दे?' मनजीत उनकी बात की अवहेलना क्या करता! बड़ा सा खंजर ले आया था।

'खंजर देखते ही सिमरन, तू सोच वी नईं सकदी पुत्तर! किस तरह बुक्का फाड़ रोए सी वीर जी ते सारे सच आपे ही बाहर आ गए!'

पिताजी ने रो-रोकर हलकान होते हुए जब ये क़िस्सा सुनाया तो सिमरन ही नहीं सारे भाई-बहन एक साथ स्तब्ध रह गए! विभाजन की त्रासदी ने जब पूरे देश को छुआ तो पेशावर अछूता कैसे रहता। उन दिनों ताया जी का बड़ा बेटा और बड़ी बेटी अपनी परीक्षाओं के लिए दूसरे शहर गए हुए थे- पड़ोसी राजाराम की बेटी के भी पेपर थे तो राजाराम ही तीनों बच्चों को लेकर चला गया था! माहौल गरमाने लगा था और धीरे-धीरे उस आबादी के कई लोग शहर छोड़कर जाने लगे थे। ये दो परिवार भी बस परीक्षाओं के ख़त्म होने का इंतज़ार कर रहे थे, दोनों परिवार ताया जी के साथ छोड़कर राजाराम तीन बच्चों को पेपर दिलाने दूसरे शहर पहुँच गए थे। इधर दो ही दिन बीतें होंगे कि असलम ने सरदार अवतार सिंह को ख़बर दी कि सरदार जी आप यहाँ से निकल जाओ, कभी भी आपके घर पर हमला हो सकता है! सरदार अवतार सिंह दो बेटियों और बीवी के साथ राजाराम की पत्नी के लिए भी ज़िम्मेदार थे, ऐसे कैसे कहीं चले जाते! पर उसी रात ...

'पुत्तर जी, हुण होर नहीं कह सकदा। ओई होया जेड़ा सारया नाल होया सी।' पापा जी ने सिसकते हुए फिर कहना शुरू किया- 'रात दे वेले च राजाराम दे घर च आग लगा दित्ती ओना ने! वीर जी ओथे नस के गए राजाराम दी पत्नी नू बचान लई ते ऐथे तीन मुंडे घर विच घुस गए। जद वीर जी लौटे तद तक निक्की कुड़ी दी अस्मत लूट चुकी सी!' सिमरन रो रही थी। सारे बच्चे रोने लगे थे। किसी के पास आगे सुनने की हिम्मत नहीं बची थी। पापा जी भी कुछ कहने की हिम्मत नहीं जुटा पा रहे थे।

तभी ताया जी की आवाज़ सुनाई दी 'पुत्तर जी की कहना सुनना है हुण। त्वाडी ताई ने बंदूक मेरे हाथ च फड़ाई और कहन लगी कि सारयाँ नू मार दो। ओ मुंडे कह गए हैं कि दोनों कुड़ियाँ नू लै जानगे! पुत्तर असी बोहोत कोशिश कित्ती कि बच सकें। पर कोई नहीं बच सका। मैं अपने हाथों मार नहीं सकया किसी नू। पर ट्रेन च चड़दे होय असी सारयाँ ने ज़हर दी पुड़ियाँ रख लित्तियाँ सी! मैं अपने हाथों अपनी कुड़ियाँ नू ज़हर पकड़ाया सी।' ताया जी को इतना बोलते देख सब हैरान थे।

'ओ मुंडे अगले दिन फेर आए। 10 होर मुंडयाँ नाल। मैं अपने हत्था नाल खंजर मार के दो नू हलकान कित्ता पर किनियाँ नाल लड़दा पुत्तर!'

'राजाराम का क्या हुआ पापा जी!' सिमरन ने हौले से पूछा! 'और उन बच्चों का!'

'ट्रेन च वी कितने गुंडे बदमाशां ने बच्चियाँ-औरतां नू बर्बाद कित्ता! वीर जी दी बच्चियाँ, पड़ोसन, परजाई ने ट्रेन च ही ज़हर खाया ओनादे सामने!' ताया जी को जैसे फिर दौरा-सा पड़ गया 'न पुत्त, मैं बचा ते लाया अपनी बच्चियाँ नू। वेख- वेख ऐ खड़ी ते हैं सामने। पुत्तर चिंता न कर, खंजर है मेरे कोल। सारयाँ नू मार देना मैं जे कोई हाथ लाएगा तेनु।'

सिमरन की आँख से आँसू बह रहे थे पर कुछ कहने की हिम्मत नहीं बची थी। बस वह उठी और ताया जी से बोल उठी 'चलो पापा जी रोटी ठंडी हो रही है।' मनजीत पापा जी की आँखों में उसके ये बोल बस गए। वे जानते थे कि सिमरन आज ताया जी को उनकी बेटी लौटा रही है। हो सकता है, अब उनका वीर अपने में लौट आए। शायद हाँ। अब ऐसा ही हो। उम्मीद उनकी आँखों में ठहर गई थी। ये उम्मीद ही तो वह सूत्र है जो हम सब को बचाए चला जाता है। शायद इसी उम्मीद में 'जिऊनदे रहँगे ओनादे बच्चे, सारयाँ दे पुत्त, सारियाँ कुड़ियाँ।'

000

कथा-कहानी

शब्दों के पार

राजनारायण बोहरे

राजनारायण बोहरे
89, ओल्ड हाउसिंग बोर्ड कोलोनी, बस स्टैंड के पास, दतिया (म.प्र.)- 475661
मोबाइल- 9425726697, 9826689939
ईमेल- raj.bohare@gmail.com

जसोदा का मन बहुत बेचैन हो रहा था। तुलसी के चौरे के पास बैठी जसोदा के हाथों में जप-माला तो थी, पर उँगलियाँ जैसे जड़ हो गई थीं। होंठों पर नाम तारी था- "राधे... राधे..." पर मन किसी और ही उलझन में डूबा हुआ था। चारपाई पर उसकी नातिन- गोल-मटोल चेहरा, माथे पर पसीने की बूँदें, स्कूल की थकान से गहरी नींद में सोई हुई धीरे-धीरे साँस ले रही थी। उसे सोते हुए देख जसोदा का मन और भी बेचैन हो उठता।

कुछ दिन पहले ही वह स्कूल से लौटकर बोली थी- "दादी..." उसकी आवाज़ काँप रही थी, "क्लास के दो लड़के मुझे छेड़ते हैं।" उस दिन जसोदा के हाथ से लोटा गिरते-गिरते बचा था।

"क्या कह रही है तू?" उसने चौंककर पूछा था।

नातिन की आँखों में डर था। उसने धीमे से कहा- "वे हँसते हैं... रास्ता रोक लेते हैं... और अजीब बातें करते हैं।"

जसोदा देर तक उसे देखती रह गई थी। नौ साल की बच्ची... और उसे कोई छेड़े? उसके भीतर सवालों का तूफ़ान उठ गया था। उसने दूसरे दिन नातिन को प्यार से पास बैठाया। सामने उसी की क्लास का ग्रुप फ़ोटो रख दिया।

"देख बिटिया... इनमें से कौन हैं वे?" जसोदा ने धीरे से पूछा।

नातिन ने काँपती उँगली से दो चेहरों पर इशारा किया। जसोदा ने ग़ौर से देखा। दो दुबले-पतले लड़के... उम्र मुश्किल से ग्यारह-बारह साल। जसोदा की भौंहें सिकुड़ गईं।

"क्या ये सचमुच छेड़ते हैं?" उसने मन ही मन सोचा। उसकी नज़र फिर सोती हुई नातिन पर पड़ी। वह सचमुच अपनी उम्र से कुछ बड़ी लगती थी। लंबी, गोरी, चेहरे पर अजीब सी परिपक्वता। जसोदा का मन अचानक अतीत में डूब गया।

अतीत की परछाइयाँ उसकी यादों पर छाने लगीं, उसे अपना ब्याह याद आया। वह सोलह बरस की थी... और उसके पति कृपानंदन अठारह के। विदाई के बाद जब वह ससुराल पहुँची थी, तो सास ने उसे अपने पास ही सुलाया था। कृपानंदन दूर मेहमानों के साथ सोते थे। आठ दिन तक बस वही क्रम चला। न कोई संकोच टूटा... न कोई निकटता बनी। फिर वह मायके चली

गई। दो साल बाद जब गौना हुआ, तब वह किशोरी से युवती बन चुकी थी। उस दिन कृपानंदन ने उसे जिस नज़र से देखा था, वह नज़र आज भी जसोदा के दिल में ज़िंदा थी। वह नज़र वैसी थी... जैसी नज़र में कोई युवक किसी युवती को देखता है।

उनके दांपत्य के शुरुआती दिन मीठे थे। कृपानंदन हँसमुख थे। रात को देर तक बातें करते।कभी उसके बालों से खेलते, कभी हँसते हुए कहते, "जसोदा, तुम हँसती हो तो लगता है जैसे मंदिर में घंटियों बज उठीं।" जसोदा शरमा जाती। फिर नंदकिशोर पैदा हुआ। और उसके कुछ ही महीनों बाद एक रात सब कुछ बदल गया। कृपानंदन के पिता मंदिर के महंत अचानक हार्ट अटैक से चल बसे। मंदिर की पूरी ज़िम्मेदारी कृपानंदन पर आ गई। मंदिर की दीवारें घेर चुकी थीं कृपानंदन को!

राधावल्लभ मंदिर की सेवा साधारण नहीं थी। कठोर नियम... कड़ी पवित्रता... छुआछूत की दीवारें। एक बार स्नान करके मंदिर में प्रवेश किया तो बाहर की कोई चीज़ छूना वर्जित। अलग कुआँ... अलग कपड़े... अलग रसोई। जब कृपानंदन प्रसाद देते, तो छह इंच ऊपर से गिराते। जसोदा को शुरू में यह सब बड़ा अजीब लगता। तब धीरे-धीरे उसने देखा कृपानंदन बदलते जा रहे हैं। सुबह पाँच बजे उठते। लालजी को जगाते, मंजन कराते, दूध का भोग लगाते। फिर श्रृंगार, झाँकी, भजन...। दिनभर पूजा-पाठ में डूबे रहते। रात को आरती के बाद लौटते तो थके हुए।

जसोदा को धीरे-धीरे लगा उसका पति कहीं दूर चला गया है। वह अब घर में तो है... पर उसका मन मंदिर में रह गया है।

कभी-कभी वह देखती कृपानंदन सखियों के गीत गा रहे हैं। उनकी भाषा भी बदल गई थी। एक दिन उसने हिम्मत करके पूछा था- "तुम अब मुझसे बात क्यों नहीं करते?"

कृपानंदन ने इतना कहा- "भोजन लगा दो।" बस। जसोदा का दिल जैसे धीरे-धीरे सूखता गया। पच्चीस साल की दूरी, समय नदी की तरह बहता रहा। नंदकिशोर बड़ा हुआ। जसोदा ही घर चलाती रही-सब्ज़ी, राशन, कपड़े, पढ़ाई। कृपानंदन

बस मंदिर में डूबे रहे। पच्चीस साल ऐसे ही बीत गए। एक दिन जसोदा ने कहा- " नंदकिशोर के लिए लड़की देखो।"

कृपानंदन ने थकान में डूब कर कहा- "मेरे पास समय कहाँ है? तुम ही देख लो।" जसोदा ने सिर पकड़ लिया।

"हाय रे ऐसी पूजा। ... अब ये रतन बंज भी लुगाइयाँ करेंगी?" फिर किसी तरह नंदकिशोर का विवाह हुआ। एक साल बाद नातिन पैदा हुई। और फिर नंदकिशोर रोज़गार के सिलसिले में वृंदावन चला गया। अब घर में बस जसोदा, उसकी बहू और

नातिन थीं। और कृपानंदन...? वह तो जैसे किसी और लोक के आदमी हो गए थे।

***

अगले दिन बहू के साथ जसोदा स्कूल पहुँची। प्रिंसिपल ने दोनों लड़कों को बुलाया। वे काँपते हुए अंदर आए। सिर झुके हुए। प्रिंसिपल ने सख़्त आवाज़ में पूछा- "तुम लोग इसे क्यों परेशान करते हो?" दोनों चुप। उनके माता-पिता भी बुला लिये गए। कमरे में तनाव भर गया। प्रिंसिपल ने गहरी साँस ली, "क्या करें? इन्हें स्कूल से निकाल दें... या बच्ची को?"

तीनों बच्चे एक साथ बोले- "हम स्कूल नहीं छोड़ेंगे।" कमरे में थोड़ी देर सन्नाटा रहा, फिर फ़ैसला हुआ तीनों की क्लास बदल दी जाएगी।

जब सब शांत हो गए तो प्रिंसिपल ने गंभीर स्वर में कहा- "असल समस्या घर की है।"

सबने चौंककर उनकी ओर देखा, "स्कूल में मोबाइल नहीं है... लेकिन घर में बच्चे बिना रोकटोक सब देख लेते हैं। बिना किड-लॉक के फ़ोन... इंटरनेट... और फिर ग्यारह साल का बच्चा ख़ुद को इक्कीस साल का समझने लगता है।"

जसोदा के चेहरे पर चिंता की रेखाएँ गहरी हो गईं। घर लौटते-लौटते दो बज गए।

ढाई बजे कृपानंदन मंदिर से लौटे। भीतर आते ही बोले- "भोजन लगा दो।" जसोदा ने थाली लगाई। कृपानंदन जैसे ही खाने बैठे, उसने धीमे-धीमे सारी बात सुना दी। कृपानंदन का चेहरा तमतमा उठा। उनकी आँखें लाल हो गई।

"क्या नाम है उन लड़कों का?" उन्होंने गरजते हुए पूछा, "किसी चेले से कहकर अभी ठुकवा दूँगा।"

जसोदा घबरा गई। तुरंत कहा- "बच्ची का मामला है... परायों से छेड़छाड़ की बात कैसे कहें?"

कृपानंदन का ग़ुस्सा धीरे-धीरे शांत हो गया। उन्होंने चुपचाप खाना ख़त्म किया। फिर उठकर हाथ धोए। कुछ कहना चाहा... पर शब्द जैसे गले में अटक गए। जसोदा भी चुप रही। दोनों के बीच वर्षों की ख़ामोशी बैठी रही। पर उस दिन जसोदा को लगा- कृपानंदन की आँखों में पहली बार कोई चिंता झलक रही है। शायद... दादा होने की चिंता। शायद... पिता होने की भी। पर शब्द फिर भी नहीं निकले।

वे दोनों एक ही आँगन में बैठे थे। एक ही चिंता में डूबे थे। पर उनके बीच ख़ामोशी की एक लंबी दीवार खड़ी थी- शब्दों के पार।

000

लेखकों से अनुरोध

सभी सम्माननीय लेखकों से संपादक मंडल का विनम्र अनुरोध है कि पत्रिका में प्रकाशन हेतु केवल अपनी मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। वह रचनाएँ जो सोशल मीडिया के किसी मंच जैसे फ़ेसबुक, व्हाट्सएप आदि पर प्रकाशित हो चुकी हैं, उन्हें पत्रिका में प्रकाशन हेतु नहीं भेजें। इस प्रकार की रचनाओं को हम प्रकाशित नहीं करेंगे। साथ ही यह भी देखा गया है कि कुछ रचनाकार अपनी पूर्व में अन्य किसी पत्रिका में प्रकाशित रचनाएँ भी विभोम-स्वर में प्रकाशन के लिए भेज रहे हैं, इस प्रकार की रचनाएँ न भेजें। अपनी मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ ही पत्रिका में प्रकाशन के लिए भेजें। आपका सहयोग हमें पत्रिका को और बेहतर बनाने में मदद करेगा, धन्यवाद।

-सादर संपादक मंडल

ज्वालामुखी

निवेदिता श्रीवास्तव 'निवी'

दुर्गापूजा की छुट्टियों में घर आई अनुभा रोज़ ही अपनी किसी न किसी सहेली अथवा पुराने स्कूल के शिक्षकों से मिलने निकल जाती थी। अक्सर ही वह अपनी माँ विभा को भी ले जाना चाहती थी, परन्तु वह कभी किसी काम का तो कभी किसी अतिथि के आने का बहाना बना कर टाल जाती। उसको लग तो रहा था कि आजकल माँ कुछ अनमनी-सी हैं, परन्तु कोई कारण समझ नहीं आने पर वह उसको अपने मन का भ्रम समझ अपने कार्यक्रमों में व्यस्त हो जाती थी।

एक शाम घर जल्दी वापस आने पर अनुभा ने देखा कि उसकी माँ विभा, तकिए में मुँह छुपा कर अपनी सिसकियों को दबाने का प्रयास कर रही थी... पर उनके वेग से हिलता हुआ शरीर असलियत की चुगली कर दे रहा था। अनुभा से रहा नहीं गया और उसने माँ के कंधों पर हाथ रख दिया, "माँ! क्या हुआ ... आप इस तरह क्यों रो रही हैं?"

विभा ख़ुद को समेटते हुए उठने का प्रयास करते-करते जैसे टूटे हुए बाँध सी बिखर गई, "क्या करूँ बिट्टो ... मैं क्या करूँ? लाख कोशिशों के बाद भी मैं उस लम्हे से निकल नहीं पा रही हूँ।"

अनुभा एकदम चौंक गई और कुछ भी नहीं समझ पाने की स्तब्ध मन:स्थिति में, उनका हाथ थामे बैठी बस सांत्वना देती, पीठ ही सहलाती चली गई। मरुस्थल की वीरानी समेटे-सा खारापन उन दोनों माँ-बेटी की आँखों से बहता हुआ न जाने कहाँ जज़्ब होता चला गया। बहुत प्रयास के बाद भी अनुभा कुछ समझ ही नहीं पा रही थी कि उसके कुछ महीनों के हॉस्टल प्रवास में ऐसा क्या घट गया, जिसने उसकी इतनी दृढ़मना माँ को इस बुरी तरह तोड़ दिया है कि वह टूटे हुए काँच की किर्चों जैसी बिखर गई हैं।

उसने ख़ुद को सँभालते हुए माँ का मुँह धुलवाया और उनको शान्त करती वहीं पास ही बैठ गई, "माँ! सबसे पहले तो आप शांत होइए और धैर्य रखिए कि आप अकेली नहीं हैं। आपने अपने बच्चों को इतना सशक्त बनाया है कि वह चीज़ों को समझ और सुलझा सकें। आप स्वयं को सँभालिए और सारी बातें, बिना किसी झिझक के एकदम स्पष्ट बताइये कि समस्या क्या है... ऐसा क्या अघटनीय घट गया है जो आपकी आँखों में इतने आँसू दे गया।"

विभा के मन में जैसे विचारों के बवंडर उठ रहे थे, मानों वह सोच रही हो कि क्या बताये और कैसे बताये! कभी अपना रिश्ता सामने खड़ा हो संकोच की बाड़ खड़ी कर देता तो कभी सामाजिकता चोटिल क़दमों को और भी घाव मिलने की आशंका दे जाती। ख़ुद की बेबसी का अनुभव करती उसने कुछ नहीं के भाव में सिर हिला दिया।

शायद बेबसी की भाषा ख़ामोशी के वीरान सन्नाटे में होते हुए भी बहुत कुछ अनकहा भी कह जाती है। अनुभा ने उसके हाथों को पकड़ कर अपने विश्वास और सामर्थ्य की ऊर्जा सी उसमें भरी, "नहीं माँ! ऐसे तो नहीं चलेगा, आपको मुझको तो बताना ही पड़ेगा। आइए बातें करते हैं और उससे ही आपकी इस पीड़ा का कुछ हल निकालते हैं।"

विभा जैसे दुगने वेग से फफक पड़ी, "तू ही बता कि अब तुझको या किसी को भी बता के भी

निवेदिता श्रीवास्तव 'निवी'
4/56, विवेक खण्ड, गोमती नगर,
लखनऊ, उप्र, 226010
मोबाइल- 8840789318
ईमेल- nivedita.nivedita.srivastava@gmail.com

क्या होगा... और क्यों ही बताऊँ... क्या कर लेगा कोई भी... क्या कर लेगी तू भी ये जान कर कि मेरा दम घुटता है इस घर में... मैं यहाँ एक पल भी नहीं रहना चाहती हूँ... पर... पर मैं अब उम्र के इस मोड़ पर जाऊँ कहाँ... सिर्फ़ अपने लिए कोई अलग-सा स्थान भी तो नहीं बनाया कभी। अब तेरे नाना-नानी भी तो नहीं रहे कि उनके पास ही चली जाऊँ।"

कुछ पल उखड़ती साँसों को, अपनी चुप्पी से थामने का प्रयास करती हुई विभा फिर से सिसक पड़ी, "जब मैं भी अपने लिए कुछ कर सकती थी या इस समाज में स्वयं को स्थापित कर सकती थी, तब तो मैं इस घर को सँभालती रही और अब तेरे पापा के दिए हुए धोखे को सँभाल रही हूँ।" फिर तो मानों अचानक आए सैलाब में उसके सब्र का बाँध टूट गया और वह पिछले महीनों की सारी बातें बताती चली गई, साथ में ही अपने फ़ोन में सुरक्षित, उसके पापा अरुण की उस दूसरी स्त्री के साथ की सारी फ़ोटो और उनके फ़ोन की चैट के स्क्रीनशॉट भी दिखाने लगी।

यह सब सुन कर अनुभा एकदम स्तब्ध रह गई। स्वयं को मज़बूत करती उसने माँ को समेट लिया, "माँ ! सबसे पहली बात यह है कि आप स्वयं में ही बहुत सशक्त हैं। आप न तो मजबूर हो सकती हैं और न ही कमज़ोर। आप में तो इतनी सामर्थ्य है कि एक ढाई-तीन किलो के वज़न को स्नेह से अपने गर्भ में वहन करती रहीं और उस अबोध शिशु को अपने स्नेह और संस्कारों से इतना सामर्थ्यवान कर दिया है कि वह अपना आत्मसम्मान बनाये रखने के साथ ही दूसरों का सहारा बन सके।"

वह कुछ सोचती सी मानों एक पल में ही किसी निश्चय पर पहुँच गई, "सबसे पहले आप ख़ुद को बेचारी और बेसहारा समझना और मानना बिलकुल बन्द कीजिये... और कमज़ोर तो आप पड़ ही नहीं सकती हैं। आप इस घर में नहीं रहना चाहती हैं तो आप यहाँ बिल्कुल नहीं रहेंगी। क्या हुआ अगर नाना जी या नानी माँ नहीं रहे, आपकी बेटी... आपकी प्रतिछाया मैं तो हूँ न आपके साथ... आपके पास हरदम।"

अनुभा ने अपनी हथेलियों में माँ की आँखों से बहने वाले आँसुओं को चुन लिया, "आप अभी मेरे साथ चलेंगी और आपको आपके पैरों पर खड़ा करने की ज़िम्मेदारी और वादा मेरा है... पर माँ ! मुझे एक बार पापा से भी सवाल करने ही हैं, वे अपने किये से मुक्त नहीं हो सकते हैं... बस आज की शाम का समय मुझे दे दीजिए।"

विभा की पलकें एक बार फिर बह चलीं, "अब जब कुछ बचा ही नहीं है तो क्या फ़ायदा उनसे बात करने का... और क्या बात करनी है? मेरे पूछने पर उन्होंने कह ही दिया है कि जो भी करना हो, वह करने के लिए मैं स्वतंत्र हूँ। अब वह अपनी मर्ज़ी से जीवन जिएँगे। मुझको दिक़्क़त हो तो जहाँ जाना हो चली जाऊँ, नहीं तो उनकी सेवा करती हुई यहीं पड़ी रहूँ।"

अनुभा ने विभा के कंधों पर हाथ रख दिए, "आप निश्चिन्त रहिये क्योंकि कुछ बातों के जवाब तो उनको देने ही पड़ेंगे... आपको चाहें नहीं परन्तु मुझको तो चाहिए उनके जवाब।"

विभा ने अपनी सहेली दिवी को फ़ोन करके बुलाया और अनुभा को उसके साथ उनकी बचपन की सहेली, शशि मौसी के पास भेज दिया और अपने पापा अरुण का इंतज़ार करने लगी।

अरुण ने देर शाम को ऑफ़िस से आते ही अपना बैग और लंच बॉक्स दरवाज़े पर ही छोड़ दिया कि विभा आ कर सब वहाँ से हटा कर सही जगह पर व्यवस्थित कर लेगी। फ्रेश हो कर आने के बाद भी उसने बैग को दरवाज़े पर ही पड़ा देख कर आक्रोशित हो कर विभा को आवाज़ देने, "विभा...विभा कहाँ हो तुम? तुमने सब सामान अभी तक हटाया क्यों नहीं और पानी तक ला कर नहीं दिया!"

अनुभा जो पास के कमरे से सब देख रही थी वहाँ आ गई, "क्या हुआ पापा... इतनी तेज़ आवाज़ में क्यों बोल रहे हैं?"

अनुभा की बात से सकपकाते हुए से अरुण ने विभा के बारे में पूछा, पर उसने उसकी बात का जवाब न दे कर पूछ लिया, "आपसे कुछ बात करनी है... कुछ पूछना चाहती हूँ। आप के पास समय है क्या?"

अरुण चिंतित हो उठा, "क्या हो गया...कोई दिक़्क़त है क्या तुमको? मुझसे तो तुम कभी भी कुछ भी बात कर सकती हो। इसके लिए पूछने की क्या आवश्यकता है!"

अनुभा उस के सामने इत्मीनान से बैठ गई, "घर परिवार समाज सभी के प्रति अपनी ज़िम्मेदारियों को निभा चुकी स्त्री को यदि उसका पति धोखा दे तो उसको क्या करना चाहिए?"

अरुण ने एक सुकून महसूस किया और बोला, "यह तो ग़लत है। उसके पति को ऐसा तो हरगिज नहीं करना चाहिए। ऐसा कौन मिल गया तुमको ?"

अनुभा स्वयं पर नियंत्रण बनाए रखते हुए बोलती चली गई कि पति की ग़लत आदतों पर समय-समय पर टोकने के बाद भी जीवन की हर चुनौती पर, हर सुख-दुःख में उस का साथ देने पर, उम्र के इस ढलान वाले दौर में, उसकी सहेली के पापा का किसी अन्य स्त्री से संबंध है,ऐसे में सहेली की माँ को क्या करना चाहिए !

अरुण ने जवाब दिया,"विश्वास की हत्या करनेवाले ऐसे पति को तुरंत तलाक़ दे देना चाहिए। ऐसा धोखेबाज़ पति ज़िंदगी के किसी भी मोड़ पर और भी बड़ा धोखा दे सकता है, शायद तब तुम्हारी उस सहेली की माँ के पास सँभलने का समय ही नहीं होगा।"

अरुण ने देखा कि अनुभा कुछ सोचती सी गुमसुम हो कर बैठी रह गई। वह आ कर उसके पास बैठ गया, "बेटे ! सहेली के बारे में सोच कर परेशान मत होओ क्योंकि परेशान होना तो किसी समस्या का समाधान हो ही नहीं सकता।"

अनुभा उन की ओर देखती हुई बोली, "नहीं पापा, मैं सहेली के बारे में नहीं उसकी माँ के बारे में सोच रही हूँ कि अपने जीवन के इतने अनमोल और ख़ूबसूरत साल देने के बाद भी उनको धोखा क्यों मिला ! क्या ईमानदारी से घर का ध्यान रखना और परिवार के प्रति समर्पित रहना ग़लत होता है? आख़िर उन्होंने अपने लिए कुछ करने की अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को छोड़ा, तभी तो घर के सभी सदस्य इतने निश्चिन्त हो कर ज़िंदगी में ख़ुद को कुछ साबित कर पाए... मुझे यही

समझ नहीं आ रहा है कि वह ग़लत कहाँ थीं।"

अनायास ही अनुभा की आवाज़ में एक आक्रोश उभरने लगा था, "पापा ! यह सब देख कर मुझे लगता है कि मुझे शादी करनी ही नहीं चाहिए... नहीं जीना मुझे एक संशय के विश्वासघात के माहौल में। कहीं बाहर जा कर नौकरी न करने की एक बात छोड़ दें तो मेरी सहेली की माँ रूप, व्यवहार, गृह कौशल, सामाजिकता निभाने वगैरह सभी बातों में अव्वल थीं, जबकि मैं तो ऑफ़िस में काम करने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं जानती... तब मेरा साथ कोई क्यों देगा !" अरुण तड़प कर उसके सिर पर हाथ फेरने लग गया,"ऐसा क्यों बोल रही हो बेटा... तुम अकेली कहाँ हो... मैं हूँ न... तुम्हारे साथ मैं कभी कुछ ग़लत होने ही नहीं दूँगा।"

अनुभा शांत भाव से उसको देख रही थी, "अमर हो कर तो इस धरती पर कोई नहीं आया है। फिर जब आप नहीं रहे तब... तब मिले धोखे का सामना कैसे करूँगी?"

अरुण उसके मन की उलझनों को समझता हुआ बोला, "बेटे कोई भी कभी भी एकदम अकेला नहीं होता है। कोई न कोई अवश्य होता है साथ देने को। ईश्वर न करें परन्तु यदि कभी ऐसा हुआ भी तब भी कोई न कोई तुम्हारा भी साथ देगा ही, जैसे अभी मैं तुम्हारी सहेली की माँ का साथ दूँगा। लाओ मुझे उसके पापा का फ़ोन नंबर दो मैं बात करता हूँ। पूरे जीवन उनका साथ देनेवाली पत्नी के साथ वह इतना ग़लत काम कैसे कर सकते हैं।"

अनुभा ने एक सुकून की साँस भरी, "हाँ पापा आप ज़रूर बात कीजिय... मैं उनको कॉल करती हूँ..." उसके नंबर मिलाते ही, उसके फ़ोन पर अरुण का ही नाम चमकने लगा, वह चौंक गया, "अरे ! तुमने तो ग़लती से मेरा ही नंबर मिला दिया। उसके पापा को कॉल करो न !"

अनुभा खड़ी हो गई, "नहीं पापा, मैंने नंबर सही मिलाया है... मैं आपकी और मम्मी की ही बात कर रही थी।"

अरुण चौंक गया, "क्या कहना चाहती हो। तुम्हारी मम्मी ने कुछ कहा है क्या?"

अनुभा की आवाज़ में तल्खी आ गई थी, "अभी भी आपने यह नहीं कहा कि यह बात ग़लत है या मैं क्या बकवास कर रही हूँ बल्कि यह प्रश्न कर रहे हैं कि मम्मी ने कुछ कहा है, क्या समझूँ इससे?"

अरुण की आवाज़ लड़खड़ा गई, "मैं तो चौंक गया था कि यह तुमको क्या हुआ है, कैसी बातें कर रही हो इसीलिए, ऐसा कुछ नहीं है बेटा। तुम मेरी बात तो सुनो।"

अनुभा के पूरे अस्तित्व से मानों घृणा क्रोध बन कर बरसती जा रही थी, "आप झूठ मत बोलिए। मैंने आपके सारे फ़ोटो और चैट सब देख लिए हैं। पड़ोसियों ने तो पहले भी एकाध बार इशारे में कहा था कि जब मम्मी कहीं शहर के बाहर होती थीं तो कोई आपके साथ ही घर आती थी और तब आप कार बाहर नहीं खड़ी करते थे, कार सीधी अन्दर पोर्टिको में ही खड़ी करते थे और... "

अरुण यह सुनते ही बौखला गया, "क्या बकवास कर रही हो? तुमको होश भी है कि क्या बोल रही हो, वह भी अपने ही पापा को! कोई कुछ भी बोल देगा तो तुम सच मान लोगी!"

आत्मवंचना उसके शब्दों में मूर्तमान हो उठी, "आपसे ज़्यादा ग़ुस्सा मुझको आया था और उन आंटी से लड़ कर मैंने बोलना ही छोड़ दिया था कि वह आपके बारे में ऐसा कैसे बोल सकती हैं! पर आज अफ़सोस हो रहा है कि मैंने उनकी बातों पर भरोसा कर के, उसी समय आपका कॉलर क्यों नहीं पकड़ा? काश मैंने पूछा होता तो मम्मी को इतनी पीड़ा से नहीं गुज़रना पड़ता।"

अरुण को लगा कि जिस पल की आशंका से वह सब छुपाने का प्रयास कर रहा था, वही पल सामने आ खड़ा हो गया है। उसने स्वयं को स्थिरचित्त कर लिया, "तुम्हारी माँ को कभी कोई कमी होने दी थी क्या? उसकी कौन सी ज़रूरत नहीं पूरी की, समाज में उसकी प्रतिष्ठा में कभी कोई कमी नहीं आने दी। फिर... फिर वह आख़िर चाहती क्या है? क्या कुछ पल अपने मन से नहीं जी सकता क्या मैं?"

अनुभा चीख ही तो पड़ी थी, "आख़िर आ ही गई आपकी असलियत सामने। कुछ पल अपने मन से ऐसा ही जीना यदि उन्होंने किया होता तब... तब क्या करते आप और आपकी आधुनिकता?"

अरुण का क्रोध विस्फोट कर उठा, "तुम होश में हो कि अपने पिता से कैसी बात कर रही हो? तुम्हारी हिम्मत...।"

अनुभा उस के सामने सीधी खड़ी हो गई, "मेरी हिम्मत... मेरी हिम्मत तो आप अब देखिएगा... और हाँ जिस बात को आप सुन भी नहीं पा रहे हैं, उस सच के साथ मेरी माँ को अपना पूरा जीवन जीना है पर इतना विश्वास दिलाती हूँ कि टूटने तो उनको बिलकुल नहीं दूँगी। न तो मैं और न ही भाई... वह भी बस पहुँचता ही होगा।"

अनुभा की आवाज़ को दबाने के प्रयास में उसका पौरुषीय अहंकार मानों उसके मर्म को चोटिल करने के लिए चिंघाड़ उठा, "जिस सामर्थ्य की धमकी दे रही हो, उसको पाने की फीस की रकम मैंने ही भरी है।"

अनुभा पलट कर उसके सामने खड़ी हो गई और उसकी आँखों में आँखें डाल कर बोली, "यह सब बोलने का साहस और अभी भी 'आप' को 'आप' बोलने का संस्कार मम्मी ने दिया है। आप यह मत सोचिएगा कि हम यह घर छोड़ कर कहीं और चले जाएँगे। हम वापस यहीं आएँगे और रहेंगे। अपना सामान समेट कर गेस्ट रूम को अपने हिसाब से ठीक कर लीजिएगा।"

वह क्रोध में पागल ही होता जा रहा था, "हम घूमने जा रहे हैं। तुम लोगों को घर पर ताला बंद मिलेगा।"

अनुभा पीड़ा में भी हँस पड़ी, "अब तो समझ जाइए कि मुझको ताला तोड़ना भी आता है और तुड़वाना भी।"

दरवाज़े की ओर बढ़ते-बढ़ते वह अचानक से उसकी ओर घूम गई, "और हाँ! सुबह दादा जी और दादी माँ आ रहे हैं यहाँ। उनको सुनाने के लिए कोई कहानी तैयार रखियेगा।" वह दृढ़ क़दमों से बाहर निकल गई पर अरुण की उलझनें मानों उसको न जाने किस अँधेरी कंदरा में ले जा रही थीं।

000

लंबी कहानी

जंग-दर-जंग

सूर्यनाथ सिंह

वह अट्ठाईस फरवरी, छब्बीस की सुबह थी। रमज़ान का महीना। हवाओं में फागुन की गुनगुन। होली के चार दिन बचे थे। याक़ूब मास्टर का मन आज अनजानी उमंग से भरा था। आज कुछ जल्दी उन्होंने दुकान खोल दी थी। अभी बाईं बगल की, इदरीस मियाँ की, कपड़ों की दुकान नहीं खुली थी। वह दस बजे से पहले कभी खुलती कहाँ है। दाहिनी बगल की चाय की दुकान पर ज़रूर कुछ बैठकबाज़ जमे हुए थे। यों तो सिलवा कर कपड़े पहनने का चलन पिछले कई सालों से ख़त्म-सा हो गया था। मगर, अब भी कुछ पुराने मिज़ाज के, कपड़ों के शौकीन बचे हुए थे, जो होली, दिवाली, ईद, शादी-विवाह वगैरह के मौके पर बाज़ार से सिलेसिलाए कपड़े ख़रीदने के बजाय, ख़ुद नाप देकर कपड़े सिलवाते थे। याक़ूब मास्टर कलीदार कुर्ते के माहिर माने जाते थे। इसके लिए पूरे इलाक़े में मशहूर थे। अब कलीदार कुर्ते सिलने और हाथ का काम करने वाले क़स्बे में उन जैसे गिनेचुने ही बच गए थे। ऐसे में दिवाली, होली और ख़ासकर ईद पर उनके यहाँ कुर्ते सिलवाने वालों की भीड़ कुछ बढ़ जाती थी। वैसे याक़ूब मास्टर अब ज़्यादातर कपड़े की कटाई करके सिलने के लिए अरशद को पकड़ा दिया करते थे, मगर कुछ पुराने और ख़ास ग्राहक ऐसे थे, जिनका इसरार होता कि कुर्ते पर हाथ का काम मास्टर जी ख़ुद करें। इसलिए इन दिनों वे थोड़े मसरूफ़ हो गए थे।

याक़ूब मास्टर ने काउंटर पर झाड़न फेरी और नातिया कलाम बजाने के लिए अपने मोबाइल में यू-ट्यूब के निशान पर अँगुली दबा दी। तभी वह ख़बर चमकी थी- अमेरिका और इज़राइल ने मिल कर ईरान पर किया हमला।...यह ख़बर शांत झील में, ऊँचे पहाड़ से लुढ़के विशाल पत्थर की तरह आकर गिरी थी। ख़बर देखते ही याक़ूब मास्टर की उमंग हवा हो गई। उनके दिल में धक-सा हुआ। किसी अनिष्ट की आशंका गहराने लगी थी। हालाँकि, अरसा पहले उन्होंने अख़बार पढ़ना और टीवी पर ख़बरें सुनना बंद कर दिया था। बगल की चाय वाली दुकान पर बैठ कर सियासी तकरीरें करना-सुनना भी कब का छोड़ चुके थे। मगर, पिछले कुछ समय से उन्हें लगता था कि पहले की बनिस्बत इन दिनों ख़बरें कुछ ज़्यादा सुनाई देने लगी हैं। वे ज़्यादातर ख़बरों को नज़रंदाज़ या कानों ही कानों में दफ़्न कर देने की कोशिश करते थे। मगर, यह ख़बर तो उन्हें थी कि कुछ महीने पहले जब इज़राइल ने फिलस्तीन पर हमला किया था, तब अमेरिका का एक ताक़तवर जहाज़ जाकर ईरान पर बम बरसा गया था। उस वक़्त मोबाइल पर कोई मीठा नातिया कलाम तलाशने के बजाय याक़ूब मास्टर की अँगुली जंग से जुड़ी ख़बर पर दब गई थी। बमों और मिसाइलों को टक्कर देती आवाज़ में ख़बरें गरजने लगी थीं- 'अमेरिका और इज़राइल ने मिल कर ईरान पर किया हमला। जवाब में ईरान ने भी तेरह अमेरिकी ठिकानों पर दागीं मिसाइलें। संयुक्त अरब अमीरात, कतर, बहरीन आदि देश भी उसके निशाने पर।...' सुन कर बेसाख़्ता उनके मुँह से निकला, 'या अल्लाह! रमज़ान में खून-खराबा! बहुत बड़ा गुनाह है ये।'

ख़बरें आ रही थीं कि ईरान ने संयुक्त अरब अमीरात सहित खाड़ी के कई अमेरिकी सैनिक अड्डों पर मिसाइलें दागी हैं। बहरीन में कुछ अधिक तबाही हुई है। ईरान ने कहा है कि जो भी देश उसके ख़िलाफ़ अमेरिका को अपनी ज़मीन इस्तेमाल करने देंगे, वे सभी उसके निशाने पर होंगे। वह ख़बर सुनते ही याक़ूब मास्टर के रोएँ भरभरा उठे थे। एक अजीब तरह की बेचैनी खदबदाने लगी थी। वे बदल-बदल कर ख़बरें सुनने लगे। जैसे, उन्हें किसी एक ख़बर पर यक़ीन ही नहीं हो पा रहा था, या वे ख़बरों में छिपी कोई ऐसी बात तलाश कर लेना चाहते थे, जो उनके मन के माफ़िक़ हो, जिससे उन्हें कुछ सुकून मिल सके। मगर, सारी ख़बरें लगभग एक ही

सूर्यनाथ सिंह
181, नेवल टेक्निकल ऑफीसर्स सोसाइटी, प्लॉट नं.-3 ए, सेक्टर-22, द्वारका, नई दिल्ली-110077
मोबाइल- 9958044433
ईमेल- suryansingh@gmail.com

लिबास पहने हुई थीं। चीखती, चटखारेदार ख़बरें। वे ख़बरें सुन तो रहे थे, पर उनका कोई

मतलब उन्हें समझ नहीं आ रहा था। उनके भीतर हौल उठने लगा था। ख़बरें सुनते-सुनते उनकी नज़रें अपने मोबाइल फ़ोन की बनावट पर जा चिपकी थीं। जैसे वे पहली बार कोई मोबाइल फ़ोन देख रहे हों। याकि, वह फ़ोन उनकी ज़िंदगी में अचानक किसी अजूबे की तरह नमूदार हो गया हो। जैसे, इससे पहले कभी इतने ग़ौर से उन्होंने अपने मोबाइल की बनावट देखी ही न थी। मोबाइल के ज़ोरदार, ताक़तवर स्पीकर से निकलती एंकर की धमाकेदार आवाज़ से मानों उनकी पूरी दुकान थर्रा उठी थी। उन्हें अपने आसपास भूडोल का-सा अहसास होने लगा था। फिर, उन्होंने देखा कि उस मोबाइल में उभरती बमबारी की धुआँ-धुआँ तस्वीरों के बीच उनके बेटे दिलशाद का चेहरा उभर आया है। वे वह तस्वीर देखकर झनझना उठे। दिलशाद ही पिछली ईद पर यह मोबाइल फ़ोन बहरीन से लेकर आया था। तब उसने बड़े फख़्र से कहा था, 'अब्बू, अभी यह फ़ोन इंडिया में नहीं आया है। एकदम नई टेक्नोलॉजी है। आप मोबाइल पर ख़बरें, क़व्वालियाँ वगैरह सुनते रहते हैं, इसलिए मुझे लगा कि आपके लिए इससे बेहतर ईद का तोहफ़ा कुछ और नहीं हो सकता। देखिए, इसका स्पीकर कितना ज़ोररदार है। इसकी आवाज़ में कितनी बारीकी, कितनी खनक है।...' फ़ोन से जुड़ी यादें, फ़ोन से निकलती ख़बरों में गुम हुई जा रही थीं।

सचमुच, फ़ोन की आवाज़ खनकदार थी। उस पर कव्वालियाँ और नातिया कलाम सुनने में मज़ा आता था। मगर, किसी दिन इस तरह की ख़बर भी इसी मोबाइल पर सुननी पड़ेगी, उन्होंने कभी सोचा न था। एक अजीब तरह का भय भरने लगा था उनके भीतर। शरीर में कंपकंपी उभरने लगी थी। उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि इस ख़बर पर क्या और कैसे प्रतिक्रिया देनी चाहिए। वे जैसे मशीनी ढंग से मोबाइल पर बदल-बदल कर ख़बरें देखे जा रहे थे। अँगुली फिराते-फिराते उन्हें ताज़ा ख़बर भी चीखती हुई कानों में पड़ी थी- इज़राइल के हमले में ईरान के शीर्ष नेता अयातुल्ला अली खामेनेई सहित कई नेता और उनके परिवार के लोग मारे गए हैं। इस ख़बर की पुष्टि ख़ुद ईरान ने की है। याक़ूब मास्टर को अब अपने शरीर में जाहिरा तौर पर कँपकँपी महसूस हुई। वह कँपकँपी ख़ौफ़ की थी। उन्होंने ख़बर बंद कर दी। पलट कर दीवार पर टँगी मदीने की तस्वीर को उम्मीद भरी नज़रों से देखने लगे। उनके दोनों हाथ अपने आप इबादत में जुड़ गए थे- 'या परवरदिगार, कुछ तो अपने बंदों को होश दे, कुछ तो अक्ल दे।...'

वे देर तक अमन की दुआएँ करते रहे। फिर कुछ सामान्य हुए, तो फ़ोन उठा कर बेटे का नंबर मिला दिया। सोचा, उसकी ख़ैरियत पूछते हैं। मगर उसका फ़ोन मिल ही नहीं रहा था। कई बार कोशिश की, फ़ोन नहीं मिल पाया। जितनी बार वे फ़ोन मिलाते और उधर से कोई जवाब नहीं मिलता, उतनी बार उनकी घबराहट बढ़ती जाती। तरह-तरह के बुरे ख़यालात उनके ज़ेहन में सरग़ोशी करने लगे थे। फिर उन्हें ध्यान आया कि इरशाद को फ़ोन मिला कर देखते हैं। इरशाद यानी दिलशाद के मामू का बड़ा बेटा। वही दो साल पहले दिलशाद को ले गया था अपने साथ बहरीन। पीने का पानी बनाने की एक कंपनी में बिजली ऑपरेटर के तौर पर नौकरी दिलाई थी। दिलशाद के मामू ने ही अपने बहनोई की बेटी से उसकी शादी तय कराई है। उन्होंने इरशाद का फ़ोन नंबर तलाशा और दबा दिया। मगर, दो-तीन बार कोशिश के बावजूद, उससे भी संपर्क नहीं हो पाया। याक़ूब मास्टर एक अजीब तरह की बेचैनी से भर गए थे। आख़िरकार उन्होंने ख़ुद पर काबू किया। मन को समझा लिया कि अगर कोई बुरी ख़बर होगी, तो देर-सबेर मिल ही जाएगी। अब इंतज़ार के अलावा चारा भी तो नहीं। फिर, उन्होंने फैसला किया कि दुकान बंद करके घर चलते हैं। बेगम को ख़बर मिली होगी, तो वे भी घबरा रही होंगी। वे अपना झोला समेट ही रहे थे कि पीछे से आवाज़ आई, 'सलामालेकुम मास्टर जी।'

उन्होंने पीछे मुड़ कर देखा, अशरफ़ मियाँ थे। 'वालेकुम अस्सलाम अशरफ़ मियाँ।'

'सब ख़ैरियत तो है?' अशरफ़ ने पूछा था।

'सब ऊपर वाले का करम है, अशरफ़ मियाँ।' याक़ूब मास्टर के लहजे से उदासी साफ पता चल रही थी। वे फिर झोले में सामान समेटने लगे थे।

'उधर खाड़ी में जंग शुरू हो गई है।... दिलशाद मियाँ की क्या ख़बर है। उनसे कोई बात हुई क्या?' अशरफ़ ने सवाल किया। याक़ूब मास्टर ने बाहर झाँक कर देखा। चाय वाली दुकान पर रोज़ के फुरसतिया नवहे, स्कूलों के मास्टर और गाँवों के कुछ सरपंच, गले में गमछा धारे नए उभरते नेता वग़ैरह अड्डा ज़माने लगे थे। मास्टर जी ने फुसफुसाते हुए कहा, 'अंदर आ जाओ अशरफ़ मियाँ।' और उन्होंने किनारे रखे लकड़ी के स्टूल पर झाड़न मार कर थोड़ा अंदर की तरफ़ सरका दिया। अपना स्टूल भी खिसका कर उसी के पास ले गए। अशरफ़ मियाँ स्टूल पर बैठे तो याक़ूब मास्टर ने रुआँसा होकर कहा, 'अभी थोड़ी देर पहले ही ख़बर सुनी अशरफ़ मियाँ।... कल रात को तो बात हुई थी दिलशाद मियाँ से... पर सवेरे-सवेरे यह सब हो गया।...अभी फ़ोन मिलाया, कई बार कोशिश की, मगर बात नहीं हो पा रही।' लगा कि याक़ूब मास्टर फफक पड़ेंगे। अशरफ़ मियाँ स्टूल से उठे और याक़ूब मियाँ के दोनों कंधों को पकड़ कर तसल्ली दी, 'ज़्यादा फ़िक्र की बात नहीं है, मास्टर जी। ...खाड़ी मुल्कों से आने-जाने वाले सारे फ़ोन अभी बंद कर दिए गए हैं। इंटरनेट वग़ैरह बंद है। खुलेगा तो बात भी हो जाएगी। ...वैसे, ईरान केवल अमेरिकी ठिकानों पर हमले कर रहा है। रिहाइशी ठिकानों को निशाना नहीं बना रहा। इसलिए दिलशाद मियाँ महफ़ूज़ ही होंगे, आप भरोसा रखिए।'

'या अल्लाह। ख़ैर कर अपने बंदों की।...' याक़ूब मास्टर ने फिर से प्रार्थना की मुद्रा में अपने दोनों हाथ ऊपर कर दिए थे।

'इंशाअल्लाह, हालात बहुत जल्दी सुधर जाएँगे। अभी तो सब्र रखने की ज़रूरत है।' अशरफ ने समझाने की कोशिश की।

'हम तो यही दुआ करते हैं कि आप जैसा

कह रहे हैं, वैसा ही हो।...' अशरफ़ मियाँ की बातों से याक़ूब मास्टर के भीतर का ग़ुबार कुछ शांत हो गया था। उन्होंने स्वाभाविक जिज्ञासा की थी, 'मगर, यह बात समझ नहीं आई कि ईरान का झगड़ा तो अमेरिका और इज़राइल से है, वह हममज़हबी मुल्कों पर हमले क्यों कर रहा है।...हमारे न जाने कितने बच्चे नाहक खाड़ी देशों में फँस गए हैं। उनकी जान की फ़िक्र लग गई है।'

'मज़हबी एका होता, तो बात ही क्या थी, मास्टर जी।...शिया-सुन्नी के झगड़े तो सबसे ज़्यादा वहीं हैं। कितने साल तो लड़ते रहे इसी बात पर ईरान और इराक। इसी का फ़ायदा उठा कर तो अमेरिका उन मुल्कों में घुस गया है। सबने अपने यहाँ उसे अपनी छावनी बसाने की इजाज़त दे रखी है। उन्हें लगता है कि अमेरिका से दोस्ताना रखके महफ़ूज़ रहेंगे वे सब। उन्हीं मुल्कों की ज़मीन से तो अमेरिका अपनी मिसाइलें ईरान पर फेंक रहा है। इसीलिए ईरान उन ठिकानों को तबाह करना चाहता है।'

'अल्लाह जाने, कब तक बदलेगा ये सूरते-हाल।' याक़ूब मास्टर के स्वर में उदासी बनी हुई थी।

'जब तक इन दोनों देशों की जोड़ी रहेगी, दुनिया में कहीं न कहीं जंग के हालात बने ही रहेंगे। इज़राइल की खून की प्यास कभी बुझती ही नहीं। सारे मुस्लिम मुल्कों को नेस्तोनाबूद करने पर तुला है। पूरे फिलिस्तीन को ख़त्म कर दिया। गाज़ा में जिस तरह की बेरहमी दिखाई उसने, वैसा तो पूरी तवारीख़ में किसी ने कभी न किया होगा। बीमार और बच्चों तक को नहीं बख्शा। वही तरीक़ा वह ईरान में अपना रहा है। हज़रत खामेनेई और उनके ख़ानदान के लोगों को हलाक़ कर दिया। स्कूल पर बम फेंका और मासूम बच्चियों को मार डाला। वह जानबूझ कर अस्पतालों और स्कूलों पर हमले कर रहा है, ताकि अवाम ईरानी हुकूमत के ख़िलाफ़ हो जाए और वह उसके आगे घुटनों पर आ जाए। रिहाइशी इलाक़ों तक को नहीं बख्श रहा। जंग के सारे क़ायदे-क़ानून ताक पर रख दिए हैं उसने। और ईरान से अमेरिका की कौन-सी

दुश्मनी थी, जो वह जंग में कूद गया। ईरान तो उसके साथ बातचीत कर रहा था, उसकी सारी बातें मानने को तैयार था। मगर नहीं, उसे अपने दोस्त का साथ देना ज़रूरी लगा, इसलिए मिसाइलें दागनी शुरू कर दी।'

'हमें तो अपने बच्चों की फ़िक्र है, अशरफ़ मियाँ। वे न जाने कब तक वहाँ फँसे रहेंगे। हमारी सरकार न जाने क्या कर रही है। वह उन्हें निकाल कर वापस लाएगी भी या नहीं, ख़ुदा जाने।...' याक़ूब मास्टर बोले। अशरफ़ मियाँ कुछ देर ख़ामोश रहे। दाएँ-बाएँ देखा, फिर हल्के लहजे में कहा, 'अपने यहाँ के बारे में तो क्या ही कहें, मास्टर जी। आपसे कोई बात छिपी तो है नहीं। इसलिए ऐसे हालात में ऊपर वाले से ही दुआ की जा सकती है।... अच्छा, आप ज़्यादा चिंता मत कीजिए। अल्लाह सब ठीक करेगा। मैं ज़रा रहमान मिस्त्री के पास जा रहा था। घर के पानी की मोटर में कोई ख़राबी आ गई है। वह देख लेगा, तो परेशानी पता चल जाएगी। आपको देखा, तो सोचा ख़ैरियत पूछता चलूँ।'

'शुक्रिया भाई। ख़ुदा हाफ़िज़। मैं भी घर ही लौट रहा था। मन कुछ ठीक नहीं है। बेगम ने ख़बर सुनी होगी, तो वे भी परेशान हो रही होंगी। मैं घर पहुँच जाऊँगा, तो उन्हें तसल्ली दे सकूँगा।'

'बिल्कुल ठीक है, मास्टर जी।... ख़ुदा हाफ़िज़।' अशरफ मियाँ उठ कर चले गए।

***

याक़ूब मास्टर घर पहुँचे, तो आस-पड़ोस के सब ख़ैर-ख़बर लेने जुटने लगे। जितने मुँह उतनी बातें। ख़ैरियत तो कम, जंग की बातें ज़्यादा होती रहीं। दिन भर मोबाइल पर ख़बरें खसोटते और रील रगेदते नवहों को जंग से जुड़ी बातें ज़्यादा पता थीं। वे मिसाइलों की बारीकियों का बखान कुछ इस तरह करते रहे, मानों उन्होंने ही उन्हें बनाई हो। इज़राइल और अमेरिका के ख़िलाफ़ तो उनका ख़ून ऐसे उबाल मार रहा था, मानों मौक़ा मिले तो वे उन दोनों पर परमाणु बम दे मारें। अभी के अभी कर्बला कर दें। याक़ूब मास्टर नवहों की बातें सुनते और सोच कर हैरान होते रहे कि कैसे जंगें भी अब मनोरंजन की चीज़ हो गई हैं। नवहे हर बात में मनोरंजन तलाश लेते हैं। अब तो अपराध की ख़बरें भी उनके लिए मनोरंजन की वस्तु हो गई हैं। उन्होंने सबकी बातें बस सुनीं, ज़्यादातर की हाँ में हाँ मिलाई, कहा कुछ नहीं। जैसे उनके पास अपना कहने को कुछ भी न हो। जबकि हक़ीक़त यह थी कि उन्हीं के पास कहने को सबसे अधिक था। पूरा मुहल्ला जानता था कि बोलने पर आएँ, तो याक़ूब मास्टर अच्छे-अच्छों के कान कतर सकते हैं। मगर, वे चुप रहे। शाम को मस्जिद गए। नमाज़ पढ़ी। दिलशाद की सलामती और दुनिया में अमन की दुआ की। नमाज़ के बाद मौलवी रहमतुल्ला ने खामेनेई के लिए फ़ातिहा पढ़ाया और फिर छोटी-सी तक़रीर की। इस मुहल्ले के सात घरों को छोड़ कर बाक़ी सारे शिया हैं, इसलिए ईरान से इस मुहल्ले का लगाव ज़ाहिर था। याक़ूब मास्टर ने महसूस किया कि पहली बार मौलवी साहब की किसी तक़रीर ने उनके भीतर गहरा असर किया है।

दिन भर ख़बरें और लोगों की तसल्लियाँ सुनते रहने, मस्जिद में इबादत करने के बाद भी याक़ूब मास्टर को सुकून नहीं मिल पा रहा था। वे बार-बार ख़ुद को समझाने की कोशिश करते रहे कि न तो यह जंग नई है और न इस जंग से अभी तक उनका कोई ज़ाती नुक़सान हुआ है, फिर परेशान होने की बात क्यों होनी चाहिए। मगर, वे ख़ुद को समझा नहीं पा रहे थे। यह बात सब लोग कह चुके थे, ख़बरों से भी ज़ाहिर था कि खाड़ी मुल्कों का बाहरी

मुल्कों से फ़ोन वगैरह से ताल्लुकात रोक दिए गए हैं। जंग की ख़बरें, सूचनाएँ, तस्वीरें वगैरह भेजने पर पाबंदी है। फिर भी याकूब मियाँ का मन बेचैन था। जबसे ख़बर सुनी थी, तब से अब तक न जाने कितनी बार वे दिलशाद को फ़ोन मिला चुके थे। उस शाम इफ़्तार भी बेमन से किया। रात को सुकून की नींद तो क्या ही आनी थी! उनींदेपन में बुरे-बुरे ख़याल आते रहे। दिन भर देखी-सुनी ख़बरों का शोर कानों में गूँजता रहा। आसमान में लहकती मिसाइलों की तस्वीरें और उनके बीच दिलशाद का चेहरा तैरता रहा। रात भर भीतर और बाहर मातमी सन्नाटा झनझनाता रहा। वे बार-बार यह तसव्वुर करने की कोशिश करते रहे कि रात को जब लोग अपने घरों में सो रहे होंगे और उन पर कोई मिसाइल गिरती होगी, तो क्या होता होगा। ज़िंदा बच गए लोग किस तरह मलबे से बाहर निकलते होंगे। उनमें छोटे-छोटे बच्चों की क्या हालत होती होगी। जिन बच्चों के माँ-बाप मार दिए जाते होंगे, जो बच्चे यतीम हो जाते होंगे, उनका मुस्तकबिल कैसा होता होगा। क्या उनमें ताज़िंदगी इंतकाम की आग नहीं सुलगती रहती होगी। ऐसी कौमें किस तरह के वतन का तसव्वुर कर पाती होंगी। जिनके घर ज़मींदोज हो जाते होंगे, वे कहाँ और कैसे रहते होंगे। तंबुओं में उनकी ज़िंदगी कैसी हो जाती होगी। क्या वे फिर अपना घर बना भी पाते होंगे या ताउम्र तंबुओं में रहने पर मजबूर होते होंगे। कभी-कभी वे सोचने लगते कि ख़ुदा न करे, अगर दिलशाद ऐसे हालात में फँस जाए तो क्या होगा। न जाने कब तक वह बेचारा तड़पता रहेगा। ऐसे ख़यालात को वे झट झटक कर दिमाग़ से उतार फेंकते। वे जानते थे कि आदमी चाहे ख़ुद कितनी भी बड़ी मुसीबत में घिर जाए, उतनी तकलीफ़ नहीं होती, जितनी तकलीफ़ अपनों की मुसीबत के तसव्वुर भर से हो जाया करती है। फिर उन्हें यह ख़याल आ घेरता कि अगर कभी वे ख़ुद ऐसे हालात में फँस जाएँ, तो क्या होगा। वे क्या करेंगे। कभी सोचने लगते कि किसी मिसाइल के हमले से कोई बड़ी-सी इमारत धँस गई है और वे उसके मलबे में दबे हुए हैं। चीख रहे हैं, मगर उनकी चीख कोई नहीं सुन पा रहा। न जाने कब तक राहत दल पहुँचेगा और न जाने कब उन्हें मलबे से बाहर निकाला जाएगा। सोच कर उनका गला सूख जाता। लगता कि दम घुट जाएगा।

सोचते-सोचते याकूब मास्टर कभी क्रोध में काँपने लगते, कभी गहरे विषाद से भर जाते, तो कभी फूट-फूट कर रोने को हो आते। ऐसे ही तूफ़ान के बीच कभी अशरफ मियाँ, कभी हाफ़िज़ इस्माइल, तो कभी कोई और उनके सामने हाज़िर हो जाता। वे उनसे बातें करने लगते। उन्हीं ख़यालों में याकूब मास्टर ने बड़ी तकलीफ़ के साथ अशरफ़ मियाँ से पूछा था, 'आख़िर हुकूमत मिलते ही आदमी इस कदर हैवान कैसे हो जाता है। उसे केवल और केवल अपनी ताक़त बढ़ाते रहने और दूसरों को ख़ौफ़ में रख कर अपनी बादशाहत सलामत रखने की हवस क्यों पैदा हो जाती है। जो जितनी ज़ोर से डेमोक्रेसी की बातें करता है, वही सबसे बड़ा डिक्टेटर क्यों बन जाना चाहता है।' मगर अशरफ़ मियाँ ने उन्हें इसका कोई जवाब नहीं दिया था। पूरी रात, उनींदेपन में वे इबादत करते रहे। दिलशाद और उसके जैसे बेबसी में फँस गए, नौजवानों की सलामती की दुआएँ करते रहे। सुबह सेहरी भी बेमन से किया। तय कर लिया था कि आज दुकान नहीं जाएँगे। मगर पौने नौ बजे के क़रीब दिलशाद का फ़ोन आ गया। फ़ोन हाथ में ही था। घंटी बजी तो याकूब मास्टर, फ़ोन के परदे पर तैरते दिलशाद के नाम को, देर तक हैरत से देखते रहे। मानों, किसी अनजान की कॉल हो और वे ससोपंज में हों कि उसे उठाएँ या न उठाएँ। या, फिर वे तय नहीं कर पा रहे थे कि फ़ोन उठा कर बोलें क्या। कहीं उनके भीतर पिछले कल से चल रही जंग रुलाई में न फूट पड़े। या, कहीं वे कुछ भी न बोल पाएँ और सिर्फ रोते रह जाएँ। एक अजीब तरह की हैरानी और ख़ुशी उनके भीतर परस्पर टकराने लगी थी। मगर, इस मन:स्थिति से उन्हें उनकी बेगम ने उबार लिया था। फ़ोन की घंटी बजते ही वे आकर बरामदे की किवाड़ से सट कर खड़ी हो गई थीं। इंटरनेशनल कॉल की घंटी वे पहचानती थीं। उन्होंने फ़ोन बेगम के हाथों में पकड़ाते हुए आँखों के इशारे से कहा, दिलशाद मियाँ का फ़ोन है, बात कीजिए।

बेगम ने फ़ोन को स्पीकर पर डाल दिया था। उधर से दिलशाद की आवाज़ उभर रही थी, 'यहाँ जंग छिड़ गई है अम्मी। कल से ही फ़ोन और इंटरनेट बंद था। मैं समझ रहा था कि आप लोग घबरा रहे होंगे। मगर मैं फ़ोन नहीं कर पा रहा था। वैसे, ज़्यादा फ़िक्र की कोई बात नहीं है। फिलहाल हम सब घर से ही काम कर रहे हैं। रिहाइशी इलाकों में कोई ख़तरा नहीं है। एयरपोर्ट और कुछ अमेरिकी ठिकानों पर ही बमबारी हुई है। आप लोग चिंता बिल्कुल मत कीजिए।'

'घर से काम कर रहे हैं, मतलब! घर से कैसे काम कर रहे हैं!' याकूब मास्टर ने हैरानी जताई।

'बताया तो था अब्बू आपको, यहाँ सारा प्लांट कम्प्यूटर से कंट्रोल होता है। उसे घर बैठे भी चला सकते हैं। बहुत ज़रूरी होता है, तभी आदमी को हाथ लगाना पड़ता है।' दिलशाद के स्वर में झुँझलाहट उभर आई थी। मगर याकूब मास्टर को उसकी झुँझलाहट बुरी नहीं लगी। दिलशाद की आवाज़ सुन भर लेने से जैसे उनके भीतर उफन रहा आशंकाओं का समंदर एकदम से शांत हो गया था। बस, उन्होंने नसीहत दी थी- सँभल कर रहिए। बहुत ज़रूरत न हो, तो घर से बाहर बिल्कुल मत निकलिए। फिर उनकी बेगम ने वह बात पूछ ली, जो याकूब मास्टर पूछने से रह गए थे- 'ईद पर तो आ रहे हैं न यहाँ?'

'अभी तो कुछ कह नहीं सकता, अम्मी। मुश्किल लग रहा है। अभी सारी फ्लाइटें बंद हैं। इंशाअल्लाह, हालात कुछ सुधरेंगे, तो आ जाऊँगा।' दिलशाद के लहजे में कुछ मायूसी उतर आई थी।

'चलिए, आपसे बात हो गई तो सुकून मिल गया। आप अपना ख़याल रखिए। ख़ुदा ख़ैर करे। अल्ला हाफ़िज़।' याकूब मास्टर ने बातचीत को विराम दिया था। फ़ोन बंद हुआ तो बेगम को सुनाते हुए, याकूब मास्टर जैसे ख़ुद से बातें करने लगे थे, 'बच्चे आसपास ही रहें तो अच्छा। उनके दुख-सुख में शामिल तो

हुआ जा सकता है। कम खाकर आदमी फिर भी गुज़ारा कर लेता है, मगर अपनों से दूर रह कर जीना बहुत मुश्किल होता है। दिलशाद मियाँ बेशक ज़ाहिर करने की कोशिश कर रहे हों कि वे ठीक हैं, मगर उन्हें इन हालात में हमारे साथ की ज़रूरत तो महसूस होती ही होगी। बच्चे ऐसे मामलों में माँ-बाप से अक्सर झूठ ही बोलते हैं। अपनी तकलीफ़ इसलिए ज़ाहिर नहीं करते कि उनके माँ-बाप को तकलीफ़ न हो। ऐसे मामलों में वे दोस्तों से ज़्यादा खुल कर बातें करते हैं। मगर, दोस्तों के साथ बैठ कर, बोल-बतिया कर दिल को वह भरोसा, वह सुकून भला कहाँ मिल पाता है, जो माँ-बाप के क़रीब रहने भर से मिल जाया करता है। मगर, बच्चे भी क्या करें, पैसे की ज़रूरत इस ज़माने में इस क़दर बढ़ गई है कि रोज़ी के लिए अपनों से दूर जाना ही पड़ता है। अबकी दिलशाद मियाँ आएँगे, तो उन्हें समझाऊँगा कि बेशक कुछ कम में गुज़ारा करना पड़े, मगर अपने मुल्क में ही कोई रोज़गार शुरू करें। उनके लायक़ रोज़गार की कमी तो यहाँ भी नहीं है। मेहनत करने वाले को कहीं भी दुश्वारियाँ नहीं झेलनी पड़तीं। वैसे भी, अब उनकी शादी तय है। खाड़ी के मुल्कों में तेल का पैसा बेशक बहुत हो, मगर बाहरी लोगों के लिए वहाँ रहना कोई आसान बात तो है नहीं। दिलशाद मियाँ शादी के बाद लड़की को यहाँ छोड़ कर जाएँ, वह भी ठीक नहीं।... अरे हाँ, उनके मामू को फ़ोन कर बता दीजिएगा कि दिलशाद मियाँ से बात हो गई है। वे ख़ैरियत से हैं। बेचारे वे और उनके बहनोई भी तो फ़िक्र करते होंगे।'

***

इस तरह, याक़ूब मास्टर की ज़िंदगी में जंग की ख़बरों से जो जलजला-सा आया था, वह दिलशाद से बातें करके ठहर गया था। अब दिलशाद से रोज़ ही किसी न किसी वक़्त बात हो जाती थी। बल्कि दिन में दो-तीन बार भी हो जाती थी। ख़बरों में जंग कम तो नहीं हो रही थी, मगर जल्दी ही उसके किसी नतीजे पर पहुँचने की उम्मीद जताई जा रही थी। हालाँकि याक़ूब मास्टर अपनी ज़िंदगी के तजुर्बों से जानते थे कि जंगें शुरू ज़रूर किसी

हीले से होती हैं, मगर हमेशा हैवानियत का हवाला ही बनती हैं। याक़ूब मास्टर का मोबाइल फ़ोन अब उनके लिए ख़बरें सुनने का उपकरण ज़्यादा बन गया था। हर वक़्त वे ताज़ा ख़बरों पर नज़र रखने लगे थे। हर ख़बर कुछ उम्मीद लेकर आती, तो उससे ज़्यादा नाउम्मीदी पैदा कर जाती। पिछले दो-तीन दिनों में कुछ चैनल उनके पसंदीदा बन गए थे, जिन पर चलने वाली बहसें सुन कर उन्हें कुछ सुकून मिलने लगा था। इन दिनों में वे अच्छी तरह पहचान गए थे कि किन चैनलों की ख़बरें भरोसेमंद हैं और किन चैनलों पर सिर्फ़ सरकारी प्रचार के समाचार बाँचे जाते हैं। ख़बरों से ज़ाहिर था कि जिस ईरान को इज़राइल और अमेरिका ने पिद्दी समझ रखा था, वह उन पर भारी पड़ रहा था। उन्हें छकाए डाल रहा था। अपने अगली कतार के नेताओं के मारे जाने के बावजूद, वह पस्त नहीं पड़ा था। ऐसी खबरों में अमेरिका और इज़राइल का घमंड टूटता देख याक़ूब मास्टर कुछ राहत ज़रूर महसूस करते, मगर उनके भीतर किसी न किसी रूप में सारा गुणा-गणित दिलशाद को लेकर ही चलता रहता। जब-जब वे आर्थिक विश्लेषकों के हिसाब-किताब सुनते, तो उनकी घबराहट कुछ और बढ़ जाती। सब यही बता रहे थे कि जंग के बाद दुनिया बड़ी माली तबाही के दौर से गुज़रेगी। खाड़ी देशों के अलावा इंडिया जैसे मुल्कों पर उसका असर सबसे बुरा होगा। वे ख़बरें सुनते और बुड़बुड़ाते-अब मुल्कों के बीच की जंग और गली के गुंडों की गैंगवार में कोई फ़र्क़ नहीं रह गया है। फिर वे जैसे ख़ुद से ही बातें करने लगते कि अगर दिलशाद मियाँ को किसी ज़ोर-ज़बर्दस्ती यहाँ रोक भी लें, यहाँ कोई रोज़गार शुरू करा भी दें, तो जैसे माली हालात यहाँ बन गए हैं और आगे उनके और बिगड़ने के ही इमकानात हैं, उसमें वे यहाँ गुज़ारा भी कैसे कर पाएँगे।

वे ख़बरों की तरफ़ से ध्यान हटा कर अपने काम में मन लगाने की कोशिश करते। उन्हें राहत इस बात से थी कि बहरीन में दिलशाद मियाँ महफ़ूज़ हैं। मगर इसी बीच होली वाले दिन एक नया कांड हो गया। बाज़ार के चौक पर नौजवानों में झगड़ा हुआ और मारपीट में सतीनाथ का जवान बेटा जनार्दन मारा गया। फिर तो पूरे क़स्बे में तनाव पसर गया। दंगा न भड़कने पाए, इसलिए प्रशासन ने क़स्बे में कर्फ़्यू लगा दिया। ऐसे में, याक़ूब मास्टर को एक दूसरे तरह की चिंता पैदा हो गई थी। होली के कपड़े तो सिल कर ग्राहकों को दिए जा चुके, मगर ईद के कपड़ों की बड़ी खेप दुकान के भीतर बंद थी। घर से बाहर निकलना भी दुश्वार था। ऐसा कोई उपाय नहीं सूझ रहा था कि वे दुकान जाकर कपड़े उठा लाएँ और घर पर ही काम कर लें। जिस तरह के हालात बनते जा रहे थे, उसमें समझ नहीं आ रहा था कि ईद मनेगी भी तो कैसे। ईद मन भी पाएगी या नहीं। लोग नए सिलाए कपड़े पहन भी पाएँगे या नहीं। अजीब तरह का कर्फ़्यू था वह। लोगों का सड़कों पर निकलना मना था, देखते ही गोली मार देने का एलान किया गया था। इस बार रमज़ान के बीच में नवरात्रि आ गई थी। उस रात पूरा क़स्बा जागता रहा। आशंका थी कि रात को कोई बड़ा कांड हो सकता है। मगर, कोई बड़ा कांड होने से इसलिए रह गया कि घटना के फौरन बाद प्रशासन ने कार्रवाई शुरू कर दी थी। मुख्य आरोपी जमील मिस्त्री के लड़के उस्मान को बनाया गया था। उसके साथ तेरह और लड़कों को पुलिस पकड़ ले गई। ज़्यादातर नामज़द याक़ूब मास्टर के मुहल्ले के ही थे। स्वाभाविक ही, मुहल्ले में तनाव सबसे ज़्यादा था। तरह-तरह की बातें। रात भर

जमील मियाँ के घर के बाहर जमावड़ा रहा। सलाह-मशविरे होते रहे कि उस्मान की ज़मानत के लिए किसे वकील किया जाए। मौलवी रहमतुल्ला का मशविरा था कि वकील कोई मुसलमान ही होना चाहिए। हिंदू वकील का कोई भरोसा नहीं। सब अपनी जान-पहचान, नाते-रिश्ते में कोई काबिल वकील तलाशने में जुटे रहे।

सुबह तक यह बात खुल कर साफ हो गई थी कि फसाद शुरू हुआ था ईरान-इज़राइल जंग पर बहस से होते हुए शिया-सुन्नी, फिर हिंदू-मुसलमान और माँ-बहन के रिश्तों पर आकर टिक जाने की वजह से। यह भी पता चला कि मरहूम जनार्दन हर वक़्त गाँजा-भाँग के नशे में गर्क रहता था। होली के दिन शायद उसने कई तरह के नशे एक साथ कर रखे थे। बताया गया कि उस्मान और जनार्दन में गहरी दोस्ती थी। जनार्दन अक्सर उस्मान की मोटरसाइकिल रिपेयरिंग की दुकान पर ही बैठकबाज़ी किया करता था। मगर, होली वाले दिन अचानक वह दोस्ती दुश्मनी में बदल गई। बात इतनी बढ़ी कि क़त्ल तक पहुँच गई। हालाँकि उस क़स्बे में हिंदू-मुसलमान का फ़र्क़ पिछले कुछ सालों में बढ़ा ज़रूर था, मगर अब भी वैसी कड़वाहट नहीं बन पाई थी कि वे हर वक़्त एक-दूसरे के ख़िलाफ़ नफरत से भरे रहने लगें। दोनों की एक-दूसरे पर कारोबारी निर्भरता बनी हुई थी। इसलिए होली, दिवाली और ईद पर दोनों के बीच खुल कर मुबारकबाद दी-ली जाती थी। मगर कुछ बाहरी, सियासती लोगों को यह एका रास नहीं आता था। वे लगातार इसे तोड़ने के उपाय तलाशते रहते थे। इस होली उन्हें वह मौक़ा मिल ही गया था।

चौक पर होली खेली जा रही थी। कुछ नौजवान सुबह से ही शराब के नशे में ग़र्क थे। मुसलमान मुहल्ले के लड़के भी हमेशा की तरह इस बार होली खेलने वालों में शामिल थे। रंग-गुलाल फेंकना, फिल्मी गानों पर नाच-गाना चल रहा था। उसी बीच नशे में धुत जनार्दन ने ईरान को लेकर कोई गाली और इज़राइल की तारीफ़ में कोई फिकरा उछाल दिया था। उस्मान ने उस बात को मज़ाक में लिया और उसने भी कोई तंज़ भरा मज़ाकिया जुमला उछाल दिया था। इस तरह दोनों के बीच बहस और लहजे की तल्खी बढ़ती गई थी। फिर मामला केवल उस्मान और जनार्दन के बीच का नहीं रह गया। दो गुट बन गए और दोनों गुत्थम-गुत्था हो गए। चश्मदीदों का तो कहना था कि उस्मान ने जनार्दन का क़त्ल नहीं किया। जनार्दन इस क़दर नशे में धुत था कि ख़ुद को सँभाल नहीं पा रहा था। हाथापाई में उसे धक्का लगा और वह गिर गया। उसका सिर चबूतरे के कोने से टकराया और वह वहीं ढेर हो गया। चश्मदीदों का यह बयान उस्मान को बचाने के लिए काफी था, मगर यह भरोसा किसी को नहीं हो पा रहा था कि अदालत में यह बात कितनी दमदार साबित हो पाएगी। मामला क्या रूप लेगा, यह तो आख़िरकार पुलिस की जाँच रपट पर मुनहसर होगा। यही चिंता की असली वजह थी कि पुलिस कहाँ तक सरकार की मंशा के ख़िलाफ़ जाकर जाँच करेगी। इसे लेकर रिश्वत वगैरह के बारे में भी सोचा गया, मगर इसे भी कोई कारगर उपाय नहीं पाया गया।

अगले दिन मुहल्ले की सेहरी में दस्तरख़्वान की जगह मायूसी बिछी थी। नमाज़ में मौलवी रहमतुल्ला ने तकरीर की थी, 'सुना है, कुछ नौजवान इधर-उधर बौखलाहट भरी बातें करते फिर रहे हैं। उन्हें सँभालने-समझाने की ज़रूरत है। कुछ शरारती लोग तो लगातार हमें उकसाने की कोशिश करते ही रहते हैं कि हम कुछ ऐसा कहें, कुछ ऐसा करें, जिससे उन्हें बलवा करने का मौका मिले। मगर हमें अपने पर क़ाबू रखना है। कहीं भी कुछ ऐसी बातें नहीं करनी है, कहीं भी किसी से नहीं उलझना है कि बेवजह का फ़साद शुरू हो। रमज़ान का पाक महीना हमें अमन और दूसरों को माफ़ करने का मौक़ा देता है। हम अल्लाताला से दुआ करें कि वे हमें और हमारेअपनों को सलामत रखें।' याकूब मास्टर की ख़ाली बैठने की आदत नहीं थी। उनके हाथ चलते रहें, तो उन्हें सुकून रहता है। मगर, इस कर्फ्यू ने उन्हें घर के भीतर क़ैद कर रखा था। वे घर के भीतर थे और उनके भीतर शोर मचाती, चीखती-चिल्लाती पूरी दुनिया थी। उस दुनिया में वे यह समझ नहीं पा रहे थे कि किस तरह अपनी आँखें और कान बंद करके पूरी तरह अपने साथ रह सकें। इसी बेचैनी में उन्होंने अपने फ़ोन पर ख़बरें चला दीं। ख़बरें बरस रही थीं कि रात भर जंग में क्या हुआ। पिछली रात ईरान ने एक साथ कई शहरों पर बम दागे। बहरीन में सबसे अधिक नुकसान की ख़बर थी। ईरान ने अमेरिका का एक सबसे ताक़तवर जंगी जहाज़ मार गिराया था। ख़बरों में बताया जा रहा था कि अमेरिका को अपने उस जंगी जहाज़ पर बड़ा नाज़ था। उसने अब तक उस जहाज़ की तकनीक किसी को नहीं बेची-बताई थी। ऐसा जहाज़, जिसे रडार भी नहीं पकड़ सकता। इसलिए ईरान ने उस जहाज़ को मार गिराया तो आज की सबसे बड़ी ख़बर वही बनी थी। हर चैनल पर उसी को लेकर चर्चाएँ थीं। मगर याक़ूब मास्टर के लिए सबसे बड़ी ख़बर बहरीन पर हुए हमले की थी। उनके भीतर का शोर कुछ और बढ़ गया था। मौसम में ठंड होने के बावजूद उनके शरीर में पसीना चुहचुहा आया था। बेचैनी में उन्होंने चादर उतार दी थी। मानों, शोर चादर के साथ ही उनसे लिपटा हुआ था। उन्हें लगा था कि चादर उतार फेंकने से शोर शांत हो जाएगा।

मगर, ऐसा हुआ नहीं। अचानक एक शोर बाहर की तरफ़ शुरू हो गया, जो याक़ूब मास्टर के भीतर के शोर को दबा कर कानों में भय भरने लगा था। वे तय नहीं कर पा रहे थे कि शोर वाक़ई बाहर का है या उनके भीतर का शोर ही निकल कर बाहर गली में गूँजने लगा है। तभी भीतर से हड़बड़ाई हुई बेगम ने आकर ख़बर दी, 'बाहर शायद कुछ हो गया है, देखो तो।' याक़ूब मास्टर में जैसे किसी ने चाभी भर दी हो। वे उठ कर चल पड़े। मोबाइल हाथ में ही था। उस पर ख़बरें चल रही थीं। खबरों में बमों और मिसाइलों के दागे जाने की तफ्सीलें और ज़ोरदार आवाज़ें थीं। बहरीन के उन ठिकानों के नाम गिनाए जा रहे थे, जिन पर पिछली रात बम गिरे थे। याक़ूब मास्टर ने दरवाज़ा खोला, तो बाहर का शोर घर में घुस आया। वह शोर तो क्या, चीखोपुकार ज़्यादा

थी। दो बुलडोज़र हड़हड़ाते हुए गली में घुस आए थे। याकूब मास्टर के सात घर आगे ही जमील का घर था। वे समझ गए थे कि बुलडोज़र उसे ही ढहाने आए हैं। जमील की बीवी चीख-चीख कर गुहार लगा रही थी। कुछ लोग बुलडोज़रों के आगे खड़े हो गए थे। हेलमेट पहने, बंदूकों से लैस पुलिसवाले डंडे फटकारते हुए उन्हें रास्ता ख़ाली करने को धमका रहे थे। याकूब मास्टर के कानों में अशरफ़ मियाँ की आवाज़ पड़ रही थी, 'आप इस तरह किसी का घर नहीं गिरा सकते। इसके लिए पहले अदालत से नोटिस लाना पड़ेगा। आख़िर घर जमील का है, उसका तो कोई दोष नहीं। आरोप उसके बेटे पर है। उसके ख़िलाफ़ जो भी जायज़ कार्रवाई हो, कीजिए। इस तरह किसी का घर गिराने का आपको कोई अधिकार नहीं है। हम इस हरकत के ख़िलाफ़ अदालत जा रहे हैं।'

'अदालत जाना हो, प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति के पास जाना हो, जहाँ जाना हो, जिसके पास जाना हो, जाइए। मगर, हमें जो ऊपर से आदेश मिला है, वह तो हम पूरा करके ही वापस लौटेंगे। आप लोग हमारी ड्यूटी में बाधा मत डालिए। हमें बल प्रयोग करने पर मजबूर मत कीजिए। छोड़िए, रास्ता छोड़िए।' पुलिस अधिकारी का धमकाने वाला स्वर गूँजा था। याकूब मास्टर को समझ नहीं आ रहा था कि ऐसी स्थिति में उन्हें क्या करना चाहिए। वे कर भी क्या सकते हैं। यह दृश्य उनके मुहल्ले में नया ज़रूर था, उनके इतना करीब ज़रूर पहुँच गया था, पर उनके लिए नया नहीं था। पिछले कुछ सालों में ऐसे दृश्य न जाने कितने तो न जाने कहाँ-कहाँ पैदा होते ही रहते हैं। याकूब मास्टर मस्जिद के बाहर चबूतरे पर खड़े हो गए थे। सामने बुलडोज़र रोकने के लिए ज़ोर आजमाइश चल रही थी और हाथ में पकड़े मोबाइल पर ख़बरें बज रही थीं। उसी शोरोगुल में एक ख़बर उनके कानों से टकराई थी- ईरान ने होर्मुज जलडमरू में तेल-गैस के जहाज़ों की आवाजाही पर रोक लगा दी है। वह समंदर में बम बिछा रहा है। ख़बर में यह भी बताया जा रहा था कि ईरान के इस क़दम से पूरी दुनिया में तेल का भारी संकट पैदा हो जाएगा। खाना बनाने की गैस नहीं मिल पाएगी।

इधर फ़ोन पर ख़बरें बरस रही थीं, उधर सामने पुलिस और मुहल्ले के लोगों के बीच बहसाबहसी चल रही थी। इसी बीच फ़ोन घनघना उठा। याकूब मास्टर ने देखा, दिलशाद का फ़ोन था। वीडियो कॉल। वे पलट कर घर की तरफ़ बढ़ने लगे। फ़ोन उठा लिया। छूटते ही पूछा, 'सब ख़ैरियत तो है न बेटा?' उन्होंने अपना लहजा सामान्य रखने की कोशिश की थी, पर शायद वे उसमें कामयाब नहीं हो पाए थे।

'यहाँ तो सब ख़ैरियत है अब्बू। मगर, वहाँ इतना शोर क्यों हो रहा है?'

'कुछ नहीं, नाली ख़ुद रही है। ख़बर आ रही थी कि रात को बहरीन पर काफी बम गिरे हैं!'

'हाँ, मगर कोई ज़्यादा नुकसान नहीं हुआ है। मिसाइलें इंटरसेप्ट कर ली गई थीं, उनका मलबा गिरने से थोड़ा-बहुत नुकसान पहुँचा है। हम उस जगह से काफी दूर हैं। आप लोग ख़बरें सुन कर परेशान मत हुआ कीजिए। हम सब ख़ैरियत से हैं। अगर कुछ होगा, तो बताएँगे ही। दिन में एक बार बात हो जाया करे, वही काफी है।'

'ठीक है बेटे, अपना ख़याल रखिए। अल्ला सलामत रखे आप लोगों को।'

याकूब मास्टर को पहली बार अपने पर हैरानी हुई कि वे कितनी सफाई से झूठ बोल सकते हैं। फिर उन्होंने जैसे ख़ुद को सही साबित करने की गरज से ख़ुद को ही डपटा- झूठ न बोलता तो क्या करता। अगर बता देता कि उस्मान ने जनार्दन का क़त्ल कर दिया और पुलिस ने उसे गिरफ्तार कर लिया है। उसका घर तोड़ने के लिए बुलडोज़र आ धमके हैं। तो, दिलशाद का जी ही तो दुखाता। वह पहले ही कम परेशानी नहीं झेल रहा। वह अपने आप से जंग लड़ रहा है। इधर की ख़बर सुनेगा, तो उसे हम लोगों को लेकर नई चिंता पैदा हो जाएगी। फिर उन्हें याद आया, दिलशाद भी तो उस्मान का दोस्त था। दोनों साथ ही स्कूल में थे। आईटीआई करने के बाद दिलशाद भी उस्मान की तरह बिजली मेकेनिक की दुकान खोलना चाहता था। अच्छा हुआ कि उसके मामू ने उसे बहरीन भिजवा दिया। अगर दिलशाद यहाँ होता, तो क्या पता कल की वारदात में वह भी शामिल होता या कर दिया गया होता। फिर, क्या पता पुलिस उसे भी गिरफ्तार कर ले जाती और हम उसे छुड़ाने के लिए वकील की तलाश में हलकान हुए फिरते। क्या पता, आज हमारे घर के बाहर भी बुलडोज़र खड़े होते। सोच कर याकूब मास्टर कुछ ग़ुस्से, कुछ ख़ौफ़, कुछ नफ़रत से काँप उठे थे। फिर, चलते-चलते वे कुछ इस तरह बड़बड़ाने लगे, जैसे उनके सामने बेगम खड़ी हों और याकूब मास्टर उन्हें समझा रहे हों, 'यहाँ दिन-ब-दिन जैसे हालात बनते जा रहे हैं, हम अपने ही मुल्क में बाहरी मुल्कियों की तरह रह रहे हैं। इससे तो बेहतर ही हाल होगा वहाँ बहरीन में। वहाँ, बहरीन में, जो हालात पैदा हुए हैं, वे आज नहीं तो कल सुधर ही जाएँ, मगर यहाँ के हालात सुधरेंगे कि नहीं, कोई दावा नहीं कर सकता। अच्छा ही है कि दिलशाद बहरीन में है। वह वहीं रहे, तो अच्छा है। शादी के बाद अपनी बीवी को भी साथ ले जाए।'

याकूब मास्टर बड़बड़ाए जा रहे थे और मोबाइल पर ख़बरें बज रही थीं। बीच-बीच में बमों के धमाके और मिसाइलें चलने की आवाज़ें भी सुनाई दे जाती थीं। याकूब मास्टर अपने घर के बाहर आकर रुक गए थे। उन्होंने गली की तरफ़ पीठ कर ली थी। उनकी पीठ के पीछे शोर बढ़ता जा रहा था। उस शोर में फ़ोन पर उभरती मिसाइलें दागे जाने की आवाज़ें दब गई थीं। अब लाठियों की तड़तड़ और चीख-चिल्लाहट सुनाई देने लगी थी। घर से निकाल कर गली में पटके जाते बरतन-भाँडे की आवाज़ें आने लगी थीं। याकूब मास्टर उस आवाज़ की तरफ़ पीठ किए खड़े रहे। पीछे बुलडोज़रों के चलने, दीवारों के गिरने की आवाज़ें और लोगों की चीखोपुकार तेज़ हो गई थी। घर के बाहर ही खड़े होकर जैसे हलफ़ उठाते हुए उन्होंने ख़ुद से कहा था, 'चाहे जो हो जाए, दिलशाद मियाँ को यहाँ हरगिज़ नहीं रहने दूँगा।'

000

भाषांतर

डांसिंग गर्ल

सिंधी कहानी

लेखक- ज़ैब सिंधी

अनुवाद- देवी नागरानी

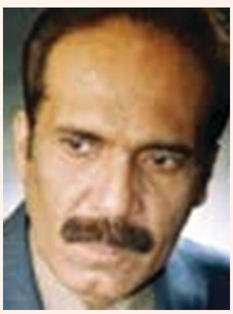

ज़ैब सिंधी
221-थर्ड नॉर्थ स्ट्रीट, जी.एम.बी.एस.
हाउसिंग सोसाइटी, जामशोरो रोड,
हैदराबाद, सिन्ध, पाकिस्तान

देवी नागरानी
19700 वैदरवैन वे, लोक्साहैची,
फ़्लोरिडा-33470-2153,
पॉम बीच काउंटी, यू एस ए
मोबाइल- 201-637-8485
ईमेल- dnangrani@gmail.com

मोहन-जोदड़ो की चाँदनी रात, बेहद सौंदर्यमय इंद्रजाल फैला हुआ था। गोवर्धन ने म्यूज़ियम वाले रास्ते से चढ़ाव पर चढ़कर पहली गली में पैर धरा, तो गली के अनोखे माहौल के कारण उसके बदन में ख़ौफ़ की लहर सरसरा गई। वह गली की नुक्कड़ पर ही खड़ा हो गया। उसके सामने गली के समस्त खंडहर चौदवीं की चाँदनी में अद्‌भुत नज़र आ रहे थे। खंडहरों की दीवारों से टकराकर हवा की सरसराहट गोवर्धन के ख़ौफ़ को और अधिक गहरा कर रही थी। हवा के साथ, गली में ज़मीन के ऊपर उड़ते सूखे पत्ते देखकर उसे महसूस हुआ जैसे कई रूह गली में दौड़ रही हैं। गोवर्धन ने मोहनजोदड़ो की पहली गली के पहले मोड़ से ही लौट जाना चाहा। वापस लौटने की ख़्वाहिश में पैरों ने साथ देने से इंकार कर दिया। उसके ज़हन में उसकी स्वर्गवासी महबूबा माया प्रथयाणी की मधुर संगीत जैसी आवाज़ गूँज उठी, जिसने तोहफ़े के तौर पर कलाई वाली घड़ी गोवर्धन की कलाई पर पहनाते कहा था, 'यह घड़ी हर लम्हा तुम्हें याद दिलाएगी कि मैं तुम्हारे साथ हूँ!'

गोवर्धन माया की मुहब्बत की यह आख़िरी निशानी आज शाम को मोहनजोदड़ों के एक खंडहर की दीवार पर भूल आया था, जब उसने धूमिल चेहरे और बाहों को धोने के लिए घड़ी उतारी थी। गोवर्धन ने वापस मुड़कर चाँदनी में नहाई इंतहाई ग़ज़ब-सी सौंदर्यमय गली की ओर देखा। उसने अपने भीतर माया के लिए आकर्षण महसूस किया और उसकी आख़िरी निशानी फिर से हासिल करने के लिए गली के अंदर घुस गया। मुंबई स्थित गोवर्धन की माया प्रथयाणी से मुलाकात गोवा शहर की एक डांस पार्टी में हुई थी, जहाँ वह व्यापार के सिलसिले में गया था। पहली नज़र में ही वह उस पर मोहित हो गया था। एक कोने में बैठी माया की ओर जब गोवर्धन ने हाथ बढ़ाया, तो माया की आँखों में अजीब उदासी उतर आई। माया ने मुँह फेर लिया। तब गोवर्धन 'सॉरी' कहकर आगे बढ़ने वाला था कि माया अपना हाथ गोवर्धन की ओर बढ़ाते हुए उठ खड़ी हुई और फिर रात के पिछले पहर तक उसके आग़ोश में नाचती और झूमती रही।

पैंतीस साल के गोवर्धन की कितनी ही लड़कियों से दोस्ती रही थी। बेशुमार हसीनाओं ने उसकी बाँहों के घेरे में डांस किया था। कितनी ही जवान लड़कियों से उसकी साँसें टकराई थीं, पर किसी की भी ज़ुल्फ़ें गोवर्धन के पैरों की ज़ंजीर न बने सके। माया ही वह पहली लड़की थी जिसके सामने वह बेबस हो गया था। पहली मुलाक़ात के चार दिन पश्चात्‌ ढलते सूरज की सुनहरी किरणों के फैलाव में गोवा के ख़ूबसूरत समुद्र के किनारे चलते गोवर्धन माया का हाथ थामे खड़ा था। माया मुस्कराती रही, तब गोवर्धन ने कहा था- 'माया! मैं यह हाथ कभी भी छोड़ना नहीं चाहता।' माया ने गर्दन झुकाकर अपने पैरों की ओर देखा। समुद्र की लहर उसके

पाँवों को छूकर वापस जा रही थी। माया ने सिर ऊपर उठाया, तो उसके होंठों की मुस्कान भी समुद्र की उस लहर की मानिंद ग़ायब हो चुकी थी और उसकी भूरी आँखों में गहरी उदासी उतर आई थी।

'क्या सोच रही हो माया?' गोवर्धन ने उसके दोनों हाथ अपने हाथों में थाम लिए।

'गोवर्धन! ये हाथ जल्दी ही जुदा हो जाएँगे।' समुद्र किनारे खड़ी माया की आँखों में भी समुद्र छलकने लगा।

'पर क्यों? क्यों माया? गोवर्धन ने माया के हाथों की पकड़ और मज़बूत करते हुए पूछा।

'इसलिए...इसलिए गोवर्धन...कि...कि मैं...।' माया अपनी बात पूरी न कर पाई। अपने दर्द पर काबू पाने के लिए उसने अपने होंठ दाँतों में भींच लिए। गोवर्धन ने माया के भीतर की पीड़ा को उसकी आँखों में देख लिया। उसे लगा कि माया के शब्दों से कोई तूफ़ान आने वाला है। बावजूद इसके वह हक़ीकत जानने के लिए व्याकुल हो उठा- 'बताओ क्या बात है माया?'

माया की भूरी आँखों से दो आँसू लुढ़ककर लौटती लहरों के साथ विलीन हो गए।

'प्लीज़ माया, बताओ तो क्या बात है?' कहते हुए गोवर्धन के हाथों में माया के हाथों पर दबाव बढ़ गया। माया ने अपने हाथ उन हाथों से छुड़ा लिए।

'गोवर्धन मैं इस दुनिया में... चंद दिनों की मेहमान हूँ।'

'क्या?' गोवर्धन ने अपने भीतर कुछ टूटता-बिखरता महसूस किया।

'हाँ गोवर्धन, ल्यूकेमिया की मरीज़ हूँ... ज़िंदगी पल-पल मुझसे जुदा हो रही है। अब कोई भी इलाज मेरी टूटती साँसों की डोर को मज़बूत नहीं कर सकता।' माया ने एक लंबी साँस लेते हुए अपनी बात पूरी की। सामने अथाह समंदर था और गोवर्धन का गला ख़ुश्क था। वह कुछ कहना चाहता था, पर शब्दों ने उसका साथ नहीं दिया। उसके भीतर अँधेरा फैलने लगा।

'मैं तो अपने जीवन के आख़िरी दिन गुज़ार रही हूँ। जल्दी ही यहाँ से विदा हो जाऊँगी।'

ठंडी साँस लेते हुए माया आसमान की ओर देखने लगी। माया की बात सुनकर गोवर्धन के दिमाग़ में जैसे किसी बम फटने का धमाका हुआ। उसकी आँखों के आगे धुँधलका छा गया और उसका सिर चकराने लगा। अगर माया उसे थाम न लेती, तो वह गिर जाता। माया के कंधे पर सिर रखकर सिसकियाँ भरता रहा। माया ने उसकी ओर देखते हुए कहा- 'गोवर्धन कुछ आँसू बचाकर रखो, मेरे बाद काम आएँगे।'

तीन दिनों के बाद माया मर गई, पर गोवर्धन के बहते आँसू रुकने का नाम ही नहीं ले रहे थे। माया के अंतिम संस्कार के समय वह अन्य मौजूद लोगों से अलग और अनजान बनकर खड़ा रहा। आँसू बहाता रहा। अचानक एक वृद्ध शख़्स ने उसके कंधे पर हाथ रखते हुए कहा, 'तुम गोवर्धन ही हो न?'

गोवर्धन ने हैरानी से अपनी भीगी पलकें उठाकर उसकी ओर देखते हुए कहा-'हाँ।'

'मैं रामचंद हूँ, माया का नाना।' ठंडी आह भरते हुए बूढ़े ने कहा।

'पर... पर आपने...कैसे पहचाना मुझे!' गोवर्धन ने हैरानी से पूछा।

'माया ने मुझे सब कुछ बताया था।' रामचंद ने दुख भरे लहज़े में कहा।

'मैंने तुम्हारे दर्द से तुम्हें पहचाना।

गोवर्धन के बेइंतहा दर्द को रामचंद ने अपने सीने लगाते हुए कहा, 'गोवर्धन! माया की अस्थियों की राख तुम्हारी अमानत है।'

'क्या?' गोवर्धन पर जैसे हैरत का पहाड़ गिरा हो।

'हाँ बेटे।' रामचंद ने उत्तर दिया, 'वह तुम्हारे लिए एक बंद लिफाफा भी छोड़ गई है। आकर अपनी अमानत ले जाना।'

कुछ दिनों के बाद जब गोवर्धन माया के नाना रामचंद के गोवा वाले महलनुमा घर के ड्रांइगरूम में बैठा था, तब रामचंद ने एक लोटा और एक बंद लिफाफा उसके सामने रखा। गोवर्धन ने काँपते हाथों से बंद लिफ़ाफ़ा खोला, तो उसमें से माया की वसीयत निकली। माया की वसीयत पढ़कर वह हैरान होकर रह गया।

'क्या लिखा है माया ने?' रामचंद ने पूछा।

गोवर्धन ने माया की वसीयत वाला काग़ज़ रामचंद की ओर बढ़ा दिया। उसे पढ़कर वह ख़ुद भी हैरान रह गया।

'मुझे समझ में नहीं आ रहा है कि माया ने क्यों ऐसी वसीयत बनाई है?' गोवर्धन के पास वैसे भी कोई जवाब न था। रामचंद ने वसीयत के काग़ज़ गोवर्धन को देते हुए कहा, 'माया का जन्म तो यहाँ हुआ था, उसके माता-पिता का भी जन्म यहीं हुआ। सिंध से तो सिर्फ़ मैं यहाँ आया था।' गोवर्धन ख़ामोश बैठा रहा। रामचंद कुछ पल गहरी सोच में खोया रहा। फिर ऐनक उतारकर आँख के पोरों से आँसू सोख लिए। ठंडी साँस लेते हुए कहा, 'सिंध की याद तो सदा मेरे सीने में धधकती रही, उसे देखने की तमन्ना न तो कभी माया को रही, न उसके माता-पिता को।'

'तो फिर यह माया की... वसीयत!' गोवर्धन के लहजे में हैरत के साथ कशमकश के आसार भी थे। वह अधूरा वाक्य भी पूरा न कर पाया।

'माया तो कभी सिंध के बारे में बात भी नहीं करती थी।' रामचंद ने कहा, 'हाँ अलबता मोहनजोदड़ो के ज़िक्र से उसकी आँखों में चमक आ जाया करती थी। उसके ज़िक्र से वह बैठे-बैठे पता नहीं कहाँ खो जाया करती थी।'

गोवर्धन माया के ख़यालों में खो गया।

'तुम माया की वसीयत को अंजाम दोगे गोवर्धन?' रामचंद ने जानने की इच्छा ज़ाहिर की।

'हूँ!' ख़यालों से बाहर आते ही गोवर्धन ने हामी भरी।

'हाँ, माया की वसीयत की ख़ातिर मैं ज़रूर मोहनजोदड़ो जाऊँगा'

गोवर्धन आज सुबह ही मुंबई से कराची हवाई अड्डे पर पहुँचा था। मोहनजोदड़ो की फ्लाइट न मिलने के कारण, कराची हवाई अड्डे से टैक्सी पकड़कर वह उसी शाम मोहनजोदड़ो आ पहुँचा। टैक्सी से उतरकर एक छोटा हैंड-बैग लिए वह इस्टोपा की तरफ़ चला। बैग में माया की राख का लोटा व पीने का पानी था। इस्टोपा पर पहुँचकर गोवर्धन ने बैग खोली। माया के अस्तित्व की आख़िरी निशानी लोटे से निकाली और वसीयत के अनुसार उसकी राख को दड़े पर से चारों दिशाओं में बिखेर दी, जो हवाओं के साथ दूर-दूर तक फैलकर मोहनजोदड़ो की मिट्टी से मिल गई। गोवर्धन का दिल भर आया, आँखें नम हो गईं। कुछ देर वहीं खड़े होकर उसने मोहन-जोदड़ो के खंडहरों को देखा और फिर वापस जाने के लिए नीचे उतर आया। इस्टोपा से नीचे उतरकर वापस जाने की बजाए बेअख़्तियार उसके पाँव मोहनजोदड़ो की वीरान गलियों में शाम की परछाइयों के साथ घूमते रहे और वह माया के बारे में सोचता रहा। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि माया ने अपने अस्तित्व की राख को मोहनजोदड़ो की मिट्टी में मिलाने की वसीयत क्यों की थी। सोच-सोचकर उसका सिर फटने लगा। थकान के कारण वह खंडहर की दीवार पर बैठ गया तो उसे लगा, माया मुस्कराकर उसका शुक्रिया अदा कर रही हो। एक पल के लिए उसे लगा माया उसके पास बैठी है। वह एकदम आँखें खोलकर अपने चारों ओर देखने लगा। माया तो नहीं थी, पर गोवर्धन को शिद्दत से महसूस हुआ जैसे माया उसके आस-पास ही कहीं मौजूद थी। गोवर्धन को अपनी यह हालत समझ में न आई और उसका गला ख़ुश्क होने लगा। उसने हैंडबैग से पीने का पानी निकाला, पिया और फिर कमीज़ की बाँहें ऊपर करके घड़ी उतारकर, अपनी धूमिल बाँहें धोई, मुँह पर पानी के छींटे लगाए और उठ खड़ा हुआ। एक नज़र ढलते सूरज

पर डालते हुए बेहद उदास कदमों से वापस लौट गया। गोवर्धन ने उसी रात कराची वापस जाकर, मुंबई लौटना चाहा; पर टैक्सी ड्राइवर की सलाह पर रात के चार पहर किसी होटल में गुज़ारने के लिए लाड़काणे की ओर जा रहा था। निरंतर वीरान रास्ते के बाद जब सामने रोशनी नज़र आई, तब उसे बताया गया कि वह रोशनी लाड़काणे शहर की है। वक़्त देखने के लिए गोवर्धन ने जैसे ही कलाई पर नज़र डाली, तो वह चौंक पड़ा। उसकी कलाई पर माया की आख़िरी निशानी, वह घड़ी गुम थी जिसे पहनाते हुए माया ने कहा था कि 'यह घड़ी हर लम्हें तुम्हें याद दिलाएगी कि मैं तुम्हारे साथ हूँ।'

गोवर्धन को बरबस याद आया कि उसने घड़ी उतारकर हाथ-मुँह धोते समय दीवार पर रखी थी। बिना वक़्त गँवाए उसने टैक्सी ड्राइवर को वापस मोहनजोदड़ो लौटने का आदेश दिया। न चाहते हुए भी ड्राइवर को लौटना पड़ा। चाँदनी रात में मोहन-जोदड़ो की वीरान गलियों से गुज़रने वाला गोवर्धन एकमात्र प्राणी था। रह-रहकर हवाओं का तेज़ रुख उसे चौंकने पर मजबूर करता रहा। चलते-चलते उसे महसूस हुआ जैसे कोई दूसरा भी उसके साथ चल रहा है। उस दूसरे के होने का अहसास उसके भीतर ख़ौफ़ बनकर छा गया। वह चलते-चलते रुक गया, पर गर्दन मोड़कर किसी भी तरफ़ देखने की हिम्मत न जुटा पाया। चुपचाप अपने स्थान पर खड़े-खड़े ही उसे किसी और के होने का यक़ीन हो गया। पीछे मुड़कर देखा, कोई न था। उसी ख़ौफ़ की चादर को ओढ़कर वह सन्नाटों के बीच से गुज़रते हुए आगे बढ़ा। अचानक उसे पाँव के पास किसी हरकत का अहसास हुआ। देखा, तो पाया एक चूहा उसके पैरों से बिछड़ता हुआ किसी खंडहर की ओर गुम हो गया। अभी उसने चैन की साँस ली ही थी कि एक साँप उसका रास्ता रोककर आगे बढ़ने लगा। गोवर्धन ख़ुद को सँभाले इससे पहले साँप अपना रास्ता बदलकर किसी खंडहर में खो गया। उसे हैरत हुई कि यह सब-कुछ इतनी तेज़ी से क्यों और कैसे हो गया? पर उसे एक बात का यक़ीन ज़रूर हो गया कि उसके आस-पास कोई है, पर कौन...? इस सोच ने उसके रौंगटे खड़े कर दिए। ख़ौफ़ ने उसे घेर लिया। तिरछी निगाहों से उसने आस-पास देखा और सन्नाटे से ख़ुद को घिरा हुआ पाया। जाने क्या सोचकर उसने दौड़ना शुरू किया। दौड़ते हुए उसने महसूस किया जैसे एक नहीं, कई आत्माएँ दौड़ रही हों। उसने रफ़्तार और तेज़ कर दी। उसे लगा जैसे किसी ने पीछे से उसकी कमीज़ के कॉलर में हाथ डालकर उसे पकड़ने की कोशिश की। वह लड़खड़ाकर नीचे गिर पड़ा। एक ठंडी साँस लेकर वह उठ बैठा...हर तरफ़ ख़ामोशी थी। उसके भीतर में किसी और के होने का एहसास ख़त्म हो गया। वह उठा, कपड़े झटके और उसी गली की ओर चला, जिसके खंडहर की दीवार पर उसने माया की दी हुई वह घड़ी उतारकर रखी थी। चाँदनी में हर चीज़ साफ़ नज़र आ रही थी, बावजूद इसके उसने दीवार पर कितनी ही बार हाथ फिराया, पर मिट्टी के सिवा कुछ भी उसके हाथ न आया। मायूसी ने उसकी आँखों में आँसू भर दिए। अचानक कुछ फासले पर पड़ी किसी चमकती चीज़ पर उसकी नज़र पड़ी। उस वस्तु को उठाते ही मायूसी ने उसे फिर घेर लिया, क्योंकि वह सिगरेट के पैकेट पर लगी चमकती पन्नी थी। उसे फेंकते हुए वह आगे ध्यान से देखते हुए कदम बढ़ा रहा था कि शायद उसे अपनी खोई हुई चीज़ मिल जाए। अचानक किसी औरत की आवाज़ उसके कानों में टकराई, 'क्या ढूँढ़ रहे हो?'

गोवर्धन ने हैरत में सिर ऊपर उठाया। उसके सामने बीस-बाईस साल की बेहद हसीन लड़की, चाँदनी समान उजली चादर ओढ़े खड़ी थी। वह सोचने लगा कि रात के वक़्त मोहनजोदड़ो की इन सूनी गलियों में यह लड़की कहाँ से आई..? लड़की ने अपनी चादर से हाथ बाहर निकालकर कहा, 'यही चीज़ ढूँढ़ रहे हो न?'

गोवर्धन को ख़ुद से दूर, दस फुट के फ़ासले पर खड़ी लड़की के हाथ में वही घड़ी नज़र आई। अपने ख़ौफ़ पर काबू पाने की कोशिश करते हुए उसके मुँह से सिर्फ़ एक ही शब्द निकला-'हाँ!' लड़की सामने खड़ी मुस्करा रही थी। वह धीरे-धीरे क़दमों से उसकी ओर बढ़ने लगी। डर की इंतहा के कारण गोवर्धन पाँव पीछे करते हुए लड़खड़ाया...वह गिरने ही वाला था कि लड़की उसके सामने कुछ यूँ आकर खड़ी हुई कि उसका सारा डर ग़ायब हो गया। सफ़ेद चादर में लिपटी उस लड़की के हसीन चेहरे में उसने एक कशिश महसूस की। उसे आभास हुआ कि वह उस लड़की से पहले भी कहीं मिली चुका है, पर कहाँ? कुछ याद नहीं आया। लड़की गोवर्धन का हाथ थामे, घड़ी उसकी कलाई पर बाँधते हुए कहने लगी, 'यह घड़ी हर लम्हा तुम्हें याद दिलाएगी कि मोहनजोदड़ो की इस गली में तुम मुझे मिले थे।' लड़की का छुआव उसने दिल तक महसूस किया। आख़िर पूछ ही लिया, 'क्या नाम है तुम्हारा?'

'संबारा।' लड़की ने संजीदगी से उत्तर दिया।

गोवर्धन लड़की की संजीदगी पर मुस्करा उठा और उसकी आँखों में देखते हुए कहा, 'संबारा तो मोहनजोदड़ो की नर्तकी का नाम है।'

'वही तो हूँ मैं।' लड़की ने फिर ठहराव भरे लहजे में जवाब दिया। गोवर्धन ठहाका मारकर हँस पड़ा, लड़की ने भी कोई प्रतिक्रिया नहीं जताई। ख़ामोश खड़ी रही। सफ़ेद चादर में लिपटी हल्की मुस्कान लबों पर लिए वह चाँदनी में बेहद हसीन नज़र आ रही थी।

'अगर तुम संबारा हो, तो फिर तुम्हारी उम्र कितनी है?' गोवर्धन ने मुस्कराते पूछा।

'पाँच हज़ार बीस साल!' लड़की ने बेहद संजीदा स्वर से कहा। गोवर्धन ने इतना ज़ोर से ठहाका मारा कि उसकी आवाज़ रात के सन्नाटे में समस्त वातावरण में गूँज उठी।

'क्यों दीवानों की तरह हँस रहे हो?' लड़की ने सवाल किया।

'इसलिए, क्योंकि तुम दुनिया की पहली लड़की हो, जिसने अपनी उम्र कम बताने की बजाय ज़्यादा बताई है। वह भी पाँच हज़ार साल ज़्यादा बताई है।'

'मेरी उम्र बीस साल तब थी, जब यह शहर आज़ाद हुआ था। पाँच हज़ार साल तो मैंने इस शहर की बरबादी के साथ गुज़ारे हैं।' बेहद उदासी-भरे स्वर में लड़की ने अपने आस-पास देखते हुए कहा। पहले तो गोवर्धन कुछ हैरान हुआ, दूसरे लम्हें मुस्कराते हुए शरारती ढंग से कहा, 'तो तुम संबारा हो? मोहनजोदड़ो की 'डांसिंग गर्ल!'

'हाँ!' लड़की ने फिर वही जवाब दिया।

'मैं आधी दुनिया घूम आया हूँ, हज़ारों लड़कियों से मिला हूँ, पर इतना बड़ा झूठ मैंने आज तक किसी भी लड़की को कहते हुए नहीं सुना।' लड़की की आँखें नम हो गईं। उसने दुख-भरे लहजे में कहा, 'मुझे अंदाज़ा न था कि जिसका मैं इंतज़ार करती रही, वह आने पर मुझ पर 'झूठी' होने का इल्ज़ाम लगाएगा।'

लड़की की ग़मगीन आवाज़ ने उसे भी दुखी कर दिया। कुछ विस्मय से उसकी ओर देखते हुए कहा, 'माफ़ करना मैंने तुम्हारा दिल दुखाना नहीं चाहा, पर तुम मेरा इंतज़ार कर रही हो, यह बात मुझे समझ नहीं आई।'

'वक़्त पर हर बात समझ जाओगे!' लड़की ने अपनी आँखें पोंछते हुए कहा।

'तुम्हारी कोई भी बात मुझे समझ में नहीं आ रही है। सच बताओ कि तुम कौन हो।'

'मैंने तुमसे कुछ भी झूठ नहीं कहा है। मैं मोहनजोदड़ो की नर्तकी संबारा ही हूँ।' पहले से ज़्यादा पुख़्तगी और संजीदगी से लड़की ने जवाब दिया।

'मैं तुम्हें झूठी नहीं कह रहा, पर इस बात पर क़तई यक़ीन नहीं कर सकता कि तुम नर्तकी 'संबारा' हो।' लड़की ने गोवर्धन की आँखों में आँखें डालकर देखा और फिर बिना पीठ दिखाए कुछ क़दम पीछे हटती गई। चाहते हुए भी गोवर्धन ने कुछ नहीं कहा। वह चाहता था कि लड़की अपनी राह चली जाए, तो वह भी लौट जाए। पर वह कुछ क़दम जाकर रुक गई और उदास आँखों से गोवर्धन की ओर देखती रही। गोवर्धन उससे उदासी का कारण पूछने ही वाला था कि अचानक लड़की ने अपनी वजूद पर लपेटी चादर उतार फेंकी। गोवर्धन आश्चर्य से उसकी ओर देखता रहा। अब उसके सामने चाँदनी रात में नहाई एक निर्वस्त्र लड़की खड़ी थी और क्षण-भर के बाद उसने नाचना शुरू कर दिया। वह बेख़ुदी में नाचती रही, झूमती रही। गर्दन से कमर तक और कमर से पैरों तक उसका हर अंग गोलाकार घेराव में घूम रहा था। उसके जिस्म का हुस्न भी हर कोण से जीवित हो उठा था और हरकतों की लय-ताल के साथ नृत्य को जलवेदार बना रहा था। न जाने कितनी देर वह इसी तरह नाचती रही, झूमती रही। इस हालत का पता गोवर्धन को भी न रहा। जब वह नर्तकी धीरे-धीरे लय-ताल पर नाचते हुए नीचे ज़मीन पर बैठ गई और उसने अपना सिर गोवर्धन के घुटनों पर झुका दिया। उस वक़्त गोर्वधन को पहली बार आभास हुआ कि उस लड़की का जूड़ा संबारा के बुत में बने बालों की तरह था। चाँदनी में अपने सामने संगमरमर के हसीन बुत जैसी जीती-जागती लड़की देखकर भी उसके मन में कोई इंसानी लज़्ज़त

का भाव न उठा। हैरत-भरे माहौल में वह मौन बैठा रहा और निरंतर उस लड़की की ओर देखता रहा, जो उसके घुटनों में मुँह झुकाए बैठी रही। फिर दोनों की नज़रें आपस में मिली, तो लड़की ने अपने घुटनों और बाहों में अपना नग्न शरीर ढाँपने की कोशिश की। गोवर्धन ने कुछ फासले पर पड़ी चादर उठाकर उसके शरीर को ढक दिया। फिर ख़ुद उठा और हाथ का सहारा देकर लड़की को खड़ा किया, कुछ इस तरह कि वह उस लड़की के साँसों की रवानी को महसूस कर सकता था।

'अभी भी तुम्हें यक़ीन नहीं आया कि मैं संबारा हूँ?'

गोवर्धन ने फिर भी कोई जवाब नहीं दिया। वह अपने भीतर उसके लिए एक अजीब कशिश और अपनापन महसूस कर रहा था। लड़की का हाथ अब तक उसके हाथ में था।

'कहो, तुम्हें विश्वास हुआ कि मैं मोहन-जोदड़ो की नर्तकी संबारा ही हूँ।' लड़की ने अपना प्रश्न दोहराया।

'तुम जो कोई भी हो, तुमसे न जाने कैसा लगाव व अपनापन महसूस कर रहा हूँ।' गोवर्धन ने उसकी चमकती आँखों में देखते हुए उसके हाथ पर अपनी पकड़ और मज़बूत कर ली। लड़की भी कुछ न बोली। वह कुछ इस तरह मुस्कराई जैसे गोवर्धन ने उसके दिल की बात ज़ुबाँ पर लाई थी। मदहोशी की रौ में गोवर्धन भी बेअख़्तियारी में कह उठा, 'मैं ये हाथ कभी भी छोड़ना नहीं चाहता।'

बेहद उदास स्वर में लड़की बोली, 'ये हाथ...जल्दी जुदा हो जाएँगे।'

गोवर्धन इस इत्तिफ़ाक पर हैरान हो गया कि यही वाक्य किसी वक़्त उसने माया का हाथ पकड़कर कहा था और इस लड़की ने वही जवाब दिया, जो उस वक़्त माया ने उसे दिया था। गोवर्धन सोच में पड़ गया।

'तुम क्या सोच रहे हो?' लड़की ने पूछा।

'हूँ!' गोवर्धन ख़यालों की दुनिया से बाहर निकल आया।

'पर क्यों जुदा होंगे ये हाथ?' उसने सवाल किया।

'इसलिए कि तुम पाँच हज़ार वर्षों के फ़ासले को पार नहीं कर पाए हो!' लड़की ने उदास, सर्द साँस लेते हुए कहा। गोवर्धन की समझ में कुछ भी न आया। बस, बात करने की ख़ातिर कहा, 'तो फिर वक़्त के उस फ़ासले को तुम ही लाँघ आओ।'

'नहीं, अब तो ज़्यादा वक़्त मेरे पास भी नहीं।' लड़की ने अपना हाथ गोवर्धन के हाथ से छुड़ा लिया।

'पर क्यों?' अचानक गोवर्धन परेशान हो उठा।

'उस क्यों का जवाब मेरे पास नहीं है, मैं जा रही हूँ।' उदासी को अपनी साँसों में भरते हुए लड़की ने कहा।

गोवर्धन ने बेचैनी से लड़की की कलाई को पकड़ते हुए पूछा, 'क्यों नहीं है मेरी बात का जवाब तुम्हारे पास?'

'कुछ राज़ फक़त राज़ ही रहते हैं।' कहते हुए उसने अपनी कलाई गोवर्धन के हाथों से आज़ाद कराई और खंडहरों की ओर चलती गई।

'कहाँ जा रही हो?' लड़की के साथ-साथ चलते गोवर्धन ने सवाल किया।

'अपने घर!' बिना उसकी ओर देखे लड़की ने उत्तर दिया।

'कहाँ है तुम्हारा घर?' गोवर्धन के मन में एक उम्मीद जागी।

'आओ मैं तुम्हें अपना घर दिखाती हूँ।' लड़की ने उसका हाथ पकड़ा और ले जाकर एक खंडहर के सामने खड़ा कर दिया... 'यह है मेरा घर।'

बेयक़ीनी के साथ गोवर्धन ने लड़की के चेहरे की ओर देखा और यह देखकर हैरान हुआ कि उसकी आँखें लाल हो गई थीं। उसने अपना कौतुहल ज़ाहिर करते हुए कहा, 'ये क्या हो गया है तुम्हारी आँखों को?'

'मेरी आँखों में सदा की विरह का दर्द समाया है।' लंबी साँस भरते हुए लड़की ने कहा। गोवर्धन कुछ कहना चाहकर भी न कह सका।

'तुम्हारा और मेरा साथ बस इतना ही था। मैं जा रही हूँ, पर तुम उदास मत होना।' उसकी लाल आँखों से अश्रु बह निकले और गोवर्धन बस बुत बना खड़ा रहा। लड़की ने अपने दोनों हाथों से गोवर्धन का चेहरा अपनी ओर खींचते हुए उसके होठों को चूमा, जिसकी तपिश गोवर्धन ने अपने भीतर तक महसूस की, पर वह न हिला न डुला। बुत का बुत ही बना खड़ा रहा। लड़की खंडहरों के भीतर विलीन हो गई और कुछ पल बाद खंडहर के भीतर से आवाज़ आई-'गोवर्धन!' गोवर्धन के बुत बने हुए जिस्म में जैसे जान पड़ गई। उसने अपने होठों पर लड़की के होंठों के स्पर्श को महसूस किया।

'गोवर्धन!' दुबारा लड़की की आवाज़ सुनकर गोवर्धन पर जैसे पहाड़ गिर पड़ा। क्योंकि न तो लड़की ने उसका नाम पूछा था और न ही उसने ही लड़की को अपना नाम बताया था। गोवर्धन तेज़ी से खंडहर के भीतर चला गया, पर वह उसे वहाँ नहीं मिली। सन्नाटे के घेराव से बाहर आकर देखा, तो सामने मोहन-जोदड़ो का इस्टोपिया दिखाई दिया, जिसके ऊपर चौदहवीं का चाँद दमक रहा था।

इस्टोपिया की ओर देखते हुए गोवर्धन दर्द-भरी आवाज़ में कराह उठा-'संबारा!' उसकी आवाज़ मोहनजोदड़ो की गलियों में गूँज उठी। उसने कई बार आवाज़ दी। चीख़ा-चिल्लाया, पर कहीं से भी उसकी सदा को आवाज़ न आई। मायूसी की हालत में उसकी नज़र किसी चमकती धातु पर पड़ी हाथ बढ़ाकर धूल में से उठते ही उसके हाथ में मोहनजोदड़ो की नर्तकी 'संबारा' का छोटा-सा बुत दमकने लगा।

गोवर्धन ने आश्चर्य से अपने सामने पड़े मिट्टी के ढेर को देखा, जाने क्यों उसे महसूस हुआ जैसे माया के जिस्म की तमाम राख यहीं आकर इकट्ठा हो गई थी। वही राख, जो शाम को स्टोपिया पर खड़े होकर उसने पूरे मोहन-जोदड़ो पर बिखेर दी थी। अपने हाथ में पकड़े 'संबारा' के बुत से उसे माया के जिस्म की ख़ुशबू आती हुई महसूस हुई। गोवर्धन ने संबारा के बुत को सीने से लगाया और बेअख़्तियार होकर रोने लगा। उसे लगा उसकी माया फिर एक बार उससे बिछड़ गई है...।

000

साक्षात्-देवात्मा

गुजराती कहानी
मूल लेखक- निमिषा मजमुंदार
अनुवाद- राजेन्द्र निगम

निमिषा मजमुंदार
7/8, जूनी पावर हॉउस सोसायटी, रोटरी भवन के पीछे, जेलरोड, मेहसाणा, 384001, गुजरात
मोबाइल- 9898322931

राजेन्द्र निगम
10-11, श्री नारायण पैलेस सोसायटी, झायडस हॉस्पिटल रोड, थलतेज़, अहमदाबाद- 380059, गुजरात
मोबाइल- 9374978556
ईमेल- sukhshanti.biz@gmail.com

सुबह छह बजे पूर्व की खिड़की से सूरज की किरणें सरला अम्मा के चेहरे पर आईं और उनकी आँख खुली। खिड़की के बाहर पक्षियों के कलरव और कोयल की कुहू-कुहू की जुगलबंदी वातावरण में समाई हुई थी। आज सुबह से ही घर में अच्छी-ख़ासी धमाल चल रही थी। 'भाभी... भाभी...' की तेज़ आवाज़ों के साथ सविता गीले कपड़े से दरवाज़े-खिड़की पोंछ रही थी। रामजी सोफ़ा और कार्पेट पर वैक्यूम कर रहा था और विभा तेज़ आवाज़ में लोगों को सूचनाएँ दे रही थी। छोटे बेटे मालव और मनीषा का परिवार आज अमेरिका से आने वाला था। सरला अम्मा बड़े बेटे मेहुल और विभा के साथ अहमदाबाद ही रहती हैं। एक दो बार अमेरिका गईं, लेकिन वहाँ उन्हें बिल्कुल अच्छा नहीं लगा। वे लोग दो-चार वर्ष में आ जाते और अम्मा से मिल लेते थे। सरला अम्मा जब गई थीं, मालव के पुनीत और परी छोटे थे, अब तो पुनीत ने एक मराठी लड़की से शादी कर ली है और परी...।

सरला अम्मा के मन में अरुचि घूम रही थी, हंह। परी के साथ उसका गोरा बॉयफ्रेंड भी आने वाला है। सुमंत राय के इस पूरे वैष्णव कुटुंब में विविध-रंगी संस्कृति की ऐसी मिलावट। बस, यही देखना बाकी था। मेहुल-विभा का उत्कर्ष दो वर्ष पहले ही बंगाली बहू लेकर आया था। हालाँकि, अभिज्ञा तो जैसे ही इस घर में आई, वह सब में घुलमिल गई। रोज़ मेरे लिए वह तुवर की दाल बना देती है। उस मराठी के साथ भी शायद कोई परेशानी नहीं होगी, टूटी-फूटी हिन्दी तो आती ही होगी। लेकिन वह गोरा...! अँग्रेज़ी के अलावा तो बोलता भी नहीं होगा और न मालूम स्वभाव कैसा होगा। छह महीने के बाद परी उसके साथ शादी करने वाली है और वह भी यहाँ अहमदाबाद में और इसीलिए वे लोग सब कुछ तय करने के लिए यहाँ आ रहे हैं। वे... उसके घर के सब लोग शादी में अहमदाबाद आएँगे ? उसके माता-पिता तो न मालूम कैसे होंगे। उनके साथ बातचीत क्या करना, यह भी नहीं सूझेगा। हमें तो बस गूँगे ही रहना है।'

उसके साथ याद आया कि छह नंबर वाली शारदा जी कहती थी, 'इन लोगों के देश में तो मेरा, तेरा और हमारा, ऐसे शंभू मेले जैसे कुटुंब होते हैं। हमें तो बगैर बोले-चाले सब कुछ देखते रहने है।'

'यह विभा भी... वह भी माइक के लिए कैसी पागल हो गई है। उसके लिए ऊपर के कमरे में नए पर्दे और मैट्रेस तो ठीक, पूरा बाथरूम भी तुड़वाकर नया बनवाया है। क्या ज़रूरत थी उसके पीछे ऐसा पागल होने की। हालाँकि परी की शादी के मौक़े पर सब एक साथ आएँगे और तब वर्षों के बाद पूरा घर भर जाएगा, इस बात का आनंद। फिर घर में धमाल... और मस्ती...। हे ठाकुरजी! मेरे बच्चों को सदैव हँसता-खेलता रखना। अभी दस बजे तो सब घर पहुँच जाएँगे। मैं जल्दी से फारिग होकर पूजा करने के लिए बैठ जाऊँ, नहीं तो सब आ जाएँगे और फिर पूजा नहीं होगी।' सरला अम्मा की पूजा चालू थी और कार पहुँच गई।

विभा की 'आओ... आओ...' की गूँज अंदर तक सुनाई दी। मालव ने उसके स्वभाव के अनुसार तंज़ कसा, 'भाभी... कैसी हो ? आप तो ग़ज़ब की जम गईं यहाँ। बहू आ गई है वह तो आपके ऊपर दिखाई दे रहा है। पर यह मेहुल बेचारा दुबला हो गया है।' सबकी खिलखिलाहट के साथ हँसने की आवाज़ से घर भर गया। मनीषा को आवाज़ सुनाई दी, 'भाभी, अम्मा जी की पूजा अभी पूरी नहीं हुई ?' अम्मा जी, अधूरी पूजा से नहीं उठेंगी। चलो बच्चों, अम्मा जी के चरण स्पर्श करो। माइक प्लीज़, रिमूव योर शूज़।'

परी चहकी, 'पुनीत, शुभांगी, माइक, कम ऑन... लेट्स गो एंड मीट अम्मा जी फर्स्ट।' आवाज़ के तूफ़ान के साथ पदचाप भी घर में आ गई। सरला अम्मा की आरती की घंटी की गूँज को दबाते हुए, पुनीत और परी के स्वर एक साथ सुनाई

पड़े, 'अम्मा जी... हम आ गए...।' अम्मा जी ने आरती नीचे रखी और दोनों अम्मा जी से

लिपट गए। बहुत रोके, लेकिन फिर भी सरला अम्मा के हर्ष के आँसू बह निकले। देर तक वे बंद आँखों के साथ दोनों के सिर पर हाथ घुमाती हुई, बैठी रहीं। उनकी सजल आँखें जब खुलीं, तब पीछे खड़ी दो आकृतियाँ नज़र आईं। शुभांगी ने तुरंत चरण स्पर्श किए। उसे भी दोनों हाथों में समा लिया। परी के पास खड़े हुए छह फुट से भी ऊँचे हष्ट-पुष्ट गोरे युवक को पहले तो उसे क्या करना है, यह समझ में नहीं आया, इसलिए कुछ देर असमंजस में खड़ा रहा, फिर हाथ हिला कर मुस्काया। सरला अम्मा ने दूर से आशीर्वाद की मुद्रा में हाथ ऊँचा किया, 'हंह। इसे आशीर्वाद दो या न दो, क्या फ़र्क़ पड़नेवाला है।'

सरला अम्मा की हृदय की कड़वाहट अंत में फुसफुसाहट के स्वर में परी के कान में आई, 'परी, तुम्हें दूसरा कोई पसंद नहीं आया, जो इसको पकड़ कर ले आईं ? पैर छूना तो दूर, यह तो दूर खड़ा-खड़ा दादी के सामने हाथ हिला रहा है! अरे रे... इस गोरी चमड़ी में संस्कार कहाँ से आएँगे। इसे विवाह संबंध निभाने का भी क्या मालूम पड़ता होगा ?'

'अम्मा जी, संस्कार हमसे कुछ अलग होते होंगे। इनके माता-पिता की शादी की पचासवीं वर्षगाँठ अभी मनाई। और पसंद आने का तो ऐसा है कि ये आपके ठाकुर जी, कभी हाथ भी नहीं हिलाते हैं, लेकिन फिर भी वे आपको कितना पसंद आते हैं ? बस ये मुझे भी पसंद आ गए।'

'हाय हाय...! इसके साथ मेरे ठाकुर जी की तुलना हो सकती है ? मेरे हज़ार हाथ वाले श्यामजी ठाकुर जी तो मेरी सब बात सुनते हैं। वे तो साक्षात्-देवात्मा हैं। और यह...।'

'अम्मा जी, यह भी साक्षात्-देवात्मा हैं और मेरी सब बात सुनते भी हैं।'

'तुमसे तो तौबा। तुम तक नहीं पहुँच सकती। तुम्हारी जीभ पहले ही बालिश्त भर लंबी थी और अब तुमने वक़ालत पढ़ ली, इसलिए यह तो बहुत लंबी हो गई है।' मालव और मनीषा ने पैर छुए और फिर उसके बाद ड्राइंग रूम में कुटुंब-मेला जम गया। वर्षों से इकट्ठी हुई सब बातों के साथ चाय पीते रहे। मनसुख मौसा का फ्रैक्चर, सुधा काकी की छोटी की सगाई, पड़ोसवाली मीना काकी की मंदार का विदेश गमन और ऐसी बहुत सी बातें चलती रहीं। अम्मा जी की चकोर नज़र समझ गई कि शुभांगी आते ही अभिज्ञा के साथ रसोई-घर में मदद के लिए पहुँच गई। महाराज गर्मागर्म भजिया उतार रहा था और दोनों बहुएँ सबको आग्रहकर परोस रही थीं। अमेरिका में पली-बड़ी शुभांगी की टूटी-फूटी हिन्दी घर में सबको पसंद आ गई। बहुत वर्षों के बाद कुटुंब-मेला जमा था। सरला अम्मा की नज़र सब पर घूमते-घूमते माइक पर आकर रुक गई।

'अरे। यह गोरा भी आराम से भजिए झपट रहा है। हाँ, तो उसे ऐसा चटाकेदार खाने के लिए कहाँ मिलेगा। यह सब कैसा माहौल...। जाने दो... विभा को अलग से बताना पड़ेगा कि मेरे बर्तन और चमची अलग रखें, नहीं तो इस जन्म में मेरी देह भ्रष्ट हो जाएगी। मेरे ठाकुर जी की सेवा अपवित्र हो जाएगी।' ठाकुर जी का तो बहाना है, सरला अम्मा का स्वयं का मन ऐसी ही उलझनों में उलझा हुआ रहता था। तब ही परी उठी और उनके पास में आकर बैठ गई, 'अम्मा जी, मेरे इन साक्षात्-देवात्मा ठाकुर जी को बताऊँ ? देखना हो।' कहती हुई वह उठी और फटाफट सीढ़ियाँ चढ़ने लगी और दूसरी ही सीढ़ी पर, 'ओ, माँ...।' कहती हुई बैठ गई। माइक सबसे पहले उसके पास पहुँच गया, 'परी, आर यू ऑलराइट ?' सब उठकर परी के चारों ओर जमा हो गए। परी की भर्राई हुई आवाज़ आई, 'ओ...! आई आई स्प्रेंड माय फुट। अं... इट हर्ट्स ए लॉट। ओ माँ...! आई वांटेड टू गो अपस्टेयर्स टू सी माय रूम। माइक विल यू प्लीज़ टेक मी ?'

मालव ने तो कह दिया, 'कमरा देखने की इतनी क्या जल्दी है ?'

विभा ने कहा, 'खड़ी रह, मूव लाती हूँ।' लेकिन माइक तो, 'ओ, श्योर। माय प्लेज़र।' कहते हुए उसने उसे दोनों हाथ में उठा लिया और सीढ़ी चढ़ने लगा। परी ने सरला अम्मा की ओर देखा और आँख मिचका दी। सरला अम्मा मुस्कराती रहीं, 'इतनी बड़ी हो गई, तब भी वैसे की वैसी रही।'

दूसरे दिन से घर के सब लोग शादी की तैयारी में लगभग पूरे दिन बाहर रहते। परी के पास तो उसकी, माइक की और माइक के घर के सब सदस्यों की शॉपिंग की बड़ी सूची थी। वह उसकी भागमभाग में पड़ी रहती और साथ ही मितभाषी माइक को भी अपने साथ घसीट ले जाती। घर में रहती सरला अम्मा और उनके ठाकुर जी। रात में सब इकट्ठे हो जाते और तब घर में प्राण आते। महाराज रोज़ नए-नए व्यंजनों के रसथाल, टेबल पर सजाते और सब गपशप करते हुए उन पर टूट पड़ते। उनमें सबसे अधिक आग्रह माइक के लिए होता और वह भी मज़े से सब व्यंजनों का आनंद लेता। रात होती और जगमगाती रोशनी, परिवार के सदस्यों की आवाज़ और हँसी-ठहाकों के साथ बंगला जीवंत हो जाता और साथ ही सरला अम्मा भी।

दो दिन में सरला अम्मा के दिल पर उफान चढ़ा हुआ आनंद का उल्लास कुछ कम हुआ। उनके साथ पूरे दिन बैठने वाला कोई फुर्सत में नहीं था, इसलिए वे वापस अपनी दिनचर्या में व्यस्त हो गईं। सवेरे पूजा, भोजन के बाद आराम, चार बजे घर के बगीचे में पत्थर की पगडंडी पर लकड़ी लेकर चलना और फिर उनकी शाम आवाज़ से गूँजने लगती। माइक शुरुआत में तो उन सब से अलिप्त रहकर सब देखने-समझने की कोशिश करता, लेकिन धीमे-धीमे वह इन सब में घुलने-मिलने लगा। दो दिन में तो वह मानो वर्षों से उन सबको जानता-पहचानता है, इस तरह से बात करने लगा। उसका मज़ाकिया स्वभाव और उसकी बुद्धिमत्ता के कारण, मेहुल और विभा तो उसकी प्रशंसा करते हुए थकते नहीं थे। सुबह उठकर घर के सब सदस्यों को 'गुड मॉर्निंग' कहने के साथ, उसने जब सविता को भी झुककर 'गुड-मॉर्निंग' कहा, तब तो वह साड़ी के सिरे को मुँह में दबाकर हँसते-हँसते दुहरी हो गई। रसोई में जाकर महाराज को जब 'वेरी टेस्टी गुलाब जामुन, थैंक यू।' कहा, तब माइक से क़द्र पाकर महाराज धन्य-धन्य हो गए। परी ने जैसा सिखाया, उसके अनुसार उसने सुबह पूजा करने के लिए बैठी हुई अम्मा जी को प्रणाम किया, लेकिन सरला अम्मा को

इसमें बिल्कुल मज़ा नहीं आया, 'सिर्फ नाटक। हंह!'

दूसरे सब माइक के फैन क्लब के सदस्य बनकर ख़ुश थे, केवल सरला अम्मा को वह किसी तरह ख़ुश नहीं कर सका था। उसकी त्वचा का श्वेत रंग सरला अम्मा की आँखों में चुभता था। अम्मा के साथ जब आँख मिलती, उतनी देर वे खिल उठती उसकी मुस्कराहट, अम्मा को अकारण ही कचोटती रहती। उसकी अँग्रेज़ी भाषा अम्मा को हमेशा भारत देश पर राज करने वाले अँग्रेज़ों की याद दिलाती और तब उनका रोष अधिक तीव्र हो जाता। टी-शर्ट और शाट्र्स में से दिखाई देता उसका स्नायुबद्ध सुडौल शरीर सबके लिए ईर्ष्या का कारण बनता, लेकिन अम्मा जी के लिए वह अरुचि का उफान बन जाता, 'किसे मालूम क्या खाकर ऐसा पहाड़ जैसा हो गया है। हंह। सुमंत राय की तीसरी पीढ़ी में घर में जमाई आया और वह भी ऐसा। जो हमारे आचार-विचार नहीं समझता, उन्हें अपनाने की तो बात ही कहाँ है। परी को कहना पड़ेगा कि भविष्य में बच्चे आएँ, तब उन्हें अपने संस्कार दे। बाकी... यह तो...!' विचारों की कड़वाहट मन में व्याप्त हो जाती।

आज घर में कोई नहीं था। दोपहर में भोजन के बाद आराम कर शाम चार बजे रोज़ की तरह सरला अम्मा बगीचे में घूमने के लिए निकलीं। मन में 'श्री कृष्ण शरणं मम' का जप चालू था। कुछ क़दम चले होंगे कि पीछे से आकर माइक उनके साथ हो गया।

'हेलो अम्मा जी, हाउ आर यू ?' कहते हुए उसने अपना दायाँ हाथ आगे बढ़ाया। सरला अम्मा ने अंदर की अनिच्छा को दबाया और चेहरे पर कृत्रिम मुस्कराहट ओढ़ी और उसके हाथ को अनदेखा करते हुए औपचारिकता के नाते पूछा, 'यू ? होम ? नो शॉपिंग ?' उसने अपने पेट पर हाथ रखकर कहा, 'नो... नॉट फीलिंग वेल...! स्टमक अपसेट...!'

अम्मा जी के होंठ के कोने अब वास्तविक मुस्कराहट के साथ चहक उठे, 'जो न देखा हो, वह दिखाई दे, फिर तो जो आए, उस पर झपट्टा, फिर तो तुम्हारा पेट ख़राब होगा ही न। पाव भाजी, डोसा, गुलाब-जामुन, जलेबी जो आए वह सब गटक लो। आज शाम को तो तुम्हें खिचड़ी खिलाऊँगी और वह भी एकदम फीकी। बेटमजी... ठीक लपेटे में आए हो।' इतने लंबे वक़्त से अकारण उत्पन्न दाह मिटाने के लिए यह मार्ग मिल गया था। मन में मुस्कराती हुई वे चलती रहीं। उनके भाव विश्व से बिल्कुल अनजान माइक उन्हें साथ देने के लिए चुपचाप साथ में चलता रहा। माइक को आज कैसी खिचड़ी खिलाई जाए, इन्हीं विचारों में डूबी सरला अम्मा का ध्यान चुका और एक ऊँचे पत्थर की ठोकर लगी।

'ओ माँ...!' की चीख के साथ, माइक उन्हें पकड़े, उसके पहले उनकी भारी-भरकम काया, धम्म के साथ ज़मीन पर गिर पड़ी। लकड़ी के दो टुकड़े हो गए, चश्मा कहीं दूर गिरा और सरला अम्मा की चीखें वातावरण में व्याप्त हो गईं, 'ओ माँ... मर गई...! मेरा पैर टूट गया, लगता है...! महाराज... सविता... अरे सब कहाँ गए...?' और फिर बाकी के शब्द ज़ोर-ज़ोर से रुदन की आवाज़ में दब गए। घर में कोई हो तो आए न ? महाराज और सविता सब्ज़ी लेने के लिए गए थे। प्राण निकल जाए, ऐसी सरला अम्मा को असह्य पीड़ा होने के बाद भी, उन्हें अहसास हुआ कि माइक ने उन्हें दोनों हाथों में उठा लिया है और दौड़ लगाई है। बंद हो रही आँखों की चश्मा के बगैर की धुँधली दृष्टि और रहा-सहा भान, जाते-जाते, उन्हें इतनी समझ देते गए कि वह माइक के मज़बूत हाथों में फूलों की तरह सँभली हुई थी। दवाखाने में उन्हें होश आया, तब पैर में प्लास्टर का अहसास हो रहा था। पलंग के चारों ओर बच्चों के चिंताग्रस्त चेहरे धुँधले दिखाई दिए। आँखों की भारी पलकें, आधी खुली हुई थीं और एक ख़ास चेहरे को ढूँढ़ रही थी। गले में से किसी तरह आवाज़ निकली, 'माइक...? कहाँ... हो...?' परी दूर खड़े माइक का हाथ पकड़कर खींचती हुई ले आई। सरला अम्मा का दायाँ हाथ उसके हाथ को स्पर्श कर रहा था और अर्धजागृत मन में अचानक उभरा, 'श्याम ठाकुर साक्षात्-देवात्मा तो हैं, लेकिन कभी- कभी वे रंग बदल कर भी आते हैं!'

000

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।

पत्रिका का नाम : विभोम स्वर

1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : ज़ुबैर शेख़।

पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।

पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।

पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम : पंकज कुमार पुरोहित। पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

दिनांक 10 मार्च 2026

हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित

(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

व्यंग्य

आठवें आयोग की आठ कलाएँ

दिलीप कुमार

हिन्दी बेल्ट में आठवें नंबर को जीवन में बहुत बड़ा महत्त्व दिया जाता है। मसलन कुछ उच्च पदों पर आसीन लोगों का कुछ लोग नवीं फेल कहकर मज़ाक उड़ाते रहते हैं जो कि ठीक बात नहीं है। वह लोग आठवीं पास भी तो हैं। यह क्या मामूली बात है? आठ नंबर हमारे यहाँ एक महत्त्वपूर्ण एवं निर्णायक नंबर माना जाता है। महाभारत में गंगापुत्र भीष्म भी अपने पिता की आठवीं संतान थे। उनके बाक़ी सात भाई तो जीवित न रह सके मगर उन्हें इच्छामृत्यु का वरदान प्राप्त हुआ था। इसी तरह भगवान् श्रीकृष्ण भी अपने माता-पिता की आठवीं संतान थे। वह भी सकुशल एवं निर्बाध रहे जबकि उनके अन्य भाई जी नहीं सके। आठ की महिमा अपरंपार है। पर आजकल तो आठवें वेतन आयोग की चर्चा ज़ोरों पर है। जहाँ छठवें वेतन आयोग के भारी भरकम एरियर ने लोगों की ज़िंदगी बदल दी थी। उस दौर में एरियर की बदौलत सरकारी कर्मियों ने कारें, प्लॉट और मकान इतने ख़रीदे कि जीडीपी में उछाल आ गया था। लोग सातवें वेतन आयोग से ही ऐसे उम्मीद लगाए बैठे थे मगर छठवें से अलहदा सातवें वेतन आयोग को सरकार ने समय से लागू कर दिया तो लोगों को ज़्यादा एरियर नहीं मिल सका। सो अब लोगों की उम्मीदें आठवें वेतन आयोग पर टिकी हैं।

देश में क्रिकेट के बाद सबसे ज़्यादा चर्चित विषय फिटमेंट फैक्टर है। हर बंदा अपनी-अपनी केलकुलेशन करने बैठा है कि उसे कितना मिलना है और उसके कितने सपने इससे पूरे होंगे। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि जब से आठवें वेतन आयोग के गठन की घोषणा हुई है तब से ही सरकारी कर्मचारियों की ख़ुशी का कोई ठिकाना नहीं रहा। आमतौर पर सरकारी कर्मचारी अपने काम के वर्कलोड से काफी नाख़ुश रहा करते हैं, उनके भी मन में ख़ुशी ने आख़िरकार दस्तक दी। जबकि सरकारी कर्मियों के घरवालों के तो मन में लडडू फूटने लगे हैं। एकाउंट्स वाले अंसारी साहब जिनकी आवाज़ बहुत कम सुनने को मिला करती थी। क्योंकि पहली बात तो अपने काम के वर्कलोड से गुमसुम रहा करते थे, और अगर नाख़ुश नहीं होते थे तो गुटखा की पीक को मुँह में भरे रहते थे जिससे उनके चेहरे के मनोभाव पता नहीं लग पाते थे। वे हज़रात आजकल ख़ुशी से गुनगुनाते रहते हैं। वह आठवें वेतन आयोग से जुड़ी सोशल मीडिया की हर पोस्ट और रील देखा करते हैं और कोई भी नया अपडेट होने पर चहकते हुए लोगों को ख़ुशमिज़ाजी से मोबाइल खोल कर दिखाते और फिर जोड़-गाँठकर बताते, "भाईजान मेरे हिसाब से तो चौंतीस परसेंट इंक्रीमेंट पक्का है। अगर इंफ्लेशन इंडेक्स को सरकार ने ठीक से कंसीडर किया तो यह बढ़त 44-45 परसेंट तक भी हो सकती है।" उनकी बात पर विभाग के लोगों को संशय होता तो कोई गूगल करता तो कोई एआई से पूछता। गुप्ता जी का तो यह प्रिय शगल बन गया था। वह रोज़ ऑफ़िस में आकर मोबाइल में ऊँची आवाज़ में हैंडफ्री करके एआई से पूछते कि "आठवें वेतन आयोग के लागू होने से सरकारी कर्मचारियों की सेलरी कितने परसेंट बढ़ेगी?"

एआई से उनको जैसे ही उनके मन पसंद उत्तर मिलते वैसे ही उनकी बाँछें खिल जातीं। उनकी इस बाल सुलभ क्रीड़ा पर दफ्तर के लोग मंद-मंद मुस्कराते। मिस गुलाटी ने अपनी शादी की डेट को आगे बढ़ा दिया है ताकि वह नए वेतन आयोग की बढ़ी हुई आमदनी से सिंगापुर की बजाय स्विट्ज़रलैंड में अपना हनीमून मना सकें। जहाँ आठवें वेतन आयोग की प्रस्तावित आमदनी के इज़ाफ़े की उम्मीद ने सरकारी लोगों की ख़ुशियों को बढ़ा दिया है। वहीं दूसरी ओर समाज के कुछ लोग इस बात से काफी खुन्नस खाए बैठे हैं।

मिसेज़ श्रीवास्तव, जो दिनभर अपनी बालकनी में बैठकर दूसरों के घरों की ख़ुशियाँ और ग़म ताड़ने की निशुल्क सेवा किया करती थीं। वह दूसरों के घरों की सूचनाओं को निकाल कर उसमें तीन-तेरह करके फिर पूरे मोहल्ले में बाँट दिया करती थीं। वह अपने मोहल्ले के तीन

दिलीप कुमार
मालती कुंज कालोनी, आनंद बाग,
बलरामपुर, उप्र 271201
मोबाइल- 9956919354
ईमेल- jagmagjugnu84@gmail.com

पड़ोसियों से आजकल जली-भुनी रहती हैं, क्योंकि वे तीनों सरकारी थे। उनकी वेतन बढ़ने की ख़बरों से उन्हे बेहद नाराज़गी थी। अक्सर वह अपनी बालकनी में बड़बड़ाती रहती, "सरकारी कर्मचारियों को तो पहले से ही सेलरी काफी ज़्यादा थी। सरकार बेवजह फिर इनकी सेलरी बढ़ा रही है। ऐसे तो इन्हें कम काम करने और ज़्यादा सेलरी लेने की आदत पड़ जाएगी।"

वहीं ट्रांसपोर्ट कंपनी चलाने वाले और जीएसटी चोरी का मुक़दमा झेल रहे शुक्ला जी की भी इस मसले पर कमोबेश ऐसी ही राय बन गई थी। वह भी अक्सर दाँत पीसते हुए कहते "सारी मौज तो सरकारी लोगों की है। हम तो बस टैक्स भरने के लिए पैदा हुए हैं।" इस सबके इतर सरकारी कर्मचारियों के घर का माहौल तो और भी मौजूँ हो चला है। सिंह साहब का लड़का हर दिन अपने घर वालों को ताकीद करता है कि "अब मैं साठ-सत्तर हज़ार की स्कूटी से नहीं बल्कि साढ़े तीन लाख की स्पोर्ट्स बाइक से कॉलेज जाऊँगा।" मिसेज़ सिंह ने तो अभी से ही ख़र्चों की एक लंबी लिस्ट बनानी शुरू कर दी थी। उन्होंने ड्राइंग रूम की दीवारों पर लगी सभी तस्वीरों को उतार दिया है और उस पर उन्होंने होम थियेटर लगवाने की बात फाइनल कर दी है। पूरा किचन मॉड्यूलर और ऑटोमैटिक तो हर हाल में होगा ही। मोहल्ले में जो मिसेज़ सक्सेना रहती हैं वह अब अक्सर इतराते हुए बताती हैं कि "मॉर्निंग वाक करने से कोई ख़ास फ़ायदा नहीं है। इससे वज़न बहुत मामूली ही घटता है, मेरे हसबैंड ने कहा है कि जैसे ही वेतन आयोग का एरियर आएगा, वह मेरा लाइपोसक्शन करवा देंगे। इससे बाडी का सारा एक्स्ट्रा फैट निकल जाता है"। उनकी बात सुन कर उनके साथ मॉर्निंग वाक करने वाली महिलाएँ जल-भुन जातीं और कलप कर पीठ पीछे कहतीं कि "इनके कोई बाल बच्चा तो है नहीं सो अपने फिगर को सुधारने के लिए जी भर के ख़र्च कर लें। हमें तो अपने बच्चों की बेहतरी पर ख़र्च करना है"। बच्चों ने अपनी बेहतरी की बात सुनी तो उन्होंने भी प्ले स्टेशन से लेकर हिल स्टेशन तक सपने बुनने शुरू कर दिये।

दफ़्तर का माहौल ख़ासा दिलचस्प हो चला है। दफ़्तर में जो बॉस नामक प्राणी है जिसके हाथ में वार्षिक इंक्रीमेंट और बोनस नाम का राम बाण होता है। इसी के डर से सारे अधीनस्थ उससे साल भर डरे-डरे रहते हैं। बॉस नामक प्राणी भी परेशान है कि वेतन आयोग की वजह से उसके अधीनस्थों की सेलरी तो बढ़ जाएगी मगर इस सब में उनका कोई रोल नहीं होगा। सो वह हितोपदेशक की तरह जब तब समझाते रहते हैं कि "देखो, सरकारी वेतन बढ़ रहा है तो सरकार हमसे उम्मीद करती है कि हमें अपनी परफॉर्मेंस भी बढ़ानी चाहिए। अब सब लोग समय से ऑफ़िस आएँ-जाएँ और काम और भी तेज़ी से किया करें।"

ऑफ़िस के लोग मन ही मन सोच रहे थे, 'यह तो वही बात हो गई कि वेतन की बढ़त अभी लागू नहीं हुई मगर साहब के ताने-उलाहने पहले से ही लागू हो गए।' सोशल मीडिया पर तो इस मसले पर मीम्स की बाढ़ आई हुई है। कितना वेतन बढ़ेगा इसका अभी पता नहीं मगर उस पर मीम इंडस्ट्री ने पहले ही फलना-फूलना शुरू कर दिया। एक मीम तो ख़ासा वायरल हो गया, जिसमें एक सरकारी कर्मचारी को एक आराम कुर्सी पर एसी के नीचे सोते हुए दिखाया गया है और उसके नीचे कैप्शन में लिखा है, "जनता में महँगाई से शोक, पर इनकी तो हर हाल में है मौज।"

वेतन आयोग सिर्फ आमदनी में वृद्धि ही नहीं, बल्कि सामाजिक भूचाल भी लाता है। सरकारी कर्मचारी इस घोषणा के बाद ख़ुद अजीब असमंजस में हैं। एक तरफ़ तो कुछ लोगों की भड़ास, तो दूसरी ओर परिवार के असीमित सपने। वेतन आयोग जहाँ कर्मचारियों के जीवन में कुछ आर्थिक तसल्ली लाता है। वहीं समाज और पड़ोसी इसे जलन और कटाक्ष की नज़रों से भी देखते हैं। सबका अपना-अपना नज़रिया है। लेकिन सरकारी कर्मचारी का जीवन इन्हीं सपनों 'तानों' और ज़रूरी, 'ख़र्चों' के गुणा-भाग के बीच झूलता रहता है।

000

दोहे

आठ दोहे

भारती शर्मा

ना फूलों पर तितलियाँ, ना चिड़ियों का शोर
धुँधली-धुँधली चाँदनी, सूनी-सूनी भोर

नदिया, पर्वत, पेड़ से, जीवन का संचार
पर्यावरण अतिक्रमण की, अब रोको रफ़्तार

शहरी चिड़िया एक दिन, पहुँची अपने गाँव
डाली-डाली कूदती, सोती ठण्डी छाँव

धरती का श्रृंगार ये, वृक्ष वायु औ' नीर
संरक्षण इनका करो, मिटे धरा की पीर

पाँव पसारे जेठ ने, जीना किया मुहाल
बादल भी मुँह फेरते, सूखे नदिया-ताल

प्रकृति की अवहेलना, प्रकृति से खिलवाड़
घिर-घिर आए आपदा, या सूखा या बाढ़

उलट-पलट होने लगा, जग का सभी विधान।
शहरों में हैं जानवर, जंगल में इंसान।।

जितना जगमग जो शहर, उतना ही बीमार।
किस विकास का हम कहें, भला इसे आधार?

000

भारती शर्मा
अभिनव प्रयास, स्ट्रीट-2, चन्द्रविहार कॉलोनी, नगला डालचन्द, क्वारसी बायपास, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)
मोबाइल- 8630176757
ईमेल- bharti31775@gmail.com

व्यंग्य

हम उत्सवधर्मी लोग

विजयानन्द विजय

हम भारतीय बड़े मस्तमौला टाइप के लोग हैं, एकदम केयर फ्री और टेंशन फ्री। चाहे महँगाई हो, बेरोज़गारी हो या और भी किसी तरह की दुश्वारी हो, हम टेंशन बिल्कुल भी नहीं पालते हैं। चाहे सोने-चाँदी के दाम बढ़ जाएँ, साग-सब्ज़ी, तेल-दाल, आटे, पेट्रोल के दाम आसमान छू लें, गैस सिलिंडर की भयंकर किल्लत हो जाए या रुपया रसातल में चला जाए, अपनी बला से। अपने राम का क्या जाता है ? हम तो लाइन में लग जाएँगे। चाहे घंटों लग जाएँ, हमें फुर्सत-ही-फुर्सत है। वैसे भी, आजकल खाने और सोने के सिवा कोई काम है भी तो नहीं। नोटबंदी के समय एटीएम की लाइन में लगने के बाद हम लाइन एक्सपर्ट और परफेक्ट तो हो ही चुके हैं। कहीं भी, किसी चीज़ की लाइन लगवा लो, कोई दिक़्क़त नहीं है। हम लाइन में लगे-लगे मर जाएँगे, पर उफ़्फ़ तक नहीं करेंगे, हाँ। हम कष्ट सहने, बर्दाश्त करने, झेलने और धीरज के हिमालय हैं। शहंशाह हैं।

हम अपना दिमाग़ और बुद्धि बहुत बचाकर रखते हैं भाई, बड़े-बड़े कामों के लिए। फालतू की चीज़ों में हम इसे ख़र्च या मिस यूज़ नहीं करते हैं। कोरोनाकाल याद है न ? हमसे ताली-थाली-ड्रम-डिब्बा जो चाहे पिटवा लो। मोबाइल की लाइट जलवाकर गो-कोरोना-गो करवा लो, हमें कोई परेशानी नहीं है। दिमाग़ और बुद्धि का इस्तेमाल इस तरह के काम में हमने न कभी किया है, न कभी करेंगे। आप आदेश दो बस, फिर देखो। विश्वास न हो, तो गैस संकट पर फिर से ताली-थाली पिटवाकर देख लो। थाली-ड्रम-डिब्बा पिचका न दिया और हथेलियों को लहूलुहान न कर लिया, तो कहना। भाई, हम इसे पर्व की तरह मनाते हैं। फालतू तर्क-वितर्क नहीं करते। हमारे इस विशिष्ट गुण को पूरी दुनिया जानती है।

विश्वास नहीं हो रहा ? अरे भाई, देखो, हम हर पाँच साल में एक बार परीक्षा देते हैं। वोट देते समय भी हम लॉजिकल नहीं होते। नेता जो चुनावी आसमानी वादे करते हैं और जुमले उछालते हैं, उसे हम एक कुशल क्रिकेटर की तरह डाइव मारकर कैच कर लेते हैं- चाहे हम स्लिप में खड़े हों या फारवर्ड शॉर्ट लेग पर, चाहे लाँग लेग में या बाउंड्री पर। नेता जी चाहे बाउंड्री से बाहर की हाँक लें, हम बड़ी कुशलता से उसे लपक लेते हैं। बड़े प्यार से उनके हर गुनाह, भ्रष्टाचार, कुकर्म माफ़ करके सत्ता की कुर्सी पर बिठा देते हैं। फिर चाहे वे हमें फटकारें, दुत्कारें या लतियाएँ, हमें कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। हम इज़्ज़त-बेइज़्ज़त के फालतू चक्कर में पड़ते ही नहीं हैं। टेंशन लेते ही नहीं हैं। धूल झाड़कर फिर खड़े हो जाते हैं और जयकारे लगाते रहते हैं। आप पूछेंगे कि हम इतने बेफ़िक्र कैसे हो सकते हैं, तो बता दें कि बेवजह की चिंता करके बीपी, शुगर के मरीज़ बनकर मरने से अच्छा है कि बिंदास जियो। मस्ती में जियो।

हमारा हृदय बहुत विशाल है। अपने पाकेट से हम चवन्नी भी ख़र्च नहीं करते हैं। मगर कोई नेता अगर अपनी रैली या जुलूस में हमें बुलाए, तो बस मीट-मुर्गा-पूड़ी-कचौड़ी-दारु पर ही हम गर्दा उड़ा देते हैं नारे और जयकारे लगा-लगाकर। इन बेचारे नेताओं पर हमें बहुत दया आती है, जब चुनाव के समय वे बेचारे घर-घर जाकर वोट की भीख माँगने लगते हैं तो। हमारा कोमल और मुलायम हृदय उनके हाथ जोड़ने, अनुनय-विनय और चरण वंदना से पिघल जाता है और हम उन्हें वोट दे देते हैं। जिता देते हैं। वोट देने में कोई पैसा थोड़े न लगता है ?

विजयानन्द विजय
मोबाइल- 9934267166
ईमेल- vijayanandsingh62@gmail.com

हम वे शख़्सियत हैं, जो धूल को आँधी और राई को पर्वत बनाने की ताक़त रखते हैं। पूरी दुनिया में हमारी कोई मिसाल नहीं है। भले ही हमें स्कूल-कॉलेज-हास्पिटल-सड़क-पुल न मिले, हम मत का दान करने में कोई कंजूसी और कोताही नहीं बरतते। हम बड़े संतुष्ट लोग हैं। हमेशा ख़ुश रहते हैं। हमारे नेताओं ने हमें सिखाया है कि कुछ भी बोलकर या वादा करके फिर पलट जाने या चुप हो जाने में कोई बुराई नहीं है। न ही कोई बेइज़्ज़ती है। विपक्ष में रहकर बड़ी-बड़ी बातें करने, हाँकने और लंबे-लंबे तीर छोड़ने में जो मज़ा, उत्साह, उफान और जोश आता है न, वह कुर्सी मिल जाने पर नहीं आता। जो जनता उनके वादों पर रीझकर उन्हें जिताती है, वही कमबख़्त आ जाती है पूछने के लिए कि नेताजी, आपने तो ये सब वादे किए थे, बताओ कब पूरे कर रहे हो ? भला बताइए, नेता जी को और कुछ काम है कि नहीं? वे एक-एक को बताते फिरें कि यह किया, वह किया ? रात-दिन के विकास कार्यों से फुर्सत मिले, तो न बताएँ ! हमने उनसे यह विलक्षण विद्या अच्छी तरह सीख ली है और अपने घरों में इसका सफलतापूर्वक प्रयोग करने लगे हैं। घर में ज़्यादा सवाल पूछने वालों और विरोध करने वालों को हम घर से निकालने और संपत्ति से बेदख़ल करने की नोटिस थमा देते हैं। फिर वे हमेशा के लिए चुप हो जाते हैं। ऐसी रामबाण औषधि का आविष्कार करने के लिए देश के कर्णधार नेताओं का कोटि-कोटि आभार है।

निकम्मापन, बातों को फेंकना और लपेटना तथा इज़्ज़त-बेइज़्ज़त से ऊपर उठकर जीना हमारा वह विशेष और दिव्य गुण है, जो किसी भी अन्य प्रजाति में नहीं पाया जाता। क्योंकि इन चीज़ों पर हम जितना सोचेंगे, उतना टेंशन होगा और शरीर में उतना ही रोग बढ़ेगा। इसलिए अपना स्वास्थ्य ठीक रखने के लिए हम टेंशन कभी लेते ही नहीं। अपनी नाकामियों, विफलताओं और तर्कहीनता का उत्सव बड़े धूमधाम से मनाने वाले हम उत्सवधर्मी लोग हमेशा ख़ुश रहते हैं। आप लोग भी सीख लीजिए और सुखी रहिए।

000

लघुकथा

यह क्या था...

डॉ. दलजीत कौर

उन्होंने दिनचर्या बनाई। वे सुबह दस बजे तैयार हो कर शहर में हो रहे साहित्यिक कार्यक्रमों में जाने लगे। धीरे -धीरे तुकबंदी करने लगे। एक दिन वे एक कविता लिखकर कवि हो गए। उन्होंने मुख्य अतिथि, विशेष अतिथि, विशिष्ट अतिथि आदि बनने के गुर सीख लिए और महाकवि हो गए। उनकी तस्वीर अख़बारों में छपने लगी। उन्हें फ़ोटो की इतनी आदत हो गई कि हमें लगने लगा यदि कुछ दिन इनकी तस्वीर अख़बार में न छपी तो ये आत्महत्या न कर लें।

महाकवि दो दिन से अस्वस्थ थे। सुबह सो कर उठे तो पोते ने बताया- कल गणतंत्र दिवस था। वे अपनी तस्वीर समाचार पत्र में छपवाने का मौक़ा खोना नहीं चाहते थे। उनके लिए साहित्य का अर्थ ही था- कवि की महिमा और गुणगान। कविता से उनका सरोकार बस इतना था कि उनकी पत्नी का नाम कविता था। महाकवि ने तिकड़म लड़ाई। अगले दिन अख़बार में ख़बर छपी- महाकवि ने ऑनलाइन काव्य गोष्ठी का आयोजन किया। दस कवियों ने इसमें हिस्सा लिया। गणतंत्र दिवस बहुत धूमधाम से मनाया गया। देशप्रेम की धारा बह निकली। कवियों की जो फ़ोटो छपी थी। उनमें मेरी भी फ़ोटो थी। साफ़ था कि सब हवा में हुआ था। मुझे अपनी फ़ोटो का यह झूठ पसंद नहीं आया। मैंने उन्हें फ़ोन किया- सर ! ये क्या था ?

उधर से आवाज़ आई-फ़ोटो प्रेम।

000

डॉ. दलजीत कौर
2571/40 सी, चंडीगढ़, 160036
मोबाइल- 9463743144

आलेख

महात्मा गाँधी और लेव तालस्तोय

प्रगति टिपणीस

पत्राचार का विषय अगर किसी के लिए ज़िंदगी और मौत से अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाए और उसे करने वाले दोनों पक्षों के लिए एक-दूसरे के विचार बहुत मायने रखते हों तो ख़तों की इस लिखा-पढ़ी से दोनों पक्षों के लाभान्वित होने के साथ-साथ इस आदान-प्रदान के दूरगामी और फलप्रद परिणाम निकलने की भी संभावना रहती है। महात्मा गाँधी (1869–1948) और लेव तालस्तोय (1828–1910) के बीच ऐसा ही सार्थक और फलप्रद पत्राचार हुआ था। यह पत्राचार 1 अक्टूबर 1909 में शुरू होकर लेव तालस्तोय की मृत्यु यानी नवम्बर 1910 तक चला था। इन महान् हस्तियों की उम्र में चालीस साल का फ़ासला था। एक संयोग से शुरू हुए पत्राचार के नतीजे इतने ठोस और प्रभावी होंगे, इसकी शायद पत्र के लेखकों ने कल्पना भी न की होगी।

अमरीका में रह रहे प्रवासी भारतीय क्रांतिकारी और अंग्रेज़ी अख़बार 'फ़्री हिन्दुस्तान' के संपादक तारकनाथ दास ने लेव तलस्तोय को दो पत्र लिखे थे। हिन्दुस्तान की जंगे-आज़ादी का रास्ता और औज़ार क्या हों, इसके मुतालिक वे तलस्तोय की राय चाहते थे। साथ ही तारकनाथ दास चाहते थे कि तालस्तोय अंग्रेज़ों द्वारा भारतीयों पर किए जा रहे ज़ुल्म और दमन के ख़िलाफ़ अपनी प्रखर लेखनी चलाएँ, आवाज़ उठाएँ ताकि दुनिया के अधिकाधिक लोगों तक उपनिवेशवादियों द्वारा किए जा रहे अन्याय की बातें पहुँचें। तारकनाथ दास के पत्रों ने तालस्तोय को प्रभावित भी किया था और विचलित भी। तारकनाथ के ख़तों का जवाब देने से पहले तलस्तोय ने भारत, भारतीय संस्कृति एवं इतिहास तथा भारत की तात्कालिक स्थिति का गहन अध्ययन किया था। उन्होंने जवाब में जो निबंधात्मक पत्र लिखा था वह 'एक हिन्दू को पत्र' के नाम से मशहूर हुआ। तारकनाथ औज़ारों और ताक़त के बूते पर इंक़िलाब लाने में यक़ीन रखते थे। इसलिए जवाब में मिले पत्र ने उन्हें निराश किया था। तलस्तोय ने प्रतिद्वंद्वी के प्रति सहिष्णुता बरतने और अहिंसा के मार्ग पर चलने के सुझाव दिए थे, जिनसे तारकनाथ बिलकुल सहमत नहीं थे। तारकनाथ का मानना था कि ब्रिटेन जैसी आक्रामक महाशक्ति को मात्र असहयोग आन्दोलनों और अहिंसा के अन्य उपकरणों से हराया नहीं जा सकता है।

तलस्तोय ने 'एक हिन्दू को पत्र की शुरुआत' कुछ इन शब्दों में की थी- यह एक आश्चर्यजनक तथ्य है कि दुनिया के हर कोने में बाहुल्य-प्राप्त मेहनतकश-वर्ग मुट्ठी भर आलसियों के अधीन रहता हैं, उनके शोषण का निशाना बनता है। शोषक वर्ग यानी कि गिने-चुने लोग श्रमिक वर्ग के जीवन की बागडोर अपने हाथों में रखते हैं। यह स्थिति हर जगह हमेशा से एक जैसी रही है। इस बात का कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता कि उत्पीड़क और उत्पीड़ित एक ही जाति और देश के हैं या भिन्न, जैसा कि भारत और अन्य उपनिवेश राष्ट्रों में हो रहा है। भारत के सन्दर्भ में यह बात विशेष रूप से विचित्र प्रतीत होती है। क्योंकि एक छोटा-सा जनसमूह दो करोड़ से अधिक की आबादी को अपने नियंत्रण में कर लेता है। भारतीय शारीरिक और मानसिक रूप से अत्यंत सक्षम होने के बावजूद गिनती के कुछ ऐसे लोगों के नियंत्रण में हैं जो न केवल वैचारिक दृष्टि से उनसे बिलकुल भिन्न हैं बल्कि धार्मिक और नैतिक दृष्टि से उनसे अत्यंत हीन भी हैं। तारकनाथ ने जवाब में अपने सारे तर्क-वितर्क जिस ख़त में लिखे थे, वे 'काउंट तालस्तोय के नाम खुला पत्र' के नाम से जाना जाता है। वहीं 'एक हिन्दू को पत्र' जब संयोगवश महात्मा गाँधी को मिलता है तो वे मात्र उससे प्रभावित नहीं होते बल्कि उन्हें बरसों से मन में चल रहे द्वंद्व का समाधान मिल जाता है। उन्हें अधिकारों की लड़ाई का मार्ग और हथियार मिल जाते हैं।

तालस्तोय की प्रतिष्ठा साल 1908 तक पूरी दुनिया में एक उत्कृष्ट लेखक के साथ-साथ उत्पीड़ित लोगों के पक्ष में खड़ी एक मज़बूत आवाज़ की हो चुकी थी। जीवन के अंतिम वर्षों में तालस्तोय को सैकड़ों की तादाद में ख़त मिलते थे। लोग इन पत्रों में आत्मा के अपने रुदन को नि:संकोच व्यक्त करते थे और उन्हें तालस्तोय से मार्गदर्शन की आशा रहती थी। सत्य, नैतिकता, सार्वभौमिक भाईचारे, सौहार्द, प्रेम, अहिंसा जैसी अवधारणाओं की सरल और सटीक व्याख्या प्राप्त करने के लिए लोग दुनिया भर से उनकी जागीर 'यास्नया पल्याना' आते थे। यह जगह शांति की खोज कर रहे लोगों का मक्का बन गई थी। तालस्तोय द्वारा प्रवर्तित विचार और

प्रगति टिपणीस
119421, हाउस नंबर 8/2, फ्लैट नंबर 124, नवातरव स्ट्रीट, मॉस्को
मोबाइल-7 916 070-95-82

उनकी बढ़ती ख्याति रूस के सम्राट (ज़ार) तथा ऑर्थोडॉक्स चर्च के सरताजों की आँखों की किरकिरी बन गए थे। रूसी चर्च द्वारा की जानेवाली ईसाई धर्म की व्याख्या से तालस्तोय बिलकुल एकमत नहीं थे और उसका इतना अधिक विरोध करते थे कि चर्च ने उन्हें बहिष्कृत कर दिया था।

बीसवीं सदी का पहला दशक रूस में अत्यधित उथल-पुथल भरा था। अगर एक तरफ़ क्रांतिकारी गतिविधियाँ नित तेज़ होती जा रही थीं तो दूसरी तरफ़ उनके दमन के हथियार उतनी ही तेज़ी से तराशकर पैने किये जा रहे थे। चूँकि दोनों पक्षों के तरीक़े हिंसाप्रधान थे, इसलिए तालस्तोय दोनों का ही विरोध करते थे। ज़ाहिर-सी बात है कि तत्कालीन सत्ता को उनका यह रवैया बिलकुल नहीं भाता था। लेकिन तालस्तोय की विश्वव्यापी लोकप्रियता तथा देश की अशांत और अनिश्चितता भरी स्थिति को देखते हुए शासक उनके ख़िलाफ़ कठोर क़दम उठाने से डरते थे।

देश-विदेश के लोगों का उनसे मिलने के लिए ताँता लगा रहता था। अपने गिरते स्वास्थ्य के बावजूद वे आगंतुकों से मिलते थे, प्राप्त होने वाले प्रत्येक पत्र का जवाब देने की कोशिश करते थे और अगर पत्र की माँग हुई तो गहन अध्ययन करके जवाब लिखते थे। ऐसा ही उन्होंने 'एक हिन्दू को पत्र' लिखते समय भी किया था। तारकनाथ दास को जवाब लिखने में उन्हें 7 महीनों का समय लगा था। उन्होंने कुल 29 ड्राफ़्ट लिखे थे और 400 से अधिक पन्नों में नोट्स लिखने के बाद लगभग 6 हज़ार शब्दों का पत्र तैयार किया था। तालस्तोय का यह प्रयास दर्शाता है कि भारत की आज़ादी की लड़ाई के स्वरूप का प्रश्न तालस्तोय के लिए नैतिक और सैद्धांतिक दृष्टि से कितना महत्त्वपूर्ण था और यह तो विदित तथ्य है कि इस पत्र का ऐतिहासिक महत्त्व (भारत तथा समस्त विश्व के लिए) कितना प्रभावी और व्यापक रहा है।

इंसान द्वारा किसी राह को चुनने की अक्सर कई वजहें होती हैं। तालस्तोय और गाँधी दोनों के ही अनुभव कुछ ऐसे रहे थे कि हिंसा और दमन के रास्ते उनके अनुसार विनाशगामी होने के अलावा और कुछ नहीं थे, अतएव वे उनका विकल्प कभी नहीं रहे। तालस्तोय के लिए उनकी ज़िंदगी आजीवन उनका विश्वविद्यालय बनी रही। जीवन को जस जिया तस लिखने की अदम्य निर्भीकता उनमें थी। उन्होंने ताज़िंदगी डायरी लिखी और उसमें अपने दिनों का ब्यौरा ज्यों का त्यों लिखा, किसी ऐसे विवरण को हटाया या छिपाया नहीं जो उनके चरित्र के स्याह पहलुओं को दर्शाता हो। उन्हें बतौर लेखक ख्याति अपनी आत्मकथात्मक किताबों 'बचपन', 'लड़कपन' और 'जवानी' तथा क्रीमिया युद्ध के निजी अनुभवों पर लिखी पुस्तक 'सेवस्तापोल रेखाचित्र' से मिली। जीवन की ज्वलंत अनुभूतियाँ, अनुभव उनकी रचनाओं के पृष्ठों से सदा झाँकते रहे। जब उन्होंने यह देखा कि देश का चर्च अपनी सत्ता का सिक्का बनाए रखने के लिए धर्म-ग्रंथों के कथनों की स्व-अनुकूल व्याख्या कर रहा है तो उन्होंने उन ग्रंथों और ऑर्थोडॉक्स चर्च से ख़ुद को दरकिनार कर लिया। धर्म की अपनी समझ को उन्होंने निबंधों, शोध-प्रबंधों आदि में लिखना शुरू किया। तालस्तोय की इन रचनाओं के प्रकाशन पर साम्राज्यवादी रूस में प्रतिबन्ध था। उनकी पुस्तक 'ईश्वर प्रत्येक में वास करता है' (The Kingdom of God is Within You) साल 1894 में जर्मनी में प्रकाशित होते ही अत्यंत लोकप्रिय हो गई थी। उसका अनुवाद अंग्रेज़ी समेत कई यूरोपीय भाषाओं में फ़ौरन ही हो गया था। इस किताब की ख़ूबी यह थी कि इस से प्रभावित होकर कुछ लोग फ़ौरन ही प्रेम और अहिंसा के मार्ग पर चल पड़े थे। जिस साल यह किताब अंग्रेज़ी में आई थी उसी साल सैनिक आर्थर सेंट जॉन ने अहिंसा का मार्ग अपना लिया था। गाँधी भी इसी किताब को पढ़कर तालस्तोय के क़ायल हुए थे।

इंग्लैंड में शिक्षा समाप्त करने के बाद हिन्दुस्तान लौटने पर गाँधी को कोई उपयुक्त काम न मिला। दक्षिण-अफ्रीका में अच्छा कॉन्ट्रैक्ट मिलने पर काम के लिए वे उधर को रवाना हो गए। दक्षिण-अफ्रीका पहुँचते ही उनका सामना रंगभेद से हुआ। दक्षिण-अफ्रीका एक अंग्रेज़ी-उपनिवेश देश था। गाँधी ने पहले वर्णभेद के आधार पर दूसरों पर अत्याचार होते देखा और फिर स्वयं भी उसके शिकार हुए। पहले दिन से ही गाँधी के गले से नीचे यह बात नहीं उतरी कि किसी इंसान के साथ दोयम दर्जे का सलूक़ सिर्फ़ इसलिए किया जाए कि उसकी नस्ल, वर्ग या वर्ण सत्ताधारियों से अलग है। भेदभाव के चलते बद्सलूक़ी का शिकार स्थानीय निवासियों के साथ-साथ दक्षिण-अफ्रीका में रह रहे भारतीय प्रवासी भी होते थे। गाँधी का मन इन बातों को क़ुबूल नहीं कर पाया। उन्होंने वहाँ के भारतीयों को एकजुट करके उनके हक़ की लड़ाई लड़नी शुरू की। वहाँ रह रहे भारतीयों के अधिकारों की सुरक्षा की लड़ाई गाँधी ने वकील होने के नाते क़ानूनन शुरू की। साल 1894 में उन्होंने नेटल भारतीय कांग्रेस का गठन किया ताकि अपनी बात संस्थागत तरीक़े से रखी जा सके। संघर्ष के पहले दिनों से ही गाँधी को ये सवाल विचलित करते रहे थे कि अपने हुक़ूक़ के लिए लड़ने का तरीक़ा क्या होना चाहिए, लड़ाई को हिंसात्मक और अमानुषीय होने से बचाने तथा न्यायसंगत तरीक़े से लड़ने के लिए किन हथियारों का उपयोग करना चाहिए। इस बात को संयोग ही माना जाना चाहिए कि उहापोह के इन्हीं दिनों में तालस्तोय की किताब 'ईश्वर प्रत्येक में वास करता है' अंग्रेज़ी में शाया होती है और गाँधी तक पहुँच जाती है। इस किताब को पढ़कर अहिंसा और असहयोग आंदोलनों के प्रति गाँधी की निष्ठा और गहरी हो जाती है।

तालस्तोय द्वारा प्राप्त पत्र– 'एक हिन्दू को पत्र' तारकनाथ दास ने अपने अख़बार "फ्री हिन्दुस्तान" में छापा था। इसी अख़बार की एक प्रति गाँधी को अपने एक दोस्त के ज़रिये मिलती है। पत्र की विषय-वस्तु उन्हें तत्क्षण ही प्रभावित करती है और उसी के संदर्भ में वे तालस्तोय को पहला ख़त लिखते हैं। पत्र में वे पहले इस बात की पुष्टि माँगते है कि क्या 'एक हिन्दू को पत्र' तालस्तोय द्वारा ही लिखित है? और यदि हाँ, तो गुजराती तथा अन्य भारतीय भाषाओं में उसे अनूदित करने तथा

अपनी पत्रिका "इंडियन ओपिनियन" में छापने की अनुमति माँगते हैं। तालस्तोय सहर्ष इन दोनों कामों के लिए हरी झंडी दिखा देते हैं। इस प्रकार शुरू हुआ था भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के लिए दूरगामी परिणाम रखने वाला पत्राचार। इन दो महान् विभूतियों के बीच हुए पहले पत्राचार के कुछ अंश यों थे।

गाँधी ने 1 अक्टूबर 1909 को तालस्तोय को पहले ख़त में ट्रांसवाल में भारतीयों की स्थिति और शासन की दमनकारी नीतियों के बारे में लिखा था। उस ख़त के कुछ हिस्से- यहाँ रंगभेद तथा एशियावासियों के प्रति कुछ मामलों मे पूर्वग्रह अत्यन्त तीव्र है। यह पूर्वग्रह अपने चरम पर तीन साल पहले तब पहुँचा, जब एशियाई-प्रवासियों के अधिकारों को सीमित करने के लिए एक अलग क़ानून पारित किया गया। मेरा और बहुत से लोगों का यह मानना है कि यह अत्यंत अपमानजनक कृत्य था, जिसका एकमात्र उद्‌देश्य उन लोगों की मानवीय गरिमा को कुचलना है, जिन पर वह लागू होता है। मैं और मेरे साथी यह समझते हैं इस प्रकार के क़ानून के आगे घुटने टेकना सच्चे-धर्म की भावना के सर्वथा प्रतिकूल है। साथ ही किसी भी बुराई का हिंसात्मक-प्रतिरोध न करने के सिद्धांत में हम तब भी अटल विश्वास रखते थे और आज भी रखते हैं। मुझे आपके लेखन का अध्ययन करने का सौभाग्य प्राप्त है और मैं उससे बहुत प्रभावित हूँ।

उल्लेखनीय यह है कि तालस्तोय ने गाँधी के ख़त का अक्टूबर 1909 में फ़ौरन जवाब दिया था। उन्होंने अपने पत्र के आरम्भ में यह कामना की थी- ईश्वर ट्रांसवाल के हमारे प्रिय भाइयों और सहकर्मियों की उनके अहिंसक संघर्ष में सहायता करे। ख़त में व्यक्त बाक़ी विचार कुछ ये थे- कोमलता तथा क्रूरता, विनम्रता एवं प्रेम तथा अहंकार एवं हिंसा के बीच के संघर्ष की तीव्रता यहाँ रूस में पहले से भी कहीं अधिक बढ़ गई है। अपने धार्मिक मूल्यों एवं अंतरात्मा की पुकार के आधार पर सैन्य-सेवा से इंकार करने पर लोगों को राजकीय क़ानूनों की गाज का सामना करना पड़ता है। इस प्रकार के टकराव सतत गहन होते जा रहे हैं।

गाँधी और तालस्तोय के बीच पत्राचार तालस्तोय के जीवन के अंतिम वर्ष यानी अक्टूबर 1909 से अक्टूबर 1910 तक हुआ। नवंबर 1909 में भेजे अपने दूसरे पत्र के साथ गाँधी ने जोसेफ जॉन डोक द्वारा लिखी अपनी जीवनी- एम. के. गांधी: एन इंडियन पैट्रियट इन साउथ अफ्रीका की एक प्रति भी संलग्न की थी। इस पुस्तक में गाँधी के जीवन, सत्याग्रह एवं अहिंसा से जुड़े उनके विचार प्रस्तुत थे, जिनसे तालस्तोय बहुत प्रभावित हुए थे। ये सिद्धांत तालस्तोय द्वारा प्रवर्तित मूल्यों से पूर्णत: मेल खाते थे। उल्लेखनीय है कि इस पुस्तक की दो प्रतियाँ आज भी तालस्तोय के यास्नया पल्याना पुस्तकालय में सुरक्षित हैं- एक उनके अध्ययन-कक्ष की अलमारी में और दूसरी पुस्तक- अलमारी संख्या 15 में, जिसमें विश्वभर के लेखकों से प्राप्त भेंटें सुरक्षित हैं। इस पत्र के 8 मई 1910 को दिए अपने उत्तर में तालस्तोय ने लिखा था कि आपकी जीवनी पढ़ना मेरे लिए अत्यंत रुचिकर रहा, क्योंकि 'अहिंसक प्रतिरोध यानी सत्याग्रह' के जिन पहलुओं पर उसमें विचार किया गया है, वे न केवल भारत बल्कि समस्त मानवता के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। 15 अगस्त 1910 को लिखे अपने चौथे पत्र में गांधी ने अपने मित्र हरमन कैलेनबाख द्वारा जोहान्सबर्ग के निकट 'तालस्तोय फ़ार्म' स्थापित करने की योजना का उल्लेख किया। इस फ़ार्म का उद्‌देश्य ट्रांसवाल में भारतीय सत्याग्रहियों (अहिंसक प्रतिरोध करने वालों) के लिए एक ठिकाना उपलब्ध कराना था। स्वयं कैलेनबाख भी उन अनेक आध्यात्मिक अनुभूतियों से गुज़रे थे, जिनका वर्णन तालस्तोय ने अपनी पुस्तक 'माई कन्फ़ेशन' में किया है।

यास्नाया पोल्याना छोड़ने से कुछ ही सप्ताह पहले 7 सितंबर 1910 को लिखे अपने अंतिम पत्र में तालस्तोय ने इंडियन ओपिनियन में प्रकाशित सत्याग्रह (अहिंसक प्रतिरोध) संबंधी लेख भेजने के लिए गाँधी का आभार प्रकट किया था और लिखा था- अन्य आत्माओं के साथ एकात्मता और सह-अस्तित्व की राह प्रेम है। प्रेम ही मानव जीवन का सर्वोच्च और एकमात्र नियम है। प्रेम का यह नियम सभी दर्शन-परंपराओं- भारतीय, चीनी, यहूदी, यूनानी, इस्लामी, रोमन द्वारा प्रतिपादित किया गया है। इसकी सबसे स्पष्ट अभिव्यक्ति ईसा मसीह ने की है। यदि प्रेम का नियम अस्तित्व में नहीं रहता है तो फिर केवल हिंसा का नियम अर्थात् शक्तिशाली का वर्चस्व ही शेष रह जाता है। ईसाई समाज उन्नीस शताब्दियों से इसी वर्चस्व के तहत जीता आया है। परिणामस्वरूप, ईसाई समाज का जीवन एक पूर्ण विरोधाभास है। क्योंकि एक ओर वहाँ प्रेम को जीवन का मूल नियम बताया जाता है और दूसरी ओर शासन, न्यायालय, सेना जैसी संस्थाओं के काम की प्रशंसा की जाती है जो बल-प्रयोग पर आधारित हैं और उसकी अनिवार्यता पर ज़ोर देती हैं।

उस पत्र में तालस्तोय ने तथाकथित 'आधुनिक प्रगति' पर भी अपने विचार व्यक्त किए थे- समाजवाद, साम्यवाद, अराजकतावाद, मुक्ति-सेना संस्था, समाज में बढ़ती अपराधवृत्ति, बेरोज़गारी, धनीवर्ग का निरर्थक विलास, निर्धनों की भयावह दरिद्रता तथा आत्महत्याओं की बढ़ती संख्या- ये सभी उस आंतरिक विरोधाभास के लक्षण हैं, जिसका एकमात्र समाधान प्रेम के नियम को स्वीकारकर एवं हिंसा के सभी रूपों को त्यागकर संभव है। इसलिए ट्रांसवाल में आपका कार्य अत्यंत मौलिक और महत्त्वपूर्ण है। यह प्रेममार्ग पर अग्रसर होने का एक प्रभावशाली व्यावहारिक प्रमाण प्रस्तुत करता है, जिससे सम्पूर्ण विश्व प्रेरणा ग्रहण कर सकता है। पत्र के अंत में तालस्तोय ने हस्ताक्षर से पहले लिखा था- पूर्ण सम्मान एवं आदर सहित।

गाँधी को यह पत्र तालस्तोय की मृत्यु यानी 20 नवंबर 1910 से कुछ ही समय पहले प्राप्त हुआ। गाँधी ने तालस्तोय को श्रद्धांजलि देते हुए "द लेट लैमेंटेड तालस्तोय द ग्रेट" शीर्षक से एक लेख लिखा, जिसका सार कुछ यों था- महान् तालस्तोय ने तिरासी वर्ष की परिपक्व उम्र में अपना नश्वर शरीर त्याग दिया। उनके

संदर्भ में यह कहना अधिक सत्य होगा कि उन्होंने अपना शरीर त्याग दिया है, बजाय इसके कि 'उनकी मृत्यु हो गई है'। तालस्तोय जैसी आत्मा कभी मर नहीं सकती। उनका नाम सदा अमर रहेगा। तालस्तोय को सारी दुनिया एक महान् व्यक्ति के रूप में जानती है। भारत में उन्हें महर्षि या फ़कीर कहा जाता। अपार संपत्ति एवं सुख-सुविधा से परिपूर्ण जीवन त्यागकर उन्होंने सादगी भरा जीवन अपनाया। अपने दिए उपदेशों को सतत जीवन में उतारने का प्रयास किया। यही वजह थी कि लोग उनकी बातों और लेखन के प्रति अटूट निष्ठा रखते थे।

गाँधी ने अपनी श्रद्धांजलि में तालस्तोय से प्राप्त हुए आख़िरी ख़त के सार का उल्लेख करते हुए लिखा था- अपने आख़िरी दिनों में इस महान् व्यक्ति ने गाँधी को एक ख़त लिखा था। उस पत्र में तालस्तोय द्वारा व्यक्त सत्याग्रह सम्बन्धी विचारों पर सबको मनन करना चाहिए। उनके अनुसार ट्रांसवाल-संघर्ष समस्त विश्व पर अपनी छाप छोड़ेगा। तालस्तोय ने सत्याग्रहियों का हौसला बढ़ाते हुए लिखा था कि आप अपना काम करते करिए; अपने शासकों से भले ही आपको न्याय प्राप्त न हो, पर ईश्वर का आशीर्वाद और न्याय आपको अवश्य मिलेगा। सत्य और अहिंसा के मार्ग पर बढ़ते रहने के लिए गाँधी के लिए तोलस्तोय के ये शब्द प्रेरणा और उत्साह का स्रोत थे।

गाँधी के साथ हुए पत्राचार से तालस्तोय इस बात से थोड़ा आश्वस्त ज़रूर हो गए होंगे कि प्रेम और अहिंसा के उनके विचार परिवर्तन लाने में सक्षम हैं, वे लोगों का हौसला बनकर उन्हें उन्नत राह पर प्रशस्त कर सकते हैं। लेकिन उन्होंने यह कल्पना न की होगी कि स्वतंत्रता प्राप्ति में भारतवासियों के लिए सत्य, अहिंसा और असहयोग-आन्दोलनों जैसे उपकरण ही सबसे ज़्यादा प्रभावी सिद्ध होंगे। तालस्तोय को गाँधी आजीवन अहिंसा का दूत और अपना प्रमुख शिक्षक मानते रहे। मृत्यु-शय्या पर भी गाँधी प्रेम और क्षमा के अहिंसा पाठ दोहराते रहे।

000

ग़ज़ल

पाँच ग़ज़लें

विज्ञान व्रत

जो इबारत मिट चुकी है
वो मुझे क्यों दिख रही है
आपकी जो सादगी है
क़ातिलाना हो गई है
बात तो कुछ भी नहीं थी
आपके कारण बढ़ी है
गोटियाँ हैं हम सभी तो
हर क़दम चौसर बिछी है
आपसे जो मैं मिला हूँ
ख़ास घटना क्यों हुई है
आँच तुम तक आएगी ही
आग जंगल में लगी है

000

बोये तो थे सन्नाटे
पर जाने क्यों शोर उगे
मुझसे जितनी बार छिपे
वो मुझको हर बार दिखे
यों वो मेरे पास रहे
लेकिन सबको दूर दिखे
उनको ढूँढ़ सकोगे क्या
जिनके सिर्फ़ निशान बचे
भाव बहुत खाते थे जो
वो सारे बे-भाव बिके

000

सच कहोगे तो मरोगे
अब बताओ सच कहोगे
ख़ामुशी अपनी सुनोगे
सच कहो क्या सुन सकोगे
सामने ख़ुद के जो होगे
सामना कैसे करोगे
पाल कर रक्खा भरम क्यों
तुम हमेशा ही रहोगे
ये हवस पूरी न होगी
ज़िंदगी-भर जो खटोगे

000

यार तुम तो थे वहाँ
क्यों जला फिर आशियाँ
अब कहाँ मैं ख़ुद में हूँ
तुम नहीं तो मैं कहाँ
क्या वहीं पर हूँ अभी
दिख रहा तुमको जहाँ
जो कहा अक्सर तुम्हें
तुम कभी समझे कहाँ
काश तुम यह जानते
है तुम्हीं से कहकशाँ

000

इस तरह से खो गया हूँ
कब किसी को मिल सका हूँ
ढूँढ़ कर जब थक गए वो
तब अचानक ही मिला हूँ
जो मुझे महसूस करते
बस उन्हीं को दिख रहा हूँ
हूँ नज़र में यों सभी की
पर अभी तक लापता हूँ
सामने मंज़िल दिखी तो
रास्ते में क्यों रुका हूँ

000

विज्ञान व्रत
एन -138, सैक्टर- 25,
नोएडा -201301, उप्र
मोबाइल-9810224571
ईमेल- vigyanvrat@gmail.com

केसर की क्यारियों वाला कश्मीर

निर्मला दोशी

गतांक से आगे...

1 नवंबर- आज मौसम साफ़ था। हम गुलमर्ग से पहलगाम की तरफ़ रवाना हुए। पूरे रास्ते में सीधे सतर लंबे-लंबे विलो के पेड़ लगे थे, जिनकी लकड़ी बेहद उम्दा तथा हल्की होती है, क्रिकेट के बल्ले इसी लकड़ी से बनते हैं। लकड़ी को चीर कर ऊपर के छिलकों से सेब रखने की पेटियाँ बनती है। कश्मीर से भारत भर में क्रिकेट के बैट भेजे जाते हैं और स्थानीय लोगों को इस कारण अच्छा रोज़गार मिल जाता है। हमारे मनन ने भी एक बैट लिया। उसी रास्ते में पड़ा पंपोर गाँव जो विश्व भर में बेहतरीन किस्म की केसर के उत्पादन के लिए विख्यात है। केसर उत्पादन का सही वक़्त नवंबर होता है। हम गाड़ी से उतरे और रास्ते में लगे केसर के बगान में पहुँचे। केसर की क्यारी में छोटे-छोटे पौधे और उन पर लगे थे बेंजनी रंग के नाज़ुक फूल... फूलों के बीचों-बीच पीला परागण और उससे निकले तीन केसर के रेशे। चारों तरफ़ ज़ाफ़रान की भीनी-भीनी महक फैली थी। माज़िद ने बताया कि केसर का उत्पादन की जाने वाली ज़मीन समूची कश्मीर घाटी में सबसे महँगी है और उस पर कोई भी दूसरा काम या भवन निर्माण नहीं किया जा सकता। केसर के खेतों की रखवाली करने वाले ने दो-तीन फूल तोड़कर हमारे हाथ में रखें और केसर की फ़सल की विस्तार से जानकारी दी।

लिद्दर नदी के किनारे पहलगाम बसा है। हल्की बूँदाबाँदी होने लगी थी। सर्दी ग़ज़ब ढा रही थी। पूरे रास्ते भर एक दिन पहले गिरी बर्फ़ पिघल कर रास्ते के दोनों तरफ़ सफ़ेद बाउंड्री की तरह जमा हो गई थी। शाम होने को थी। वर्षों पहले बने होटल पाइन एंड पीक के आगे हमारी गाड़ी रोकी गई जहाँ हमारा आरक्षण था।

'नौशीन' उपन्यास पढ़ते वक़्त खाने के अनेक कश्मीरी व्यंजनों के नाम पढ़े थे। यहाँ कमलनाल से कई व्यंजन बनाए जाते हैं जिसे नदड़मौज या नदड़ू कहा जाता है। हाक् का ज़िक्र भी आता है। आज खाने में हाक की पालक जैसी पत्ती वाली सब्ज़ी थी। कश्मीरी चावल की एक बेहतरीन किस्म को मुश्कबुद कहा जाता है। उन चावलों की ख़ुशबू लाजवाब होती है। गुच्चियाँ, रिसते, बाकरखानियाँ, कतलम्बे, डालगेट के और नदड़ूकदम के अनेक व्यंजन जिनमें कुछ पकवान गोश्त से भी बनते हैं। पाईन और पीक में नाश्ते व रात के खाने के वक़्त में वहाँ के कर्मचारियों से कश्मीरी व्यंजनों के बारे में पूछती रहती थी। संभवत: उन्हें थोड़ा अजीब तो लगता ही होगा किंतु किसी ने भी ज़ाहिर नहीं होने दिया। बड़ी विनम्रता से बताते रहे।

इस यात्रा में मैंने नोट किया कि यहाँ के लोग स्वभावगत बहुत विनम्र, बड़े तहज़ीब याफ्ता होते हैं। मीठी बोली के साथ गठीली क़द काठी, लंबा क़द व सुदर्शन रूप रंग भगवान् ने खुले हाथों से दिया है। तीखे नैन-नक्श और गोरा गुलाबी रंग भी ख़ूब है कि मामूली फिरन व सलवार पहन कर भी बड़े आकर्षक लगते हैं। सिर उघाड़े तो कहीं छोटी सी बच्ची भी नहीं दिखती। लड़कियों के लिए हिजाब से ढका शरीर, ढके वस्त्र पहनना बेहद ज़रूरी है। हम पहलगाम पहुँचे उस दिन धनतेरस थी। वैसे इस दिन ख़ूब ख़रीदारी करने का चलन है, मैं तो ख़ैर इस तरह की नियम की पाबंद कभी नहीं रही पर हमने रास्ते में केसर व सूखे मेवे ख़रीदे। पीले केसरिया चिनारों से सजा पहलगाम रोशनियों से सजे शहरों से कहीं ज़्यादा भव्य लग रहा था।

2 नवंबर - पहलगाम सुंदर बाग़-बगीचों की जगह है। यह श्रीनगर से 90 किलोमीटर की दूरी पर है समुद्र तल से लगभग 2200 मीटर ऊँचाई पर है। होटल के पिछवाड़े का बाग़ बिल्कुल लिद्दर नदी से लगा था। नदी के बहाव का सुरम्य निनाद स्वाभाविक रूप से पार्श्व में हर वक़्त सुना जा सकता था। मैं सुबह उठकर नीचे बाग़ में जा बैठी गुनगुनी धूप थी और बर्फ़ीली हवाएँ साथ चल रही थी। आज फिर पेन डायरी लाना भूल गई जबकी अंदर आखरों का सैलाब उछाह ले रहा था। बगीचे में काम कर रहे माली मोहम्मद ख़ान से ख़ूब बातें हुई। वे घंटे डेढ़ घंटे बिना रुके बोलते रहे। हम यहाँ आएँ, लुत्फ़ उठाएँ, किंतु यहाँ के लोगों के दर्द को समझे बिना ही लौट जाएँ, यह तो संवेदन शून्यता की हद होती है। बड़ी बारीकी से देखें तो हाँ अब ये लोग ख़ौफ़ज़दा तो नहीं है अलबत्ता ख़ुश भी नहीं है। स्थाई उदासी पसरी है वहाँ के लोगों के चेहरों पर।

निर्मला दोशी
नीलकंठ, बंगला नंबर 81, सेक्टर-1,
दयानंद स्कूल के सामने, चारकोप
कांदिवली पश्चिम मुंबई 400067
मोबाइल- 9322496620
ईमेल- nirmaladoshi1953@gmail.com

पहलगाम से चंदनवाड़ी के लिए गाड़ी से निकले। 9500 फुट की ऊँचाई पर यह एक सुंदर पिकनिक स्थल है। यहीं से अमरनाथ की यात्रा शुरू होती है। बेहद घुमावदार रास्ते व ख़ूबसूरत नज़ारे फैले पड़े हैं। चारों तरफ़ खरग़ोश की तरह मुलायम श्वेत बर्फ़ बिखरी थी। नदी का कलकल करता स्वर प्रकृति के संगीत में ताल देता लगा। अमरनाथ की तीन दिन घोड़े पर यात्रा होती है जो अभी बंद है, सोनमर्ग से हेलीकॉप्टर की व्यवस्था भी है वह भी अभी बंद ही थी। गाड़ी से उतरकर कुछ देर हम पत्थरों पर बैठे। नदी का करंट मारने वाला ठंडा पानी भी छुआ। लौटते वक़्त बेताब वैली पर गाड़ी रुकी। इसका नाम पहले हगुन वैली था। बेताब फिल्म की शूटिंग के बाद नाम बदल गया। चारों तरफ़ ऊँचे पहाड़ों और लंबे विलो के पेड़ों से घिरा मैदानी इलाक़ा है। वहीं बीच में एक अभ्यारण्य भी था। अचानक हिरणों का झुंड दिखा। अरुवेली अगला स्थान था जहाँ की प्राकृतिक संपदा को देखकर कहना पड़ा कि ऊपर वाले के अकूत ख़ज़ाने की थाह लेना संभव ही नहीं है। सोनमर्ग से ज़्यादा सौंदर्य गुलमर्ग में और गुलमर्ग से ज़्यादा दिखा पहलगाम में। वैसे कम ज़्यादा का पैमाना बेमानी सा है। सुंदरता को निरखने-परखने के लिए मन की भाव भूमि भी सौंदर्य को जज़्ब करने के लिए अनुकूल व पर्याप्त संवेदनशील होनी चाहिए। अत: ज़्यादा कम की बात यहीं छोड़ देती हूँ। शाम ढलने पर होटल पहुँचे, ठंड उत्तरोत्तर बढ़ रही थी। खा पीकर बिस्तरों में थे।

3 नवंबर- आज दिवाली है जीवन की सबसे अलग अनूठी दिवाली घर से कोसों दूर.... कश्मीर की हसीन वादियों में। त्योहार का अर्थ क्या है... और घर का भी तो... कि जब सब एक साथ हो वहीं घर और वहीं त्योहार हो जाता है। सुबह 8:00 बजे गार्डन में जाकर बैठी गुनगुनी धूप में। पक्षी नीचे उतर आए थे। जहाँ तक निगाहें जाती है शांति, निर्वाक्, निरांत का अनूठा साम्राज्य, साथ में लिद्दर नदी का अनहद नाद। बहुत संयत धीमा। नाश्ता करके पैदल ही निकले पहलगाम के बगीचे देखने। पोशमान कश्मीरी

भाषा में फूल को कहा जाता है। पोशमान पार्क का रख-रखाव और तरतीब से तराशे गए पेड़-पौधों के साथ चीड़ व चिनार के पेड़ों से लदा था बाग। गुलाब, गेंदा, गुलदाउदी दिखे ज़रूर, पर मौसम न होने के कारण उन पर बहार नहीं थी। आगे एक मंदिर दिखा, आज दीवाली का दिन था मंदिर के दर्शन हो गए। बताया गया कि इसी स्थान पर नंदी को छोड़कर भगवान् शिव अमरनाथ की तरफ़ चले गए थे। आगे डियर पार्क था ऊँचाई पर चढ़कर हिमालयन प्रजाति के दो भालू दिखे। दूसरी तरफ़ कटघरे में दो तेंदुए धूप सेंक रहे थे। हिरण और बारहसिंगा भी थे। पर्यटकों के बच्चों को आकृष्ट करने के लिए यहाँ अभ्यारण्य बनाया गया है। वहाँ से हम तीन बजे लौटे। दो-तीन जगह और भी जाना था किंतु घोड़े पर चढ़कर जाना पड़ता और घोड़े पर चढ़ने का ज़रा भी मन नहीं था। बच्चे चले गए... मैं कमरे में रजाई लपेटकर नए उपन्यास के तिलिस्म में डूब गई। शाम को सब ने मिलकर टेबल पर लक्ष्मी पूजन किया। एक बात अखरी तो थी कि कश्मीर भारत का सिरमौर, दीवाली यहाँ के त्योहारों का सिरमौर, किंतु कहीं भी अतिरिक्त रूप से एक दीपक तक नहीं। नीचे डाइनिंग हॉल में भी कोई हलचल नहीं थी। कल सुबह श्रीनगर वापसी थी और वह यात्रा का अंतिम पड़ाव भी था।

4 नवंबर- सारी कायनात की ख़ूबसूरती आँखों में भरकर पहलगाम को अलविदा कहा... लिद्दर नदी के पास गई.. विदा लेने.. लगा नहीं कि उसकी और मेरी पहचान कुल जमा दो-तीन दिन पहले की है। माज़िद गाड़ी ले आया था, उसी की गाड़ी में घूम रहे थे। काफी परिचित हो गया था बच्चे अंकल-अंकल कहने लगे, चॉकलेट टॉफी लेने की ज़िद करते। उसने भी एक जगह रास्ते में बढ़िया कहवा पिलाया और पैसे नहीं देने दिए-शाबजी यह माज़िद की तरफ़ से है। इस रास्ते पर सेबों से लदे हुए बागान थे। यह सारा इलाका सेबों की मनभावन ख़ुशबू से मह-मह कर रहा था। एक बागान पर गाड़ी रोकी गई। पेड़ों से तोड़ कर सेब पहली बार चखा। बगान के मलिक ने बताया कि सेब का एक पेड़ सात आठ वर्ष के बाद फलता है, और 50- 60 वर्ष तक फल देता है। एक पेड़ से वर्ष भर में 40 पेटी सेब उतरते हैं, प्रत्येक पेटी में 18 से 20 किलो सेब भरे रहते हैं तथा सीजन में एक पेड़ से 3500 से 4000 से मिल जाते हैं। सेब के फूल अप्रैल में आते हैं और फल अक्टूबर में तैयार हो जाता है। यहाँ से पैक होकर जम्मू, और जम्मू से दिल्ली और सारे भारत में जाता है। जम्मू कश्मीर सर्वाधिक सेब उपजाने वाला राज्य है। सेब की अनेक किस्में में होती है जिसमें डिलीशियस सबसे उत्तम मानी जाती है। बगान मालिक ने वहाँ खड़े-खड़े पाँच सात सेब काटे और हमें बड़े प्रेम से खिलाए।

अनंतनाग श्रीनगर नेशनल हाईवे पर अवंतीपुर का एक गाँव है जहाँ हम रुके। श्रीनगर से 29 किलोमीटर पर अवंतीपुर का विष्णु मंदिर है उससे थोड़ी दूरी पर एक शिव मंदिर भी है। अवंतीपुर के राजा अवंती वर्मन ने नौवीं शताब्दी में भगवान् विष्णु का विशाल मंदिर बनवाया जो उस वक़्त के विकसित स्थापत्य कला की मुँह बोलती कहानी कहता हुआ प्रतीत होता है। इतने वर्षों बाद भी पुरातत्व अन्वेषकों के लिए ये मंदिर विशेष शोध का विषय भी है कि किस तरह बिना चूना, मिट्टी, लकड़ी, लोहे के प्रयोग के सिर्फ पत्थरों से इतनी ऊँचाई पर ऐसे अनूठे शाहकार बनाए गए होंगे। पत्थर में गहरा गोल गड्ढा करके उसके ऊपर विशालकाय स्तंभ ठहरा दिए जाते थे, जो प्रकृति के भीषण थपेड़े खाने

पर भी हिले तक नहीं थे। ये दोनों मंदिर खंडहर भले हो गए हो किंतु भूगर्भवेताओं तथा स्थापत्य के जानकारों को भी विस्मय विमुग्ध किए दे रहे थे। वहाँ के गाइड ने बताया कि मंदिर बनने के वर्षों बाद भूकंप के प्रकोप से पूरा इलाक़ा धरती की गोद में समा गया था। पास में नदी बह रही थी उसकी लहरों से इन अवशेषों पर मिट्टी की परतें दर परतें चढ़ती गई। 500 वर्षों से ज़्यादा ये ज़मीन में दबे रहे। अंग्रेज़ों ने सन 1923 में यहाँ खुदाई करवाई और ये बाहर आए। कहा तो यह भी जाता है कि यहाँ अकूत ख़ज़ाना व दुर्लभ व क़ीमती मूर्तियाँ निकली। संभवत: खोज व खुदाई भी इसी प्रलोभन में की गई हो। वे सभी मूर्तियाँ विदेश चली गईं, कुछ बचीं वे संग्रहालय में रखी हुई है।

मुहावरों की तह में जाएँ तो 'चूलें हिलना' (नींव हिलना) या 'चूलिया उतर जाना' (आधार हीन होना) या 'चूलें चढ़ाना' (नव निर्माण) प्रचलित है इसका अर्थ इन मंदिरों में जाकर स्पष्ट हुआ दिखा। शिव मंदिर तो और भी प्राचीन है लेकिन बेहद समृद्ध सभ्यता का प्रतीक भी। कुछ पत्थरों पर एक लिपि मिली जिसे अब तक नहीं पढ़ा जा सका है। जम्मू कश्मीर ऐसा राज्य है जिसके चप्पे-चप्पे में यहाँ का इतिहास पढ़ा जा सकता है। क्षेत्र स्थापत्य का हो या कलाओं का, राजनीतिक हालात हो या जनजीवन का सामान्य परिवेश, सब कुछ दिखता है। लाख उलट फेर के बावजूद अब तक वह क़ायम है तो उसकी भी एक ख़ास वजह है- रूहानियत इस भूमि के कण-कण में रची-बसी है। ज़रूरत है संवेदनशीलता के साथ उसे पहचानने और एहसास करने की। सिर्फ़ घूमने और मौज-मस्ती के लिए आने वालों को वह नज़र आ भी नहीं सकती। अंदरूनी आवाज़ सुनने के लिए अंतर्मन का दरवाज़ा खोलना पड़ता है। पूर्वाग्रहों को परे रख कर विचार शून्यता में स्थिर होकर ही कुछ पाया जा सकता है।

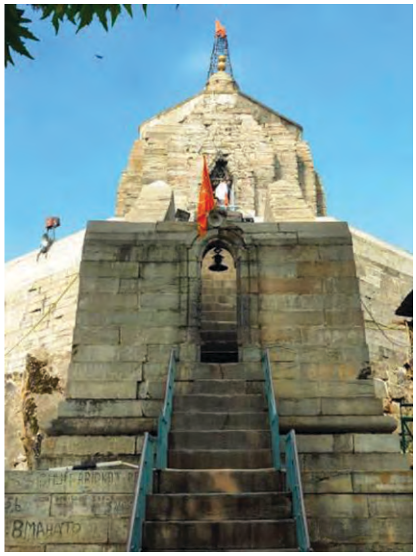

शाम चार बजे हम श्रीनगर पहुँचे। इस बार हम शहर के बीचों-बीच राम बाग़ में झेलम के किनारे लगभग सौ वर्ष पुराने एक डाक बँगले में रुके। बड़े-बड़े कमरे पिछवाड़े में छोटा सा बगीचा, सड़क पार कर लकड़ी के कलात्मक फट्टों से बना छोटा-सा पुल जो सीधे ऊपर की मंज़िल पर आगुंतकों को ले जाता था। नीचे स्वयं बंगले के मालिक दानिश भाई अपने परिवार के साथ रह रहे थे। डार्क हर्मिटेज नाम भी ख़ूब और उसकी सज्जा भी पारंपरिक ढंग से हुई है। बाथरूम इतने बड़े-बड़े कि मुंबई में इतने बड़े बेडरूम भी नहीं होते। दानिश भाई गोल्फ़ के बेहतरीन खिलाड़ी रह चुके हैं। शीशे की अलमारियाँ उन्हें मिली ट्रॉफियों से भरी पड़ी थीं, साथ ही बँगले में कश्मीरी हस्तशिल्प की सज्जा भी ख़ूब की गई थी। हाउस बोट व होटल में रात बिताने के बाद नया व अलग अनुभव लेने के लिए ही इस बँगले का चुनाव किया गया था। नेट पर इसकी झलक ने मोह लिया था। पहली रात जब बत्ती जल-बुझ कर रही थी तब बँगले का केयरटेकर इरफान एक टाँग पर खड़ा हमें सारी सुविधाएँ उपलब्ध करवाने मुस्तैद था। कभी हीटर लगा रहा था, कभी लालटेन ला रहा था कभी गीज़र चेक कर रहा था। हम कुछ कहते उससे पहले ही वह विनम्रता से सर झुका कर कहता - बिलकुल दुरुस्त सर! दानिश भाई की सहजता और इरफान की तत्परता ने हमें क़ायल कर दिया... वरना हालात का तक़ाज़ा कुछ और ही था। सुनसान पुराने बँगले में एक अपरिचित परिवार के साथ हमने बच्चों को लेकर अँधेरी रात गुज़ारी। पर विश्वास उससे भी ज़्यादा जबर था कि कुछ लोगों के सिरफिरेपन के कारण हम पूरी कौम को शक के दायरे में कैसे घसीट सकते हैं। बँगले के बड़े-बड़े कमरों में अनेक दरवाज़े... कौन सा किधर खुलता होगा पहली रात हम किस तरह जान पाते... वह भी बिजली न रहने के कारण अँधेरी रात थी कुछ दरवाज़ों की सिटकनी भी सही नहीं थी। बिस्तर पर लेटे हुए मेरे अंदर भय तो कतई नहीं था अलबत्ता कल्पना के घोड़े भूत और वर्तमान के बीच बेतहाशा उछल कूद लगा रहे थे। कुछ गढ़ रहे थे कहानी सरीखा सा....। कहर के वक़्त घाव तो सभी ने खाए.... कौन जाने गहरी रात में कोई किधर से अपने ज़ख़्मों को भरने के बहाने आकर हम सब का सफाया कर दे....पर ऐसा कुछ ना होना था ना हुआ। बेहद सुलझा हुआ शांत परिवार है दानिश भाई का। उनके यहाँ रुक कर घर जैसा एहसास ही तो करना था हमें.. श्रीनगर की आत्मा में उतरना था... वहाँ की धड़कनों में धड़कना था। झेलम के ठीक पास थोड़ी ही दूर डल झील एक ख़ूबसूरत दोशिजा की तरह अलसाई सी लेटी थी।

5 नवंबर- सुबह दानिश भाई के बंगले में इरफ़ान से कह कर मनचाहा नाश्ता बनवाया और श्रीनगर भ्रमण पर निकले। सबसे पहले शंकराचार्य मंदिर गए। लाल चौक से 2 किलोमीटर की दूरी पर श्रीनगर शहर से हज़ार फिट की ऊँचाई पर बना है मंदिर जिसका पहले नाम तख़्ते-सुलेमान था। अद्वैत सिद्धांत के परीपोशक विख्यात दार्शनिक आदि गुरु शंकराचार्य कश्मीर आए और इस स्थान पर ठहरे तब से इस स्थान को भगवान् शिव को समर्पित करके नाम रखा शंकराचार्य। 250 सीढ़ियाँ चढ़कर हम पहुँचे ऊपर। ऑक्सीजन ऊपर जाने पर कम हो जाती है फिर सीढ़ियाँ चढ़ना ख़ासा थकाने वाला काम था, किंतु ऊपर गूँजते शिव स्तुति के स्वर हमें बुला रहे थे। शांत नीरव वातावरण में अलौकिकता का दैविक आभास हो रहा था। गुफा में शंकराचार्य का तपस्या स्थल गौरीकुंड और सबसे ऊपर विराजा था विशाल शिवलिंग। पंजाब के महाराजा रणजीत सिंह जी ने अपने शासन के दौरान इस मंदिर का जीर्णोद्धार करवाया था। मंदिर में बैठे एक पंडित दर्शनार्थियों के भाग बाँच रहे थे... किंतु वहाँ से समूचे श्रीनगर को

देखने का प्रलोभन इतना विकट था कि पंडित जी किसी को घेर नहीं पाए। वहाँ से डल झील, हज़रत बल, बगीचे, पीर पंजाब की पहाड़ियाँ, सब कुछ दिख रहे थे... दृश्य ऐसा विहंगम कि सुबह से शाम तक मौन खड़े निहारते रहें तब भी मन न भरे। अंतत: नीचे तो उतरना ही था। वहाँ से पहुँचे परी-महल जो लाल चौक से 11 किलोमीटर दूरी पर बना है। सात सतहों पर बना अनोखा बाग़ जिसे सतहरवीं शताब्दी में शाहजहाँ के बेटे दारा शिकोह ने बनवाया था। इतिहास बताता है कि दारा शिकोह अपने भाइयों की दुर्दमनीय महत्त्वाकांक्षाओं का शिकार हुआ, जबकि बड़ा व क़ाबिल होने के नाते बादशाह उसे ही बनना था, यदि ऐसा हुआ होता तो कदाचित भारतवर्ष का इतिहास इतना रक्त रंजित नहीं होता। वह बेहद ज़हीन, उदारमना और तालीमयाफ्ता शख़्स था। जिसने वेदों, उपनिषदों, पुराणों का फारसी में अनुवाद किया था।

हमारा आज का तीसरा पड़ाव का चश्मे शाही जिसे शाही बाग़ भी कहते हैं। तीन सतहों पर लगा प्राकृतिक झरना और चारों तरफ़ अनेक तरह के फूलों से सजा है यह बाग, जिसे 1632 में नूरजहाँ के भाई आसिफ़ ख़ान ने बनवाया था। कहा जाता है कि इसमें इसके चश्मे के पानी में दारुण रोगों को भी दूर करने की तासीर है। वहाँ से पहुँचे निशात बाग जो डल झील के किनारे बना है। 1634 में इसे भी आसिफ़ ख़ान ने बनवाया था। समूची कश्मीर घाटी में अनेक मुगल गार्डन हैं जो उन्होंने बनवाए।

60 से 80 के दशक के तमाम रोमांटिक फिल्मी गाने यही फिल्माए गए थे। ऊँची पहाड़ श्रृंखलाएँ, चीड़, चिनार व देवदार के घने पेड़ों से घिरा निशात बाग़, जहाँ विश्व भर के फूलों की दुर्लभ प्रजातियों को देखा जा सकता है। यहाँ फूलों के रंगों, ख़ुशबू और आकार का साँगोपाँग संयोजन किया गया है। यहाँ कश्मीरी कपड़े पहन कर फोटो उतारने का चलन है, इंसान यादों को सुरक्षित करने के तमाम उपाय करता है। शब्द और चित्र दो ऐसे टूल हैं जो सुलभ भी हैं और कारगर भी। इस यात्रा वृत्तांत को लिखना भी एक बानगी है।

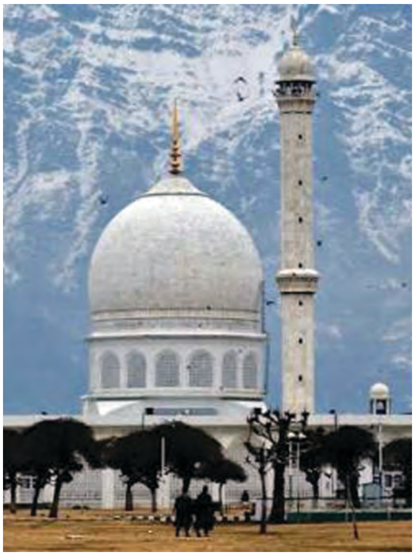

इसके बाद 1619 में बने शालीमार बाग़ गए हम जिसे जहाँगीर ने बनवाया था। वहाँ बड़े पैमाने पर मरम्मत का काम चल रहा था। दो विशाल बारहदारियाँ बनी थीं, जिनकी छतें, मेहराबें, कंगूरे, गोखे, व दीवारें अपनी समृद्धी व इंसानी फितरत की मुँह बोलती तस्वीर पेश कर रहे थे। संभवत बाराहदारियों की दीवारें स्वर्ण रजत पच्चीकारी से सज्जित थीं। सुनहरे व रुपहले चित्रांकन की परम्परागत शैली भारत के अनेक महलों व मंदिरों में आज भी देखी जा सकती है। कला निष्णात कलाकारों के हाथों के हुनर को नोच-नोच कर ले जाने वालों की रुग्ण मानसिकता पर तरस आता है बल्कि हैरत होती है कि कला के अनमोल शाहकारों का ऐसा हश्र करने वालों के हाथ क्या लगा होगा। भित्ति चित्रों से खुरचा हुआ सोना तो उनके हाथ के नाख़ूनों में ही फँस कर रह गया होगा... कोई काम नहीं आया होगा। किसी ज्ञानी ने ऐसे लोगों के लिए ख़ूब कहा है कि- आदमी एक उम्र तक ही बढ़ता है फिर तो उसके नाख़ून ही बढ़ते हैं।

विशाल बारहदारियों की उजड़ी दीवारों के अवशेष देख कर पारखी अंदाज़ लगा लेते हैं कि कैसा कला संपन्न समय रहा होगा। निशात बाग़ की ख़ूबी यह की दस आयामों में फौव्वारों के सहारे पानी को नीचे से ऊपर ले जाया जाता है जो उस वक़्त के कारीगरों के कौशल, उनकी तकनीकी समझ तथा सदियों तक स्थाई रखे रहने वाली टिकाऊ स्थापत्य कला पारंगतता का हैरतअंगेज़ जायज़ा देता है।

आज का अंतिम पड़ाव का हज़रत बल। दुग्ध धवल, संगमरमर का भव्य शाहकार। शंकराचार्य की निस्तब्द्धता और हज़रत बल की शांति में अद्‌भुत साम्य स्पष्ट दिख रहा था। कोई फ़र्क़ नहीं, दोनों ही इबादत के स्थान, तरीक़ा अलग-अलग पर मंज़िल एक... इस बात को कहना जितना आसान है समझना उतना ही मुश्किल कर दिया गया है। वैमनस्य के विषैले बीज केसर की क्यारियों, सेबों के बागानों तथा अखरोट, बादाम की उर्वरा धरती में छींट दिए गए हैं, जो अभी तो दब गए हैं किंतु कब हवा पानी पाकर अँखुवा जाए कोई नहीं जानता। रात का खाना निरामिष में खाकर लौटे डार्क हरमिटेज में... सर्दी ग़ज़ब ढा रही थी।

6 नवंबर- डाक हेर्मिटेज की दीवारों पर ओबामा, हिटलर तथा एक विख्यात कॉमेडियन के बड़े-बड़े पोर्ट्रेट लगे थे। कहीं-कहीं हस्तशिल्प की ख़ूबसूरत वाल हैगिंग भी लगी थी। कश्मीर का पश्मीना बुनाई, कशमीरी कशीदाकारी, पेपरमेशे और अखरोट की लकड़ी पर की गई कारीगरी इत्यादि पारंपरिक कलाएँ विख्यात हैं। अपने कला शोध कार्य के लिए आज का दिन राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त वरिष्ठ कलाकार ज़ाहिद अली से मिलना तय था। लगभग तीन-चार घंटे उनके 'कश्मीर लूम' पर बड़े विस्तार से बातें हुई। ज़ाहिद अली सुदर्शन व्यक्तित्व के ज़हीन तालीम याफ्ता व्यक्ति है। पहली नज़र में कुछ-कुछ हिन्दी रंगमंच और फिल्मों के लोकप्रिय अभिनेता बोमन ईरानी से मिलते-जुलते लगे। बातों के दौरान अनायास कश्मीर के मौजूदा हालात राजनीतिक उठा-पटक से जुड़ी अनेक तरह की बातें अपने आप आती चली गईं। यह सायास नहीं हुआ था। मुझे अपने कला शोध कार्य के लिए उनसे कला विषयक बातें करनी थी। गौरतलब यह था कि लंबा समय विप्लव का उन लोगों ने भुगता है, कलाएँ, कलाकार और उनका जीवन सभी उस आँधी की चपेट में आ गए थे। ज़ाहिद अली ने अपने यहाँ का कशीदा कार्य करने वाली उम्दा कलाकार शाहीन से मिलवाया।

बेहद ख़ूबसूरत शाहीन अपने आप कुछ नहीं बोल रही थी जो कुछ पूछा जाता बस उसी का जवाब देती रही। वहीं मिली कौसर कश्मीर लूम की कंप्यूटर ऑपरेटर कौशल है। ज़ाहिद अली के कारीगर आते रहे किया हुआ काम दे रहे थे और नया लेकर जा रहे थे। काफी वक़्त हो गया। डार्क हेर्मिटेज का रास्ता सीधा था किंतु ज़ाहिद भाई ने अकेले नहीं जाने दिया, अपनी गाड़ी से छोड़ा बँगले पर। मेरी पुस्तक का अगला अध्याय कश्मीर की कलाओं पर होगा और ज़ाहिद भाई से मिली प्रमाणिक जानकारी उसमें सहयोगी होगी यह तो तय था। सब नेहरू पार्क चारमीनार, डल झील की सैर कर के आ गए थे। डल के किनारे नेहरू उद्यान बनाया गया है जहाँ वाटर बोटिंग के साथ-साथ रेस्टोरेंट है। रोशनी की विशेष व्यवस्था वहाँ चार चाँद लगा देती है। चार चिनार डल झील के बीचों-बीच लौकुंडल है जिस रूपलंक के नाम से जाना जाता है, यह द्वीप चारों तरफ़ पानी से घिरा है और शाही चिनार के चार पेड़ लगे हैं, उसे देखने शिकारे से लोग आते रहते हैं। बीच में तैरते हुए बाज़ार भी दिखे। घर पर ही वैष्णव ढाबे से खाना मँगवाया और आज फिर लाइट नहीं थी सो कैंडल लाइट डिनर हो गया।

7 नवंबर- आज श्रीनगर में सबसे ज़्यादा ठंड है आसमान पर धुंध व बादल छाए हुए हैं धूप का कहीं निशान तक नहीं है। हम पहले दचीगम गए जो श्रीनगर का बेजोड़ अभयारण्य है। इस वाइल्डलाइफ सैंक्चुअरी में जम्मू कश्मीर राज्य से परमिट लेकर जाना होता है। यहाँ आए आज हमें बारहवाँ दिन था यहाँ की हर जगह ने मुग्ध किया किंतु दचीगम ने तो विम्मोहित करके छोड़ दिया था।

हवा का रंग रूप स्वाद क्या किसी ने कभी चखा या देखा है... नहीं ना... पर यहाँ आकर लगता है प्रकृति ने हवा तो ऐसी ही सौंपी थी दुनिया को... हम ही ने उसे प्रदूषित कर दिया। यहाँ की हवा और हमारी शहरी हवा का जो भीषण अंतर है वो तो वहाँ आकर ही जाना जा सकता है। प्रकृति ने हवा और पानी दो ऐसी नेमतें दी है हर इंसान को जिन्हें मूल रूप में रहने दिया गया होता तो शर्तिया कभी कोई

बीमारी हमारे पास नहीं फटकती। यक़ीनन ताज़ी हवा का ताज़ापन तो बस यहीं देखा... रोज़मर्रा की बीमारियाँ तो ऐसी हवा में रह कर ही ठीक की जा सकती हैं। इस हवा को पी लेने से अंदरूनी तमाम विसंगतियाँ बह सकती हैं। उस विलक्षण हवा का स्वाद, रंग, रूप बताने में कदाचित् मेरे शब्द कम पड़ रहे हैं। हाँ तो दचीगम का कश्मीरी भाषा में अर्थ होता है दस गाँव, हम यहाँ गाड़ी से पहुँचे, गाड़ी को दूर छोड़ और अभ्यारण्य में प्रवेश किया। हिमालयन काले भालू की दुर्लभ प्रजाति जिनके गले में भूरे रंग का वी का निशान होता है, तेंदुए और हिरण पिंजरे में थे। वहाँ से दो खुली गोल्फ़ कारो में हम आगे गए। बैटरी से संचालित यह गाड़ियाँ कोई आवाज़ नहीं करतीं ताकि अभ्यारण की शांति भंग ना हो। खुली गोल्फ़ कारों के दोनों तरफ़ चिनार के सुनहरी पीले पत्ते हवा के साथ हम पर बरस रहे थे। हमें एक बारगी तो भ्रम हो गया कि कदाचित यह पत्तियाँ हमारा स्वागत करने के लिए बरस रही है। ऐसे अद्भुत दृश्य का साक्षी कौन था वहाँ जंगल में.... हम छह लोग और दो गोल्फ़ कारों के चालक .... साक्षी की ज़रूरत क्यों थी.... यहाँ का एक-एक पल हमारी स्मृतियों में बख़ूबी दर्ज हो चुका था। धीरे-धीरे चलती कारें... ऊपर से पीली केसरी नाज़ुक पत्तियों की बौछार... बर्फीली हवा के तीखे हिलोरे नाक कान में गर्म कपड़ों के अंदर से घुसे जा रहे थे। प्रकृति का ऐसा रूप तो पिछले बारह दिनों में भी पहली बार देखा.. उससे पहले की तो बात करना ही बेमानी है।

कल चले जाना है अपनी उसी भीड़ भरी धक्कमपेल की दुनिया में... यह ख़याल तो सुबह से ही आ रहा था। यहीं ट्राउट मछली का एक फॉर्म है। मछली खाने वालों के लिए एक बेहद लज़ीज़ किस्म की मछली होती है जो बड़ी मुश्किल से मिलती है। ट्राउट मछली को पनपने के लिए बिल्कुल प्रदूषण मुक्त पानी ही चाहिए और इस कारण यह ख़ासी महँगी होती है। बहरहाल जादुई जंगलों तथा केसरिया बाना पहने पेड़ों के मोह से मुक्त होकर वापस लौटे बैटरी कारों से और फिर गाड़ी से हम हरबन गए।

अन्य मुगल गार्डन की तरह हरबन भी अनेक तरह के फूलों की रंग बिरंगी प्रजातियों से सजा बगीचा है जिसका रखरखाव बड़ी करीने से किया गया है। सचमुच मुगल बादशाहों की गुल परस्ती ने क़ायल कर दिया। उनके इस शौक के कारण भारत में बेइंतहा सुंदर बाग़-बगीचे हम देख रहे हैं। जहाँगीर ने हरबन नूरजहाँ के लिए बनवाया था, जिसमें विश्व भर से मँगवाकर दुर्लभ किस्म के फूलों से सजावट करवायी, फलों के पेड़ लगवाए। वहाँ से गए खीर भवानी मंदिर। माँ दुर्गा का एक और रूप जो कश्मीरी राजवंश की कुलदेवी मानी जाती है। श्रीनगर से 28 किलोमीटर पर संगमरमर का मंदिर जिस पर सोने का पत्तर चढ़ा है। तालाब के बीच में स्थित है। कहते हैं यह तालाब अपना रंग बदलता रहता है।

पौराणिक मान्यता के कारण इस स्थान का विशेष महत्त्व है, तुलमूला गाँव के पास है तथा मानस बल व वुलर झील से भी जाया जा सकता है। कई लोग साष्टांग लेट कर माँ भवानी को दंडवत प्रणाम कर रहे थे। काफी देर से बँगले पहुँचे... हमें आज पैकिंग भी करनी थी।

8 नवंबर- पैकिंग निपटाकर रिक्शे से बाज़ार गए... वहाँ से कुछ कश्मीरी कढ़ाई की चीज़ें बच्चों के सामान ख़रीदे। यहाँ की अनेक चीज़ें यादगार के बतौर लेने का मन था पर मनको काबू में रखना ज़रूरी था। फ्लाइट में अतिरिक्त वज़न नहीं ले जा सकते थे। वापस

लौटे तो नीचे से दानिश भाई पत्नी सहित हमें विदा देने आए। विनम्रता से पूछा कि उनके यहाँ हमें कोई असुविधा तो नहीं हुई। उनकी सज्जनता के तो हम पहले ही क़ायल हो चुके थे। डार्क हेर्मिटेज से निकलते वक़्त मन भारी था...10- 12 दिन में ही हम मोह का रोग लगा बैठे, यहाँ रहने वाले जब उजड़े तो उनकी मनोदशा क्या रही होगी अंदाज़ लगाना मुश्किल नहीं था। श्रीनगर एयरपोर्ट पर कड़ी चेकिंग हुई.. बड़ी परेशानी से दो-चार होना पड़ा। किंतु यहाँ के संवेदनशील हालातों में यह ज़रूरी था। साथ में लंच पैक करवाया। कम से कम आज भर और यहाँ के खाने का स्वाद ज़ुबान पर घुला रहे।

एयरपोर्ट आते वक़्त और परसों कश्मीर लूम पैदल जाते वक़्त स्कूल जाते बच्चे दिखे फूलों से कोमल चेहरे किसी पर ज़रा सा नटखटपन, किसी पर भोलापन तो कोई ज़्यादा ही शैतान और उनकी चुहलबाज़ियाँ, विशेषत: स्कूल जाती लड़कियाँ तितलियों सी... छोटी-छोटी कुटकुट गिलहरियों जैसी उस वक़्त भी सड़कों पर स्कूल कॉलेज जाते बच्चे दिख रहे थे स्कूल की पीली बसें भी और सबसे आश्वस्त करने वाली बात थी वह यह कि किशोरी युवा व छोटी बच्चियों लड़कियाँ दो-तीन के समूहों में स्कूल जा रही थी। नीचे से ऊपर वस्त्रों से ढकी... चेहरे उतने खिलखिलाते हुए तो नहीं थे पर उदास भी नहीं थे। नज़रें सबकी अपने रास्तों पर। तमाम अप्रिय स्थितियों से निश्चय ही हमारा कश्मीर उबर गया है जहाँ लड़कियाँ सड़कों पर बेख़ौफ़ स्कूल कॉलेज जाती हों निश्चय ही यह शुभ संकेत है।

पाकिस्तान की मलाला की गुहार ने कितने-कितने सच की ख़ूनी परतें उघाड़ी थीं। अपनी ही ताक़त से परिचित लड़कियाँ तब होंगी जब वे घर से निकाल कर स्कूलों में पग धरेंगी।

यह यात्रा वृत्तांत मेरे डायरी के पन्ने हैं जो देखा... जैसा महसूस किया... वह लिख दिया.. इस यात्रा का ख़ुमार कई दिनों तक रहने वाला है।

000

ग़ज़ल

चार ग़ज़लें

जय चक्रवर्ती

कहाँ तक पंख लोगे दूसरों से
उड़ानें अब भरो अपने परों से
सुनी हैं कब उन्होंने प्रार्थनाएँ
रखो उम्मीद कुछ मत पत्थरों से
मरी इंसानियत बाहर तड़प कर
न निकले देवता पूजाघरों से
अगर सच जानना हो आँकड़ों का
ज़रा निकलो कभी बाहर घरों से
रियाया स्वप्न बुनती एक घर का
हुकूमत खेलती बुलडोज़रों से
करो ख़ुद को इकट्ठा रेज़ा-रेज़ा
लड़ो फिर झूमकर अपने डरों से
बड़ा हो कुछ भी तानाशाह कोई
बहुत डरता है लेकिन अक्षरों से

000

छँटेगा क्या कभी अब ये कुहासा ?
बताए काश! कोई दे दिलासा
बदलने से रही दुनिया की फितरत
बदल लूँ क्यों न ख़ुद को ही ज़रा-सा
कहाँ लग जाय कब नंबर किसी का
लिये है वक़्त हाथों में गड़ासा
चुरा ली किसने चेहरे की हँसी सब
खड़ा हर शख़्स बस सहमा डरा-सा
किया शैतान ने विध्वंस सब कुछ
जो मेरा आशियाँ था अच्छा-खासा
प्रतिष्ठित हैं बिजूके आसनों पर
करें जाकर कहाँ अब इस्तगासा
शिकारी बन गए कैसे मुहाफ़िज़
कभी क्या हो सकेगा ये खुलासा?

000

सुना जो आपने वैसा नहीं है
मेरा उससे कोई रिश्ता नहीं है
वो सुनता है मगर कहता नहीं है
ये कहता है मगर सुनता नहीं है
किसी के वास्ते दिन-रात रोना
ये सेहत के लिए अच्छा नहीं है
जहाँ में जो हमें मशहूर कर दे
हमारे हाथ में रेखा नहीं है
न जाने कौन-सी मजबूरियाँ हैं
वो रोता या कभी हँसता नहीं है
किया दरबार में चोरों ने क़ब्ज़ा
मगर दरबार में चर्चा नहीं है
करो हक़ के लिए आवाज़ ऊँची
सिवा इसके कोई रस्ता नहीं है

000

मुल्क बीमार क्या करे कोई
काश! इसकी दवा करे कोई
हर तरफ़ डर का एक साया है
अम्न की अब दुआ करे कोई
न्याय का कौन-सा ये चेहरा है
कोई भोगे ख़ता करे कोई
मेरी चुप्पी ही मेरी ताक़त है
मुझको गूँगा कहा करे कोई
हाल पर मुफ़लिसों के हँसते हो
तुमको कैसे क्षमा करे कोई
जाने किस सिम्त खो गईं खुशियाँ
कोई ढूँढ़े पता करे कोई
झूठ पर सच की जीत होगी ही
अब न दावा किया करे कोई
लौट आए बहार गुलशन में
हो करिश्मा ख़ुदा करे कोई
बारिशें क्यों महज़ समुंदर पर
इस पे भी तब्सिरा करे कोई

000

जय चक्रवर्ती
एम.1/149, जवाहर विहार,
रायबरेली-229010, उप्र
मोबाइल- 9839665691
ईमेल- jai.chakrawarti@gmail.com

पहली ही किताब पर साहित्य शिखर सम्मान

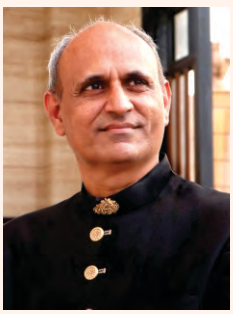

पंकज सुबीर
पी. सी. लैब, शॉप नंबर 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001
मोबाइल- 9977855399
ईमेल- subeerin@gmail.com

हिन्दी साहित्य समाज एक बहुत ही मज़ेदार अखाड़ा है, यहाँ कब क्या हो जाए कुछ पता नहीं है। पिछले दिनों सोशल मीडिया पर लहराती हुई एक ख़बर पर मेरी नज़र पड़ी, ख़बर थी कि एक 'अभी तक पूरी तरह से नहीं हो पाये लेखक' को एक प्रतिष्ठित साहित्यिक संस्था ने उनकी द्वारा लिखी गई 'किसी के द्वारा नहीं पढ़ी गई' पहली ही किताब पर संस्था का 'साहित्य शिखर सम्मान' देने की घोषणा की है। वैसे चूँकि यह समाचार हिन्दी साहित्य समाज का समाचार था इसलिए हैरत में पड़ने जैसी कोई बात नहीं थी मगर फिर भी बात चूँकि शिखर सम्मान की थी इसलिए हैरत में पड़ना ज़रूरी था। उन 'अभी तक पूरी तरह से नहीं हो पाये लेखक' ने लेखन का कर्म कुछ दिनों पहले ही शुरू किया है। अपनी सेवानिवृत्ति के बाद, पहले वे एक सरकारी संस्था में राजभाषा अधिकारी थे। अच्छा एक और मज़े की बात यह है कि सरकारी संस्थाओं में राजभाषा अधिकारी के रूप में काम करने वाले ये सभी अधिकारी, केवल सितंबर के महीने और उसमें भी केवल चौदह सितंबर के लिए रखे जाते हैं। चौदह सितंबर को हिन्दी दिवस के लिए ऊपर से आया हुआ बजट ठिकाने लगाने का काम ये बख़ूबी करते हैं। और हाँ बाक़ी समय में यदि बजट हो तो ये उस विभाग की हिन्दी की पत्रिका भी निकालते हैं, जिसमें विभाग के ही कर्मचारियों की हिन्दी के साथ माथे की बिन्दी के तुक वाली परिमल कविताएँ छापते हैं। इन अधिकारियों का हिन्दी दिवस मनाते-मनाते साहित्य समाज के साथ अच्छा-ख़ासा परिचय हो चुका होता है। साहित्यकार भी इनको इसलिए महत्त्व देते हैं क्योंकि ये हिन्दी दिवस, हिन्दी पखवाड़ा या हिन्दी मास के अंतर्गत उन साहित्यकारों को बुला कर हिन्दी दिवस के बजट में से अच्छा-ख़ासा पारिश्रमिक, बढ़िया किस्म का शॉल तथा महँगा वाला स्मृति चिह्न दिलवाते रहते हैं। यदा-कदा इन 'अभी तक पूरी तरह से नहीं हो पाये लेखक' की 'विचित्र किन्तु सत्य कविताएँ' वे संपादक अपनी पत्रिका में प्रकाशित करते रहते हैं, जो संपादक इनके पारिश्रमिक, शॉल तथा स्मृति चिह्न का सेवन कर चुके होते हैं। इस प्रकार सेवानिवृत्त होने तक ये राजभाषा अधिकारी महोदय 'लगभग लेखक' हो चुके होते हैं। लगभग इसलिए कि इस समय तक ये लिखने के अलावा वे सारे काम करने लगते हैं, जो सामान्यत: एक हिन्दी का लेखक करता है। जब ये सेवानिवृत्ति के 'पृष्ठभूमि पाद-प्रहार' पश्चात् अपने विभाग से स्वतंत्र होकर बाहर निकलते हैं, तो इनके जीवन का अंतिम लक्ष्य अब पूर्णकालिक लेखक बनना ही रह जाता है। सरकारी विभाग इतनी पेंशन तो दे ही रहा होता है कि अब ये अपनी जेब से भी पैसा ख़र्च कर लेखक बनने की अपनी आस पूरी कर सकते हैं। समस्या यह होती है कि लिखना इन्हें आता नहीं है। हिन्दी साहित्य ने इसके लिए भी एक बहुत सुंदर गली निकाल रखी है- दूसरों से किसी विषय पर लिखवाओ, आप उनको संकलित करो और संपादक बन कर पेंशन के पैसों से उसे पुस्तकाकार प्रकाशित करवा लो। चूँकि किताब के संपादक आप ही हैं, इसलिए अब आप बाक़ायदा पुरस्कार के, सम्मान के हक़दार हो गए हैं। जैसा इस लेख के प्रारंभ में ही मैंने ज़िक्र किया कि वे सज्जन भी इसी प्रकार के लेखक हैं, जिनको बाक़ायदा 'साहित्य शिखर सम्मान' प्रदान किया गया। इसे कहते हैं एक ही क़दम में एवरेस्ट के शिखर पर पहुँच जाना। एक और मज़े का शिखर सम्मान आज से दो-तीन साल पहले दिया गया था, जिनको दिया गया था, उनकी किताब तो छोड़िए, एक रचना भी किसी ने आज तक नहीं पढ़ी है। वे लिखते-पढ़ते नहीं हैं, बस सतत् जनसंपर्क में लगे रहते हैं साहित्यकारों के साथ। ये 'बिना किसी रचना के लेखक' एक शिखर सम्मान के साथ, पद्म विभूषण से मिलता जुलता साहित्य विभूषण सम्मान भी प्राप्त कर चुके हैं। तो यह है कहानी दो 'साहित्य शिखरों' की, एक 'बिना किसी किताब वाले साहित्य शिखर' और दूसरे 'एक ही किताब (संपादित) वाले साहित्य शिखर'। आप यूँ ही लिख-लिख कर काग़ज़ काले कर रहे हैं। मेरी बात मानिए और शिखर सम्मान के बारे में सोचिए। **सादर आपका ही**

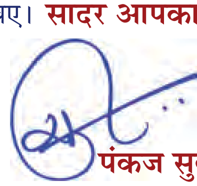

पंकज सुबीर

शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित नए सेट में शामिल पुस्तकें

सुंदर स्त्रियों का भाग्य
कहानी संग्रह
कृष्ण बिहारी
मूल्य- 375 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-399-2

औरत के भीतर औरत
कहानी संग्रह
सुधा जुगरान
मूल्य- 350 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-001-4

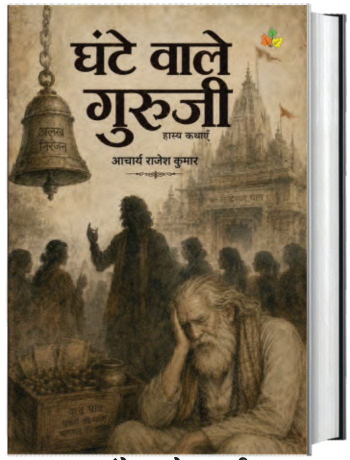

घंटे वाले गुरुजी
हास्य कथाएँ
आचार्य राजेश कुमार
मूल्य- 350 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-003-8

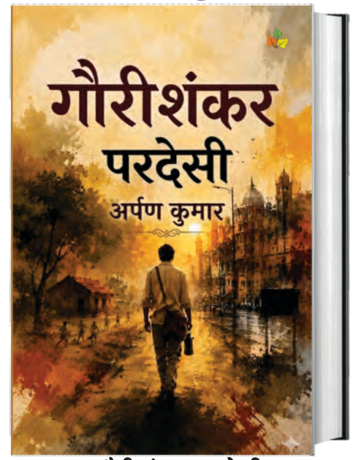

गौरीशंकर परदेसी
कहानी संग्रह
अर्पण कुमार
मूल्य- 375 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-002-1

अल्टिमेट टाइम मैनेजमेंट मास्टरी
आलेख संग्रह
डी. के. गोस्वामी
मूल्य- 350 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-48636-21-8

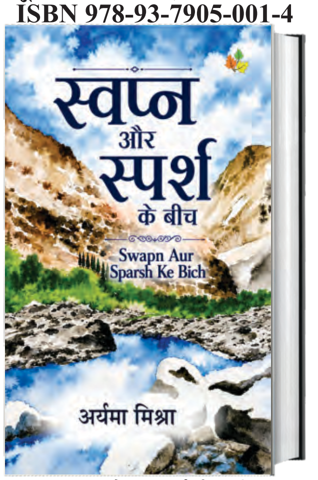

स्वप्न और स्पर्श के बीच
कविता संग्रह
अर्यमा मिश्रा
मूल्य- 180 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-006-9

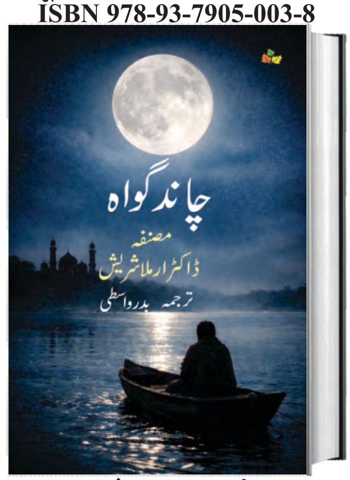

चाँद गवाह (उर्दू)
उपन्यास- उर्मिला शिरीष
अनुवाद- बद्र वास्ती
मूल्य- 500 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-658-0

विचार और समय भाग 2
लेख संग्रह
सुधा ओम ढींगरा
मूल्य- 250 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-48636-23-2

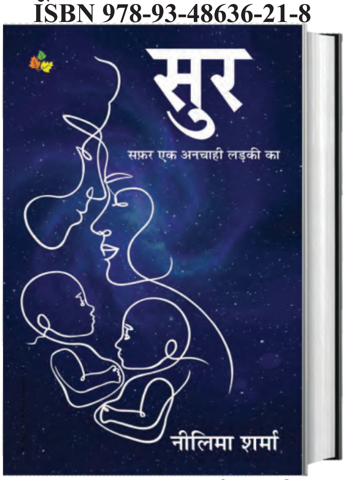

सुर- सफ़र एक अनचाही लड़की का
उपन्यास
नीलिमा शर्मा
मूल्य- 400 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-48636-78-2

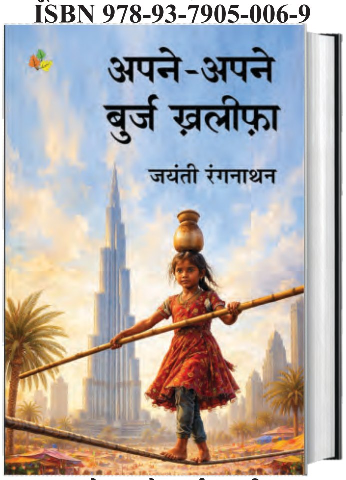

अपने अपने बुर्ज ख़लीफ़ा
उपन्यास
जयंती रंगनाथन
मूल्य- 350 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-48636-19-5

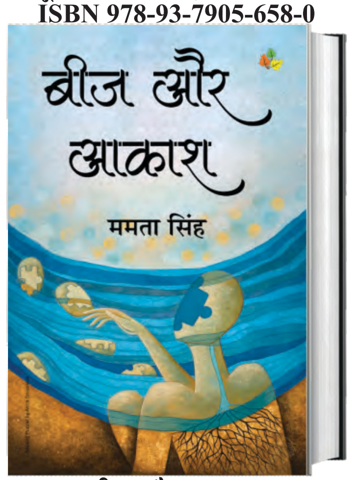

बीज और आकाश
उपन्यास
ममता सिंह
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-48636-84-3

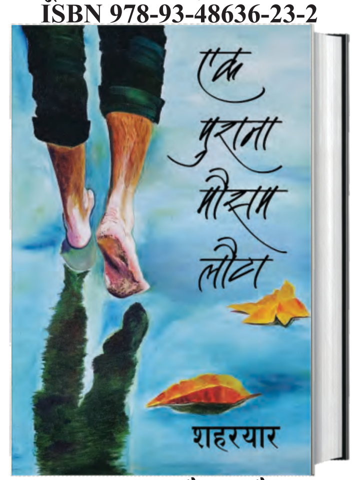

एक पुराना मौसम लौटा
कविता संग्रह
शहरयार
मूल्य- 150 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-48636-99-7

शिवना प्रकाशन

शिवना प्रकाशन एलएलपी, शॉप नं. एल 7-8, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेंसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फ़ोन- 07562-405545, 07562-490372
मोबाइल- +91-9806162184 (शहरयार), व्हाट्सएप- +91-6265665580
ईमेल shivna.prakashan@gmail.com वेबसाइट www.shivnaprakashan.com

Gmail Email- shivna.prakashan@gmail.com
+91-62656 65580 https://twitter.com/shivnac
https://www.facebook.com/shivna.prakashan
https://www.youtube.com/c/ShivnaCreations
available at amazon https://www.amazon.in/s?me=A17JJYGSVM2CEV

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका द्वारा मध्यप्रदेश के सीहोर में चलाए जा रहे आर्थिक रूप से कमज़ोर परिवार की बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण योजना के तहत स्थापित प्रशिक्षण केन्द्र पर आयोजित कार्यक्रम

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर अमेरिका से पधारे बैंक ऑफ़ अमेरिका के वाइस प्रेसिडेंट श्री आनंद भाटिया तथा सुप्रसिद्ध लेखक श्रीमती रेखा भाटिया का स्वागत समारोह विधायक श्री सुदेश राय की उपस्थिति में संपन्न हुआ।

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर अमेरिका से पधारे बैंक ऑफ़ अमेरिका के वाइस प्रेसिडेंट श्री आनंद भाटिया तथा सुप्रसिद्ध लेखक श्रीमती रेखा भाटिया का स्वागत समारोह विधायक श्री सुदेश राय की उपस्थिति में संपन्न हुआ।

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर अमेरिका से पधारे बैंक ऑफ़ अमेरिका के वाइस प्रेसिडेंट श्री आनंद भाटिया तथा सुप्रसिद्ध लेखक श्रीमती रेखा भाटिया का स्वागत समारोह विधायक श्री सुदेश राय की उपस्थिति में संपन्न हुआ।

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर अमेरिका से पधारे बैंक ऑफ़ अमेरिका के वाइस प्रेसिडेंट श्री आनंद भाटिया तथा सुप्रसिद्ध लेखक श्रीमती रेखा भाटिया का स्वागत समारोह विधायक श्री सुदेश राय की उपस्थिति में संपन्न हुआ।

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-490372, Mobile 09806162184, 08959446244 07828313926

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।